पंजाब की कहानियाँ

❀

बलवन्त सिंह

लेखक की अन्य कृतियाँ

उपन्यास

रात, चोर और चाँद
उजाला
एक मामूली लड़की
काले कोस (प्रेस में)
तीसरा आदमी (")

उर्दू में

जग्गा (कहानियाँ और ड्रामे)
तारोपू (नावलेट व कहानियाँ)
सुनहरा देश (कहानियाँ)
हिन्दुस्तान हमारा (")
शीराजा (")
उजले फूल (")
खुदा की वसीयत (नावलेट संग्रह)

पंजाब की कहानियाँ

[पंजाब के जीवन पर लिखे गए छोटे-उपन्यासों
और कहानियों का संग्रह]

लेखक

बलवन्त सिंह

नीहार प्रकाशन

२, मिन्टोरोड – इलाहाबाद – ३

मूल्य—तीन रुपया Rs 3/—

[प्रथम संस्करण]

प्रकाशक,
ओंकार शरद
लहर प्रकाशन
२ मिंटो रोड : इलाहाबाद–२

Omkar Sharad
Lahar Publication
2 Minto Road
Allahabad

मुद्रक,
प्रताप गुप्त
राजीव प्रेस
१७ लूकरगंज : इलाहाबाद–१

प्रमुख वितरक,
राजकमल प्रकाशन
दिल्ली : बम्बई : नई दिल्ली

लेखक की बात

इस संग्रह में तीन लघु-उपन्यास और सात कहानियाँ शामिल की गई हैं। इन रचनाओं की पृष्ठ-भूमि पंजाब है।

पिछले कई वर्षों में मैंने सैकड़ों कहानियाँ लिखीं। उनमें अनेक पंजाब के बारे में, और इसमें उनमें से चुनी हुई कहानियाँ संगृहीत हैं।

इन कहानियों को तीन हिस्सों में बाँटा जा सकता है। अर्थात १–विभाजन से पहले का पंजाब, २–विभाजन के बीच का पंजाब और ३–विभाजन के बाद का पंजाब।

ऐसा करने के दो कारण हैं। पहला यह कि इसे पढ़ने के बाद पंजाब का हर रूप पाठकों के सामने आ जाये, दूसरा यह कि इस तरह विभिन्नता पैदा हो जाय।

उपर्युक्त क्रम के अतिरिक्त इस बात का विशेष रूप से ध्यान रक्खा गया है कि पाठकों के मनोरंजन की यथेष्ट सामग्री एकत्र हो जाय।

पंजाब के बारे में साधारणतया जो दृष्टिकोण गैर पंजाबियों का है, मैंने जान बूझकर उसमें कोई उलट-फेर करने की कोशिश नहीं की। लेकिन पंजाबी चरित्र की छिपी हुई नर्मी, पंजाब के गीतों का लोच, उसकी आत्मा की सरसता, अत्यधिक तबाही और बरबादी के बावजूद उसकी दृढ़ता और आशावादिता, इन कहानियों को ध्यान से पढ़ने वालों से छिपी नहीं रह सकती।

'दण्ड', 'जग्गा', 'चोर', और 'ग्रन्थी' पंजाब के विभाजन के पहले के समय से सम्बन्ध रखती हैं। दो छोटे उपन्यास अर्थात् 'काली तित्तरी' और 'अलबेले' भी उसी समय से सम्बन्धित हैं। 'तीन बातें' दूसरे महायुद्ध की फौजी भर्ती पर एक व्यंग है। इस कहानी के कारण पंजाब पुलिस ने मुझे काफी परेशान भी किया।

'पहला पत्थर' पंजाब के विभाजन काल से सम्बन्धित एक छोटा उपन्यास है।

'कुछ क्षण' और 'चैबले ३८' दंगों के बाद की चीजें हैं।

ये कहानियाँ उर्दू में प्रकाशित हो चुकी हैं। इनमें से हर कहानी और नाविलेट को उर्दू के पाठकों और समालोचकों ने बेहद पसन्द किया है।

मुझे इस बात का अफसोस है कि इसी पृष्ठ-भूमि पर लिखी गई कुछ दूसरी अच्छी कहानियाँ भी इस संग्रह में शामिल नहीं की जा सकीं। पाठक किसी दूसरे संग्रह में उन्हें पढ़ सकेंगे।

—बलवन्त सिंह

मनजीत को,

जिसने पंजाब के देहात कभी नहीं देखे
और जिसे चोरों से बेहद डर लगता है ।

सूची

दण्ड

यह कहानी पंजाब के एक गाँव से सम्बन्ध रखती है।

छोटा सा गाँव था। दो एक हवेलियों को छोड़ कर बाक़ी सारे घर गारे के बने हुये थे। वही पोखरा, वही बबूल, रीह और बेरियों के वृक्ष; वही घने पीपल के नीचे रूँ-रूँ करते हुये रहट, वही सुबह के समय कुओं पर कुमारियों के जमघट; दोपहर के बड़े बूढ़ों की शतरञ्ज और चौपड़; संध्या समय नवयुवकों की कबड्डी और शान्तिपूर्ण रातों में वारिसअली शाह की हीर, हीर और क़ाज़ी के सवाल जवाब, वही मज़बूत, नटखट और चञ्चल छोकरियाँ और वही सीधे-साधे ऊँचे क़द के चौड़े-चकले नवयुवक।

संध्या हो चुकी थी।

घर में पकाने के लिये कोई वस्तु न थी इसलिये जीतकोर, पैसा आँचल में बाँध कर दाल लेने के लिये घर से बाहर निकली । लेकिन चार क़दम चल कर रुक गई। सामने पीपल के नीचे मुगदर के निकट फुम्मन सिंह चारपाई पर बैठा मूछों को ऐंठ रहा था ।

जीतकोर जानती थी कि जब वह उसके पास से निकलेगी, तो वह उसे बिना छेड़े कभी न मानेगा, अतः उसने सोचा कि दाल के बजाय किसी खेत से शाक लेती आऊँ। ऐसा करने से वह पैसा छोटा भाई चन्नन खर्च कर लेगा। आज दोपहर भर वह खाँड़ की रङ्गदार गोलियों के लिये रोता रहा था। यह सोच कर वह खेतों की ओर चल दी।

सूर्य अस्त हो रहा था। बबूल और गन्नों की छाया लम्बी होती जा रही थी। जीतकोर छोटी-छोटी काँटेदार झाड़ियों से शलवार बचाती हुई चली जा रही थी। जामुन के निकट बेरों की झाड़ियाँ थीं। उसने थोड़े से बेर चन्नन के लिये तोड़ लिये, फिर आगे बढ़ी। उसके चेहरे से उदासीनता और क्रोध के भाव प्रकट हो रहे थे। इस समय वह फुम्मन सिंह के विषय में सोच रही थी। आखिर फुम्मन सिंह उसे क्यों दिक़ करता है। अगर और कोई नहीं, तो सुमित्री तो उससे कम सुन्दर कभी नहीं थी, वह उसे क्यों नहीं छेड़ता? लेकिन सुमित्री के तीन जवान भाई थे। अगर कोई उसकी ओर अंगुली भी उठाये, तो वे उसका खून पी जायँ, यह विचार आते ही उसे अपना भाई याद आ गया। तीन वर्ष पूर्व, जब कि उसकी आयु पन्द्रह वर्ष की थी, उसका भाई घर से भोजन करके कुएँ पर गया, जहाँ उसने तरबूज़ खा लिया और साँझ तक हैजे से मर गया। उसका भाई गाँव भर में सब से अधिक लम्बा-तगड़ा था। उसकी छाती ऐसी थी, मानो किसी बड़ी चक्की का पाट। एक बालिश्त ऊँची और मोटी गर्दन, चौड़े-चकले मज़बूत हाथ, कलाई पकड़ने और कबड्डी खेलने में दूर-दूर तक कोई

उसकी बराबरी न कर सकता था। एक बार कबड्डी में उसने थप्पड़ मार कर अपने प्रतिद्वन्दी नवयुवक की हँसुली की हड्डी तोड़ दी थी। यह बातें याद कर करके जीतकोर की आँखों में आँसू आ गये। भला, आज उसका भाई जीवित होता, तो क्या फुम्मन सिंह की हिम्मत पड़ सकती थी कि उससे छेड़खानी करे। कल ही की बात तो है कि उसी दुष्ट ने उसका आँचल खींच कर उसका सिर नंगा कर दिया था। यह सब इसीलिये तो था कि वह नम्बरदार का लड़का था और ये उनके ऋणी थे। माँ की मृत्यु के बाद उन पर संकटों के पहाड़ टूट पड़े। माँ के बाद पिता का स्वर्गवास हुआ; पिता के बाद उसका भाई मरा और अब बूढ़ा बाबा रह गया था, जिसे वह बापू कहा करती थी, या चन्नन था, छः वर्ष का बालक—माता-पिता की अन्तिम निशानी। कई बार फ़सलें खराब हुईं और नम्बरदार का डेढ़ सौ रुपये का क़र्ज़ा सिर पर हो गया। भूमि अलग रेहन थी। बापू बूढ़ा था और इन सब विपत्तियों पर सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि निर्लज्ज फुम्मन सिंह उसे दम न लेने देता था।

अब जीतकोर का फिर से रक्त उबलने लगा। उसके हृदय में सभी पुरुषों के लिये घृणा उत्पन्न हो रही थी। मन ही मन वह कहने लगी—"अब तारा सिंह को ही देखो। उसके न कोई आगे न पीछे, बस ले दे के उसकी माँ है; थोड़े दिन की मेहमान। उसे भला काहे की चिन्ता ! भूमि है, एक कच्चा मकान, तीन बैल, एक भैंस और एक गाय भी है। उसे अकेले अपने के लिये यह काफ़ी से अधिक है। निश्चिन्तता के कारण राँड़ का साँड़ हो रहा है। जब देखो, मूँछ पर हाथ। इतना लम्बा चौड़ा जवान होकर बेचारी निर्बल लड़कियों पर आवाज़ें कसते हुये शर्म नहीं आती। मैं तो कहूँगी कि सभी पुरुष परले दर्जे के गुण्डे और पाजी होते हैं। जब कभी पानी का घड़ा कुएँ से उठा कर लाती हूँ, तो कैसे भद्दे स्वर से गाता है—

'निक्का घड़ा चक लछिये !
तेरे लकनूं जरब न आवे ।
निक्का घड़ा चक लछिये !'

(हे युवती, तू छोटा घड़ा उठाया कर । मुझे भय है कि कहीं तेरी पतली कमर में बल न आ जाये ।)

बापू का विचार है कि मैं उससे विवाह कर लूँ, मगर मैं ऐसे लफंगे के साथ विवाह क्यों करूँ ? माना कि फुम्मन सिंह की भाँति उसने कभी हाथ नहीं फेंका, मगर इस तरह नवयुवतियों को सुना-सुना कर गाना भी तो भले आदमियों का काम नहीं ।

उस समय जीतकोर को रह-रह कर विचार आता था कि काश, वाह गुरू अकाल पुरख उसे शक्ति देता, तो वह इन दिल-फेंक प्रेमियों को ईंट का जवाब पत्थर से देती ।

चलते-चलते वह रुक गई । सामने गन्ने के खेतों के पास ही हरा-भरा शाक का खेत था । लेकिन वह खेत था तारासिंह का । उसने इधर-उधर देखा । पशुओं का बाँधने का मकान खाली मालूम होता था । रहट चल रहा था और पास ही बैल बँधा हुआ था ।

उसने जब अच्छी तरह देख लिया कि कोई निकट नहीं है, तो वह चुपके से खेत में सिमट-सिमटा कर बैठ गई और जल्दी-जल्दी शाक तोड़ने लगी । सहसा एक आवाज़ सुन कर उसने सहम कर सिर ऊपर उठाया । देखा, तो दूर गन्ने के खेतों से तारू हाथ में फावड़ा लिये उच्च स्वर में गालियाँ देता चला आ रहा है । उसके शरीर में सनसनी सी उत्पन्न हुई और वह शाक वहीं फेंक कर जल्दी-जल्दी दूसरी ओर को चल दी । इतने में तारू वहाँ आ पहुँचा । उसने तोड़ा हुआ शाक हाथ में उठा कर देखा और फिर उसकी ओर लपका । इधर उसकी छोटी-छोटी फटी हुई स्लीपर हरी घास पर बार-बार फिसलती थी । यह देखकर कि तारू उसको पकड़ा ही चाहता है, वह भाग खड़ी

हुई। तारू भी दौड़ा। थोड़ी ही दौड़ में तारू ने उसे जा दबोचा और उसकी कलाई को मजबूती से पकड़ कर बोला—"क्यों री जीतो! हम से यह चालाकी? रोज तू ही शाक चुराकर ले जाती थी न? आज मैं भी इसी ताक में बैठा था।"

जीतो रोती हुई और उसकी कड़ी पकड़ से हाथ छुड़ाने की चेष्टा करती हुई बोली—"मैं तो तेरे खेत में पहिले कभी नहीं आई...छोड़ मुझे।"

"कभी नहीं आई थी..." तारू दाँत पीसते हुये बोला—"चल आज मैं तुझे चखाता हूँ मजा।"

तारू उसे घसीटता हुआ कच्चे मकान की ओर ले गया और दरवाजा खोल कर उसे जोर से अन्दर ढकेल दिया। वह भैंस के ऊपर गिरने से बाल-बाल बची। उसकी एक चूड़ी भी टूट गई। चूड़ी को टूटते देखकर उससे सहन न हो सका। चिल्ला कर बोली—"तूने मेरी चूड़ी तोड़ दी; मैंने कैसे चाव से मेले में ली थी।" उसका स्वर भर्रा गया और वह टूटी हुई चूड़ियों को देख-देख कर रोने लगी।

अब तारू नर्म पड़ गया। उसे दुख भी हुआ। सहसा उसकी दृष्टि जीतो की कलाई पर पड़ी जिसमें से चूड़ी का टुकड़ा चुभ जाने से खून बह रहा था। वह एकदम आगे बढ़ा—"ओहो! जीतो, तुम्हारी कलाई से खून बह रहा है, लाओ..."

"हट।" जीतो ने दो क़दम पीछे हट कर कहा—"बदमाश... कलमुंहा...मुसटंडा..."

तारू गालियाँ खाकर चुप हो गया। उसे यह पता नहीं था कि बात का बतंगड़ बन जायगा। वह तो क्षण भर के लिये जीतो को परेशान करना चाहता था, क्योंकि उसे दिक़ करने में उसे आनन्द आता था। उसका यह उद्देश्य कभी न था कि जीतो की कोई हानि हो या वह उसे कोई शारीरिक कष्ट पहुँचाये।

जीतो दीवार के पास खड़ी चुपके-चुपके रो रही थी और तारू अपनी गर्दन खुजला रहा था। उसके मन में दया के भाव उत्पन्न हो चुके थे, पर वह सहानुभूति नहीं प्रकट कर सकता था। क्षण भर के बाद वह बाहर निकल आया और द्वार बन्द करके खेतों की ओर चला गया।

थोड़ी देर के बाद तारू सरसों का बढ़िया शाक लिये सहन में आया। जीतो ने आँख उठाकर उसकी ओर देखा। उसकी भीगी-भीगी लम्बी पलकों को देखकर तारू के हृदय में हूक-सी उठी। उसे अपने किये पर बड़ा खेद हो रहा था। वह झिझकता हुआ आगे बढ़ा और शाक का गट्ठा आगे बढ़ाते हुये बोला—"जीतो! अब तुम घर जाओ, लो यह शाक।"

जीतो पहिले ही भरी बैठी थी। उसने झपट कर शाक लिया और उलटा उसके मुँह पर दे मारा। सारा शाक बिखर कर ज़मीन पर गिर पड़ा और दो-चार पत्ते तारू की छोटी-छोटी दाढ़ी में घुस कर रह गये। तारू मुँह से कुछ न बोला और झुक कर फिर शाक चुनने लगा।

जीतो जल्दी से बाहर निकल आई। तारू भी शाक लिये पीछे-पीछे लपका। जीतो पानी की नाली फाँदने लगी, तो उसका पाँव ज़मीन में धँस गया, क्योंकि ज़मीन नमी के कारण नर्म हो रही थी। उसने पाँव बाहर खींच लिया, लेकिन स्लीपर फँसी रह गई। तारू ने बढ़कर जल्दी से स्लीपर बाहर खींच ली और कहने लगा—"तुम ठहरो, मैं अभी धोये देता हूँ।"

नाली के किनारे कपड़े धोने की सिल पड़ी थी। जीतो उस पर मुँह फुला कर बैठ गई और तारू पानी की धारा में पहिले शाक धोने लगा। वह अब कोई संधि-वार्ता करना चाहता था। धीमे स्वर में और अपनी समझ में बहुत नर्म स्वर में उसने कहना शुरू किया—"जीतो! यह भैंस तो अब दो कौड़ी की भी नहीं रही। तीन सेर, केवल तीन सेर दूध देती

है। भला ऐसी भैंस रखने से क्या लाभ ?—एक भूरी भैंस मेरी नज़र में है, कम से कम सोलह सेर दूध देने वाली। दाम अधिक है, मगर कुछ हर्ज नहीं। मुझे भैंस रखने का बहुत शौक़ है। मैंने एक सौ पचपन रुपये जमा किये हैं—बड़ी कठिनाई से—बड़ी ही कठिनाई से। उस भैंस को अवश्य खरीदूंगा। ऐसी मरियल भैंस रखने से क्या लाभ ? ऐसी भैंस...”

तारू को ये बातें बिल्कुल अर्थहीन सी लग रही थीं। उसे इतना भी साहस न होता था कि दृष्टि उठा कर जीतो की ओर देख ले। उसने शाक धोकर एक ओर रख दिया और अब टूटी हुई स्लीपर धोने लगा। एक और बात सूझी, बोला—“और हाँ, तुम बरयामू को तो जानती ही हो, बहुत ही खोटा आदमी है। एक दिन क्या देखता हूँ कि चन्नन के कान ऐंठ रहा है। मैंने कारण पूछा तो कुछ डर गया। कहने लगा कि इसने खेत से एक खरबूजा चुराया था। मैंने चन्नन को उसके हाथ से छुड़ाया। बेचारा चिड़िया की भाँति सहमा हुआ था और फिर मैंने बरयामू की गर्दन पर धप दिये और कहा—“तू इतनी सी बात पर बच्चे को मारे डालता है। खबरदार ! जो इसे कभी हाथ लगाया तो...जानता नहीं चन्नन किसका भाई है ?”

यह कहकर तारू चुप हो गया और उसने कनखियों से जीतो की ओर देखा। परन्तु वह अभी तक मुँह फुलाये चुपचाप अपने कबूतरों के से सफ़ेद-सफ़ेद पैरों को ठीकरी से रगड़-रगड़कर धो रही थी। तारू उठा और स्लीपर उसके पाँवों के पास रख दी और शाक उसकी झोली में डाल दिया। वह उपेक्षा से उठी और इठलाती हुई चल दी। वह समीप के मार्ग से जल्दी से पहुँचना चाहती थी, क्योंकि अब अँधेरा हो चला था। मगर रास्ता खराब था; खेतों में पानी भरा था और मेंड़ बहुत कम चौड़ी थी। जीतो ने स्लीपर हाथ में लेकर बजाय मेंड़ के, पानी में से होकर जाने की ठानी। तारू जल्दी से आगे बढ़ा

और उसका हाथ थाम कर बोला—"तुम स्लीपर पहिन कर मेड़ पर से चली चलो, क्योंकि पानी के अन्दर काँटेदार झाड़ियाँ हैं......मैं तुमको सहारा दिये रहूँगा।"

जीतो ने झटके से हाथ छुड़ा लिया और कहने लगी—"तुम लोगों को लाज नहीं आती, तुम लोग हर एक काम बुरी नीयत से करते हो। मगर मैंने अब निश्चय कर लिया है कि तुम लोगों की इस प्रकार की धृष्टता चुपके से न सहूँगी।"

यह 'बुरी नीयत' के शब्द सुनकर तारू ने अपनी सफ़ाई पेश करनी चाही मगर जीतो चमक कर बोली—"और आज मैं तुम्हें सावधान किये देती हूँ कि भविष्य में मुझे हाथ लगाने का साहस कभी न करना, नहीं तो हाथ तोड़ दूँगी।"

तारू ने पहिले उसके नर्म और कोमल, नन्हें मुन्ने हाथों को देखा, फिर अपने भारी भरकम, मैले-कुचैले और खुरदुरे हाथों पर दृष्टि डाली और तब उसके ओठों पर हल्की सी मुस्कान नाच उठी।

जीतो को उसकी यह हरकत देखकर ज़हर-सा चढ़ गया और उसने आब देखा न ताव, तड़ाक से स्लीपर उसके मुँह पर दे मारी।

"जीतो!" तारू अकस्मात सिंह की भाँति क्रोध में गरजा, लेकिन फिर न जाने क्या सोचकर चुप हो गया।

कुछ देर के लिये दोनों ओर सन्नाटा-सा रहा, फिर जीतो बेपरवाही से शलवार उठाकर पानी में चल दी। स्लीपर की एक कील थोड़ी बाहर निकली हुई थी जिसके कारण तारू का माथा छिल गया और रक्त बहने लगा। मगर वह रक्त की कुछ भी परवाह किये बिना जीतो के आगे-आगे चल रहा था। मार्ग में जो काँटेदार झाड़ी होती उसे अपने फावड़े के एक वार से उखाड़कर जीतो का मार्ग साफ़ कर देता। जब यह जलमार्ग समाप्त हो गया, तो तारू ने बढ़कर काँटेदार झाड़ी में से रास्ता बना दिया और स्वयं ठहर गया। जीतो ने एक क्षण के लिये

उसके रक्त से तर कुर्ते की ओर देखा और फिर चुपचाप घर की ओर चल दी।

अँधेरे में उसने घर का द्वार खोला।

एक ओर दिया जल रहा था। बापू गँड़ासे से ज्वार काटने में व्यस्त था और चन्नन कैंची से कागज़ के फूल काट रहा था।

जीतो अन्दर गई तो बापू ने एक बार सिर उठाया और फिर झुक गया। चन्नन ने एक बार कहा—"बहिन आ गई।" और फिर अपने काम में लग गया।

उसने कोने में से कपास की सूखी छड़ियाँ उठाईं और उन्हें तोड़ कर चूल्हे में रक्खा और ऊपर उपले रखकर आग जलाई। फिर मिट्टी की हँड़िया में शाक पकने के लिये रख दिया।

बापू धीरे से बोला—"आज नम्बरदार और सिपाही फिर आये थे।"

वह सब कुछ समझ गई। उसके हाथ रुक गये। वह कल्पना लोक में विचरण करने लगी। उसे विनाश और बदनामी नाचती हुई दिखाई दे रही थी। उसने ठण्डी साँस लेकर सिर झुका लिया और कुछ व्याकुलता से उठकर, आटा लेकर तन्दूर पर रोटी पकाने चली गई।

रोटी खाते समय बापू ने बताया कि सिपाही कहता था कि यदि परसों तक रुपये का प्रबन्ध न हो सका, तो घर की कुर्क़ी करा दी जायगी।

× × ×

मनुष्य पर जब विपत्ति आती है, तो एक नहीं बल्कि सैकड़ों विपत्तियाँ पारी-पारी से आक्रमण करके उसको विवश और लाचार बना देती हैं।

आज मानो अन्तिम दिन था। सुबह से बाहर गया हुआ बापू दोपहर

को घर लौटा। उसके उदास झुर्रीदार चेहरे से साफ़ प्रकट होता था कि रुपए का प्रबन्ध नहीं हो सका। जीतो की माँ का एक सोने का गहना बचा था जिसके कुल बाईस रुपया मिले थे। बाक़ी तैंतीस कहाँ से आयेंगे? घर के जानवर बेचने से कुछ रुपया मिल सकता था, मगर उन्हीं से तो रोजी थी। यदि वे बिक गये, तो दाल-रोटी से भी गये। जीतो दोपहर का कार्य समाप्त कर घर से बाहर थोड़ी देर तक खुली हवा में खड़ी रही। नम्बरदार अभी तक न आया था, लेकिन उसे आना अवश्य था। और कल? सारी दुनिया उनका तमाशा देखेगी।

सामने से काली घटा झूम कर उठी और आकाश पर छा गई।

जीतो गुरुद्वारे की ओर चल दी। यह छोटा-सा गुरुद्वारा गाँव से कोई दो-तीन फ़र्लांग पर था। इमारत पुरानी थी, दो-तीन कोठरियाँ यात्रियों के लिये बनी थीं और साथ ही एक छोटी सी वाटिका भी थी।

गुरुद्वारे का कार्य एक पवित्रात्मा के सिपुर्द था। जीतो के बापू की उनसे गाढ़ी छनती थी। ये महात्मा जीतो को सिख गुरुओं के पवित्र जीवन की घटनायें, उनके बलिदान और त्याग की कथायें सुनाया करते थे जिससे जीतो के मन को शान्ति मिला करती थी। जब वह वहाँ पहुँची, तो मालूम हुआ कि वे महात्मा किसी काम से दूसरे गाँव में गये हुये हैं। उसने कुएँ पर स्नान किया, पवित्र ग्रन्थ साहब के आगे सिर झुकाया और बाबा नानक से रो-रो कर इस विपत्ति के टल जाने की प्रार्थना करती रही। फिर उसने चमेली के फूल चुने और बन्नन के लिये माला गूँथने लगी, क्योंकि आज सुबह ही उसने उसको माला देने का पक्का वचन दिया था। इतने में वर्षा आरम्भ हो गई। खूब मूसलाधार वर्षा हुई! अन्त में जब पानी बन्द हो गया और वे सिख महात्मा न आये तो जीतो ने माला अपने बालों के जूड़े से लपेटी और गाँव की ओर चल दी।

बादल अभी तक छाये हुये थे; प्रकाश धीरे-धीरे कम हो रहा था।

वह अभी तक घर से काफ़ी दूर थी कि उसने देखा, एक सिपाही और गाँव का नम्बरदार उनके घर से बाहर आ रहे हैं। वह जहाँ थी, वहीं खड़ी रह गई। उसके पाँव जम गये। आखिर क्या हुआ? कल... हाँ कल ढोल पिट जायगा...वह आगे कुछ न सोच सकी। वह लड़-खड़ाते हुये क़दमों से घर की ओर जाने के बजाय और ही किसी ओर चल दी। वह जानती थी कि इस समय उसके वृद्ध बापू की क्या दशा हो रही होगी, मगर उसे साहस न होता था कि वह घर जाय। वह विचित्र परेशानी में चलती गई। न जाने कितनी दूर तक—अन्त में उसकी टाँगों ने जवाब दे दिया और वह वहीं खेत के किनारे बैठ गई।

हम दुख से इतना नहीं घबराते जितना दुख की कल्पना से। वह जानती थी कि इस कष्ट का सामना उसे करना ही पड़ेगा। परन्तु वह चाहती थी कि अन्धकार छा जाय और वह अन्धकार में सब की दृष्टि से बच कर चुपके से अपने घर में चली जाय। उसकी आँखों के सामने अपने घर का चित्र आ गया, जहाँ उसने बचपन से अब तक अपना जीवन बिताया था और अब वह घर दूसरे का होने वाला था।

अन्धकार छाने लगा। आकाश पर इक्का-दुक्का तारे झिलमिलाने लगे। पशु गाँव को लौट रहे थे। तालाब के किनारे पीले-पीले मेंढक टर्रा रहे थे। झाड़ियों में टिड्डे अपने उच्च स्वर में बोल रहे थे और गिद्ध बेरियों पर बैठे ऊँघ रहे थे।

जीतो ने सिर उठाया। सामने धुँध में तारू का कच्चा घर और रहट दिखाई पड़ रहा था। आज तारू का कुआँ देख कर जीतो पर एक नशा-सा छा गया। पिछली घटना उसकी आँखों के सामने नाच गई जब वह शाक लेने के लिये गई थी। तारू की कटुता, उसकी चूड़ी का टूटना, तारू का पछताना और उसे शाक लाकर देना, उसकी स्लीपर धोना फिर हाथ लगा देना और स्लीपर खाकर भी सहन करना, उसके रास्ते से काँटे साफ़ करना और उसके माथे से रक्त का बहना, सब

उसकी दृष्टि के सामने फिर गया। वह सोचने लगी कि तारू में लाख दोष सही, पर दिल का बुरा नहीं और आज जब कि उसका हृदय उमड़ा आता था, वह चाहती थी कि कोई उसकी विपत्ति-कथा सुने। यदि सुनने वाला सहानुभूति के दो शब्द भी कह देगा, तो उसके हृदय को सन्तोष हो जायगा। मगर ऐसा हमदर्द था कौन ?

तारू के कुएँ की इस समय कैसी शोभा थी। उस समय रहट की रूँ-रूँ और पशुओं की घंटियों की टन्-टन् ने कैसा विचित्र समाँ बाँध रक्खा था। शरीह के ऊँचे वृक्ष वायु में झूम रहे थे। हरे-भरे खेत में सफेद घोड़ी घास चर रही थी; गन्नों के खेत के पास कुत्ते खेल रहे थे वे कभी दुम हवा में उठा कर विचित्र ढंग से चलते, कभी गुर्रा कर एक दूसरे पर लपकते और फिर इकट्ठे होकर नये-नये खेल खेलने लगते।

जीतो को अनायास ही विश्वास होने लगा कि तारू उसका दुखड़ा अवश्य सहानुभूति के साथ सुनेगा। यह सोच कर कि इस प्रकार समय भी कट जायगा और उसके हृदय का भार भी हल्का हो जायगा, वह कुएँ की ओर चल दी। मदार के पेड़ों और काँटेदार झाड़ियों में होती हुई वह कुएँ पर गई। हरी-हरी घास की सोंधी-सोंधी सुगन्ध आ रही थी। जीतो ने इधर-उधर तारू को देखा, मगर वह दिखाई न पड़ा। वह दरवाजे की ओर बढ़ी, कुछ ठिठकी, ठिठक कर बढ़ी और धीरे से कुण्डी खटखटाई।

"कौन है ?" अन्दर से तारू ने कड़े स्वर में पूछा।

जीतो चुप रही।

"अरे भाई कौन है ? चले आओ, द्वार खुला है।"

जीतो ने धीरे से द्वार खोल दिया।

तारू उसे देखते ही उछल पड़ा, "आओ जीतो ! तुम कैसे रास्ता भूल पड़ीं ?"

उससे कुछ जवाब न बन पड़ा। उसने तारू की ओर, जो पीढ़ी

पर बैठा गन्ना चूस रहा था, दबी-दबी दृष्टि से देखा और धीरे से बोली—"यों ही इधर आई थी, सोचा कि माँ से मिलती जाऊँ।"

"माँ? माँ तो कुएँ पर बहुत कम आती है। आती भी है तो दिन को। इस समय घर पर ही रहती है।"

वह जानती थी कि तारू की माँ कुएँ पर नहीं रहती, गाँव में रहती है। वह लौटने लगी, तो तारू ने डरते-डरते पीढ़ी अपने नीचे से निकाल कर उसकी ओर ढकेल दी और झिझकते हुए बोला—"जीतो! अब आई हो तो बैठो......अगर तुम्हें जल्दी न हो तो बैठो, शाक ले जाओ, चन्नन के लिये गन्ने लेती जाना। गन्ने बहुत मीठे हैं।"

जीतो पीढ़ी लेकर अँधेरे कोने में बैठ गई।

तारू ने टाट पर बैठते हुये पूछा—"आज तो वर्षा अच्छी हो गई है। हवा मज़े की चल रही है...क्या तुम शर्बत पियोगी? गुड़ बहुत बढ़िया रक्खा है।"

"नहीं, प्यास नहीं है इस वक्त।"

"अच्छा, कुछ हर्ज नहीं, तुम गुड़ घर ले जाना और कल शर्बत बना कर देखना।"

"अच्छा।"

"मैंने चन्नन से कहा था कि गन्ने ले जाय, मगर वह आज तो आया नहीं। उसे यहीं भेजा दिया करो, रास्ता जानता ही है। रस पी जाया करेगा, और यह हमारे पिछवाड़े बेर लगे हुये हैं—लाल-लाल, बहुत मीठे। मैं तो इधर-उधर के छोकरों को तोड़ने नहीं देता, मैं कहता हूँ कि चन्नन आये तो खाये। आखिर बच्चा है न, उसे बेर बहुत भाते हैं जब हम तुम छोटे थे, याद है न, हम भी बेर खाने जाया करते थे।"

"क्यों तारू! तुम्हारे गन्ने तो खूब हुये हैं अब की।" जीतो ने बात का रुख बदल कर कहा।

"हाँ, सब वाह गुरु अकाल पुरख की कृपा है।"

वह चुप रही।

"कहो तो बाहर से गन्ना ला दूँ?"

"नहीं तारू, मे राजी नहीं चाहता।"

अब फिर कुछ देर के लिये सन्नाटा रहा। तारू उसके मौन का कारण जानना चाहता था फिर बहुत सावधानी से कहने लगा—"जीतो मुझे वास्तव में डर लगता है कुछ कहते हुये, कहीं...कहीं तुम बिगड़ न जाओ! आखिर बताओ न, तुम आज इतनी चुप क्यों हो? क्या कोई खास बात है?"

ये सहानुभूति पूर्ण शब्द सुनकर जीतो की आँखों में आँसू आ गये, मगर अन्धकार के कारण तारू उन्हें देख न सका। परन्तु वह अपने भराये हुये स्वर को न छिपा सकी—"नहीं तारू...तुम्हें क्या बताऊँ..."

तारू के चेहरे पर क्रोध के चिन्ह प्रकट होने लगे, आँखें चमकने लगीं। वह कड़े स्वर में कड़क कर बोला—"फुम्मन सिंह ने कोई दुष्टता तो नहीं की? बता दो जीतो, वह देख सामने कृपाण लटकी हुई है। मैंने आज ही तेज़ की है। मैं फुम्मन के विषय में थोड़ा-बहुत जानता हूँ मगर अब उसकी मौत दूर नहीं। यह कृपाण उसी का खून पीने के लिये रक्खी है..."

"नहीं तारू!" जीतो हाथ उठाकर बोली।—"यह बात नहीं, यह बात बिल्कुल नहीं...मैं बताती हूँ, तुमसे, कुछ छिपा नहीं...असल बात यह है कि..."

दरवाज़ा धीरे से खुला। तारू चीते की भाँति चौकन्ना हो गया और उसका हाथ तुरन्त पास ही पड़ी हुई कुल्हाड़ी पर जा पड़ा! जीतो ने चौंक कर दरवाजे की ओर देखा।

"क्या मेरी बहिन यहाँ है?" चन्नन ने धीरे से दरवाजे में से सिर निकाल कर तारू से पूछा।

तारू ने इतमीनान की साँस ली और कुल्हाड़ी पीछे की ओर सरका दी।

"चाँद, आ जाओ, मैं यहाँ हूँ।"

चन्नन दौड़कर आया और अपनी बहिन की गोद में चढ़ बैठा।

"ढूँढ़ लिया न तुम्हें, मैं तुम्हें बड़ी देर से ढूँढ़ रहा हूँ। फिर मैंने सोचा कि बहिन ज़रूर मेरे लिये बेर लेने के लिये तारू के कुएँ पर गई होगी।"

जीतो उसके माथे पर से बाल हटाते हुए बोली—"क्यों रे, तुझे डर नहीं लगा, अँधेरे में?"

"नहीं।"

तारू बोला—"वाह, भला शेरों के बच्चों को भी कभी डर लगता है।"

चन्नन ने तारू की ओर देखकर कहा—"अच्छा तुमने कहा था कि गन्ने देंगे, लाओ अब...मैं तो बहुत से लूँगा।"

"आओ, जितने चाहो लो।"

"अच्छा लाओ, दो।" यह कहकर वह गोदी से उतरने लगा मगर फिर रुक गया। "ज़रा ठहरो, एक बात है, तुम्हें नहीं बतायेंगे।" फिर बहिन के कान में कहने लगा—"बहिन, हमें एक पैसा दो, तुमने कहा था।"

"घर पर लेना।"

चन्नन कन्धा पकड़ कर हिलाते हुये हठ करने लगा—"अभी दो।"

"तुम बहुत अच्छे हो चन्नन।" जीतो ने चुमकारते हुये कहा—"इस वक्त हैं नहीं।"

"तो तारू से ले दो।"

"उसके पास भी नहीं है"

"है क्यों नहीं...आज जब तुम बाहर चली गई थीं, तारू हमारे घर आया और बापू को उसने छन-छन करके बहुत से रुपये गिन दिये।"

"चन्नन !" जीतो आश्चर्य से बोली।

लेकिन चन्नन अपनी ही धुन में था। "मगर मैं तो कहता हूँ कि बापू ने बहुत बुरा किया। उसने शाम को सब रुपया नम्बरदार को दे दिया..."

जीतो के आश्चर्य की सीमा न रही।

"मगर यह तुमसे किसने कहा ?"

"किसने कहा ?" चन्नन चीख कर बोला—"मैंने खुद देखा, अच्छा अब बताओ, तारू से पैसे ले लूँ ?"

"तुमने खुद देखा !" कह कर वह चुपचाप हवा में ताकने लगी। एक बड़े तूफ़ान और आँधी के बाद मानो एकाएक बादल फट गये। वायु स्तब्ध हो गई और चारों ओर शान्ति छा गई। उसके मस्तिष्क की चिन्ताएँ दूर हो गईं। उसके हृदय पर से एक भार-सा हट गया। इस तल्लीनता में जीतो को ज्ञात ही न हुआ कि कब चन्नन ने तारू से पैसा लिया और कब वह कुएँ पर से गन्ने के लिये बाहर दौड़ गया और कब तारू अपनी जगह से उठ कर भैंस के पास जा खड़ा हुआ। इस आनन्द- मिश्रित तल्लीनता में जीतो को तारू का ध्यान आया। वह संसार में उसका सच्चा सहायक था। कितना सज्जन, इतनी देर तक बातें करने पर भी उसने रुपयों की किसी प्रकार की चर्चा नहीं की न कोई संकेत ही किया। वे रुपये उसने किस-किस कठिनाई से जमा किये थे। मगर उसने अपनी निजी इच्छा पर उसकी आवश्यकता को तरजीह दी।

तारू का ध्यान आते ही उसकी सूरत उसकी आँखों के सामने आ खड़ी हुई। जब उसने तारू से कहा था कि वह प्रत्येक काम खराब नीयत से करता है, ये कैसे स्वार्थपूर्ण और अर्थहीन शब्द थे, वह उसका घायल माथा, वह बहता हुआ खून, वह उसकी सहनशीलता—जीतो चौंकी और उसकी आँखें तारू को ढूँढने लगीं जो कि उसकी

ओर पीठ किये भैंस के पास खड़ा था। जीतो उसके पास जाकर धीरे से बोली—"तारू !"

वह चुप रहा।

"मेरी तरफ़ देखो, तारू !"

तारू ने देखा कि जीतो की बड़ी-बड़ी आँखों में आँसू डबडबा रहे हैं।

वह अपने भारी स्वर में बोला—"रोती क्यों हो जीतो, मैं तो हर समय इसी कोशिश में रहता हूँ कि तुम्हारे किसी काम आ सकूँ। मुझे अपनी उस दिन की हरकत पर बहुत खेद है।"

जीतो ने धीरे से अपना हाथ उसके माथे पर रख दिया—जिस जगह उसके अभागे हाथों ने स्लीपर मारी थी। फिर धीरे से कहने लगी—" तारू, अब मैं जाती हूँ। मैं फिर आऊँगी, अब तुम आराम करो। हाँ, मैं आऊँगी।"

यह कह कर वह पीढ़ी के पास वापस आई और स्लीपर पहिन कर लौटी, तो देखा कि तारू :रास्ता रोके दरवाजे के आगे खड़ा है। वह मुस्कुरा कर अपने कड़े स्वर में बोला—"जीतो। आज फिर मेरी नीयत खराब हो रही है, आज फिर दण्ड दो।"

जीतो ने झेंप कर एक उचटती हुई दृष्टि तारू पर डाली, फिर शरीर को चुराती हुई उसकी ओर बढ़ी, अपने जूड़े से चमेली का हार खोला और कुछ मुस्कराकर और कुछ लजाते हुये वह हार उसके गले में डाल दिया।

तारू ने रास्ते से हट कर द्वार खोल दिया। आगे चन्नन गन्ने लिये भागा जा रहा था। जीतो ने गन्ने थाम लिये और उसे गोद में उठा लिया। गोबर और कीचड़ से पाँव बचाती हुई वह चल दी। चन्नन उसके गले में बाहें डाल कर कहने लगा—"बहिन, तारू मुझे बहुत अच्छा लगता है, तुम्हें कैसा लगता है ?"

जीतो मन ही मन लजा गई। उसने इधर-उधर देख कर कि कोई सुन तो नहीं रहा है, जवाब दिया—"हाँ चन्नन! तारू मुझे भी... तारू बहुत अच्छा आदमी है।"

जीतो को अब भी तारू के गाने की भारी और बेसुरी आवाज सुनाई दे रही थी—

निक्का घड़ा चक लछिये!
तेरे लक नूँ जरब न आवे
निक्का घड़ा चक लछिये!

जग्गा

माझा के इलाके में भोकन एक छोटा सा और अप्रसिद्ध गाँव था। मुश्किल से सौ घर होंगे। अधिकतर सिक्खों की आबादी थी। यहाँ की एक बात विचित्र थी। वह यह कि समय-समय पर यहाँ कोई असाधारण सुन्दर लड़की जन्म लेती और उसके जवान होने पर उसके साथ किसी नवयुवक के प्रेम की कहानी इतनी प्रसिद्ध होती कि ससी-पुन्नू, सोहिनी-महीवाल और हीर-राँझा की कथा भी फीकी पड़ जाती थी। अब की गुरनाम कौर की पारी थी।

गुरनाम के सौन्दर्य ने आस-पास की बस्तियों के नवयुवकों में एक हलचल सी मचा दी थी। वह बिल्कुल गुड़िया सी थी। चाल ऐसी कोमल

कि धरती पर पदचिह्न न पड़ते। मदभरी आंखें ऐसे पाप की ओर आमंत्रित करती थीं कि उससे अच्छे पुण्य की भी कल्पना नहीं की जा सकती थी। लेकिन वह अबोध थी, जवानी आ रही थी और अभी वह नवयुवकों के इशारों का मतलब नहीं समझती थी। वह हर किसी से मुस्करा कर बात कर लेती थी, अभी उसे अपने रूप का अभिमान न हुआ था। इसीलिये वह जिस व्यक्ति से भी मुस्करा कर बात कर लेती थी, वह यही समझता था कि गुरनाम उससे प्रेम करती है।

शृंगारासिंह ने तो एक बार अलानिया नवयुवकों के मजमे में खड़े होकर कह दिया था कि वह गुरनाम को भगा ले जायगा। उसी समय दिलीपसिंह उधर से निकला तो दूसरों ने उसे समझाया कि देखो, दिलीपसिंह भी गुरनाम के प्रेमियों में गिना जाता है, वह सुन लेगा तो स्थिति खतरनाक रूप धारण कर लेगी। इस पर शृंगारासिंह ने ज़ोर से ठहा लगाया और दिलीप के पीछे खड़े होकर बकरा (किसी की दिल्लगी उड़ाने के लिये मुँह पर हाथ रख कर 'भक-भक' की आवाज निकालने को बकरा बुलाना कहते हैं) बुला दिया। इस पर दिलीपसिंह की आँखों में खून उतर आया। उसने क्रोध से शृंगारा की ओर देखा और कड़क कर बोला—"तूने बकरा क्यों बुलाया?"

शृंगारा ने तहमद कस लिया और ताल ठोंक कर मुक़ाबला करने आ खड़ा हुआ। दिलीप की आँखों से आग बरस रही थी। क़रीब था कि दोनों नवयुवक आपस में गुँथ जायँ कि लोगों ने बीच-बचाव कर दिया।...लेकिन कहाँ तक! एक दिन खूनी पुल पर दोनों का सामना हो गया। दिलीप का टखना उतर गया और दिलीप की लाठी के एक वार से शृंगारा का जबड़ा टूट गया। जान तो बच गई पर सूरत बिगड़ गई। उस दिन से सब के कान खड़े हो गये और लोगों को मालूम हो गया कि दिलीप के जीते जी गुरनाम के प्रेम का दावा करना आसान बात नहीं।

रात भींग चुकी थी। चाँद जवानी पर था। गाँव पर एक रहस्यमय सन्नाय छाया था। कभी-कभी कुत्तों के भूंकने की आवाज़ आ जाती या जंगली बिल्ले की म्याऊँ-म्याऊँ की, जो उस समय रहट की चर्खी के पास बैठा दुम हिलाते हुए चिल्ला रहा था।

यह रहट कूड़े के ढेर के पास गाँव के बाहर की तरफ़ था। वहीं पर पीपल का एक बड़ा और घना वृक्ष था जिस पर झूला पड़ा था। चूंकि बैलों को हाँकने वाला कोई था नहीं इसलिये जब उनका मन चाहता वे चलते और जब जी चाहता खड़े हो जाते। इस समय भी चुपचाप खड़े सींग हिला रहे थे।

इतने में एक साँडनी सवार सिक्ख युवक पीपल के नीचे आकर रुका। उसने साँडनी को बैठाना चाहा तो पहिले तो वह ज़रा बिलबिला कर मचली और फिर धम से बैठ गई। पंजाब के देहातों के लिए छः फुट ऊँचा जवान कोई असाधारण चीज़ नहीं, पर इस युवक के कन्धे मामूली से अधिक चौड़े थे। हाथों और चेहरे की रगें उभरी हुई, आँखें लाल अंगार, नाक जैसे तोते की चोंच, रंग काला, चौड़े और मज़बूत जबड़े, सिर ऐसा दिखता था मानों गरदन से तराश कर बनाया गया हो, जूड़े पर रंग बिरंग की जाली, जिसमें से तीन बड़े-बड़े फुन्दने निकल कर उसकी काली दाढ़ी के पास लटक रहे थे, कानों में बड़े-बड़े मुन्दरे, काले रंग की छोटी सी पगड़ी के दो तीन बल सिर पर, बदन पर लम्बा कुरता और मूँगिया रंग की धारीदार तहमद जो उसकी एड़ियों तक लटक रही थी, गले का तसमा खुला हुआ और उसकी छाती पर घने हुए काले बाल और हाथ में एक तेज़ और चमकदार छवी (एक तेज़ टेढ़ा हथियार जो कि लाठी के सिरे पर चढ़ा लिया जाता है)।

आते ही उसने बैलों को दुतकारा और वे चलने लगे। उसने जूते उतारे, तहमद को ऊपर उठाया और अपने मोटे कड़े (जो सिख लोग कलाई में पहिने रहते हैं) को पीछे हटा पानी की झाल की ओर बढ़ा।

पहिले उसने मुँह हाथ धोया, जोर से खाँसा और फिर पानी पीने लगा।

जब वह पगड़ी के शमले से मुँह पोंछने लगा तो एक तरुणी को देख कर ठिठक गया। लड़की ने पानी भरने के लिये घड़ा झाल के नीचे किया। उसकी गोरी कलाई पर की काली काली चूड़ियाँ एक 'छन' के शब्द के साथ एकजा हो गईं। गुलाबी रंग की शलवार, छींट का घुटनों तक कुर्ता, सिर पर धानी रंग की हलकी फुलकी ओढ़नी, कानों में छोटी छोटी बालियाँ, जब उसने अपना कोमल अधर दाँतों तले दबाया, घड़े को एक झटके के साथ उठा कूल्हे पर रक्खा तो उसकी कमर में एक आकर्षक सा झुकाव पैदा होकर रह गया।

युवक ने पहिले एक पाँव औलू (जहाँ पानी गिरता है) से बाहर निकाला और उसे झटक कर जूता पहिन लिया। फिर उसने दूसरे पाँव को झटका दिया और दूसरा जूता भी पहिन लिया। तब वह अपनी छवी हाथ में लिये हुए अरूड़ी पर, जहाँ एक मुर्गी के बहुत से सफ़ेद पर पड़े थे, खड़ा हो गया। पास ही किसी के घर की कच्ची दीवार थी, जिस पर उपले रक्खे थे। जब तरुणी दीवार के निकट से निकलने लगी तो पुरुष ने छवी से एक उपला नीचे गिरा दिया जो उस लड़की के पास ही जाकर गिरा। उस समय अजनबी पुरुष ने उसके पाँव देखे। ऐसे थे वे पाँव मानो सफ़ेद सफ़ेद कबूतर। तलुवों की हलकी गुलाबी रंगत ऐसी मालूम होती थी मानो वे पाँव अभी गुलाब की कलियों को रौंद कर चले आ रहे हों।

लड़की ने अपनी लम्बी काली पलकें उठा कर उसकी ओर देखा, शायद उसने उसे सिर्फ एक पथिक समझा था, मगर उसकी डरावनी सूरत देख कर उसकी बड़ी-बड़ी सुरमा लगी आँखों में भय की छाया दिखाई पड़ने लगी। पुरुष ने भारी भरकम और कड़े स्वर में पूछा—"तू कौन है ?"

लड़की की दृष्टि पुरुष के चेहरे पर जमी हुई थी। यह पहिला अवसर था कि किसी पुरुष ने उसे इस बेमुरव्वती से सम्बोधित किया था। उसके लाल-लाल कोमल अधर फड़कने लगे, मानो किसी ने उन पर लाल मिर्चें छिड़क दी हों। मगर पुरुष असाधारण तौर पर भयावना था। पुरुष ने उसी स्वर में अपना सवाल दोहराया—"तू कौन है ?"

लड़की समझ न सकी कि इस बात का क्या उत्तर दे। उसने अपनी पतली और लाल अँगुली उठा कर इशारा करते हुये जवाब दिया—"मैं वहाँ, उस घर में रहती हूँ।"

पुरुष ने चुभती हुई दृष्टि से उसकी ओर देखा और अपने चौड़े कन्धों को हिलाते हुए बोला—"तेरा नाम क्या है ?"

लड़की की आँखें आँसू से भर गईं, बोली—"गुरनाम !"

"तू वहाँ किसके साथ रहती है ?"

"मेरी माँ है; भाई, बाप, दादा सभी रहते हैं।"

"मुझे अपने घर ले चल।" पुरुष ने उसके साथ-साथ क़दम बढ़ाते हुए कहा।

"मुझे तुमसे डर लगता है।"

पुरुष के माथे पर बहुत सी त्योरियाँ पड़ गईं, उसने अपनी दुल्हिन की तरह सजी हुई साँडनी की नकेल पकड़ कर अपने विचार से ज़रा नर्म स्वर में पूछा—"क्यों, क्या तुम लोग सिक्ख नहीं हो क्या ?"

लड़की का चेहरा कानों तक लाल हो गया—"लेकिन मुझे तुम से भय लगता है।"

"क्यों ?" पुरुष ने उजड्डपन से आग्रह करते हुये पूछा।

लड़की ने क्षण भर के लिये उसकी चमकदार आँखों की ओर देखा, फिर बोली—"तुम हँसते क्यों नहीं ?"

"अरे यह बात !" यह कह कर अजनबी ने एक भयानक ठहाका लगाया। मानो कोई पानी से भरा हुआ मटका ज़मीन पर उंडेल दिया

जाय। उसका ठहाका सुन कर कई चिमगादड़ें अपना स्थान छोड़कर उड़ गईं।

× × ×

गुरनाम का घर गाँव से बाहर धरीक के वृक्षों के झुण्ड के पास था और दूर से दिखाई देता था।

दरवाज़े के सामने पहुँच कर अजनबी रुक गया और गुरनाम ने अन्दर से अपने बापू और भाई को बाहर भेजा। उन को देखते ही अजनबी ने ऊंचे स्वर में कहा "वाह गुरु जी का खालसा, श्री वाह गुरु जी की फ़तह।"

"वाह गुरु जी का ख़ालसा, श्री वाह गुरु जी की फ़तेह।"

आगन्तुक बिना किसी हिचकिचाहट के बोला—"मैं दूर से आ रहा हूँ, रात अधिक बीत चुकी है, मैं आज यहीं ठहरूंगा।"

बापू दराँती अपने पोते के हाथ में देकर अजनबी के मुंह की ओर देखने लगा। वह बहुत सभ्य और सुसंस्कृत व्यक्ति था मगर आगन्तुक की भयानक सूरत उसे अचरज में डाले हुए थी। ख़ैर, उसने रज़ामन्दी प्रकट करते हुए जवाब दिया—"मैं हर तरह से सेवा के..."

इसके पहिले कि वह अपना वाक्य पूरा करता आगन्तुक साँडनी लड़के को सौंप कर दरवाज़े के अन्दर दाखिल हो चुका था।

यद्यपि घर के कुल सामान पर ग़रीबी की छाप थी मगर गोबर से लिपी हुई कच्ची दीवारें इस बात का प्रमाण दे रही थीं कि घर की स्त्रियाँ आलसी या आराम-पसन्द कदापि नहीं हैं। घर के सब व्यक्ति विवाह वाले घर गये थे, सिवाय चार के।

ड्योढ़ी से निकल कर अनजबी सहन में दाख़िल हो गया। एक बच्चा छाती से गुल्ली-डंडा लगाये सो रहा था। सहन पशुओं के मल-मूत्र से अटा पड़ा था। एक ओर नाँद के पास एक भैंस खड़ी जुगाली कर रही थी। भूसे और खली की सानी की गन्ध चारों ओर फैली हुई था। रस्सी

पर मैले-कुचैले कपड़े लटक रहे थे। एक ओर खरास (बैलों द्वारा चलने वाली चक्की), दूसरी ओर तन्दूर और पास ही दीवार से टिका हुआ छकड़े का पहिया, बड़े-बड़े उपले, कोने में कपास की छड़ियाँ, चूल्हे के पास जूठे बरतनों का ढेर। एक कमरे में सफ़ेद-सफ़ेद चमकते हुये बरतन दिखाई दे रहे थे। साथ ही तागे पिरोये हुये शलजम के क़तले सूखने के लिये लटक रहे थे।

सहन से गुज़र कर बूढ़ा बापू अजनबी को दरवाज़े से बाहर छप्पर के नीचे ले गया। थोड़ी सी जगह के तीनों ओर कच्ची दीवार उठा दी गई थी। सूखे हुये उपले, जो जलाने के काम आ सकते, इसी जगह रक्खे जाते थे। यहाँ पर एक चारपाई डाल दी गई। चारखानों वाला एक खेस और अजनबी के दिल की तरह कठोर एक तकिया उस पर रख दिया गया।

गुरनाम ने कपास की छड़ियों का एक गठा तन्दूर में फेंका और स्वयं आटा गूँधने लगी। जिस समय वह तन्दूर में रोटियाँ लगाने लगी तो उसकी ओढ़नी सिर से खिसक गई। उसकी लम्बी चोटी के रंग-बिरंगे फुन्दने उसकी पिंडलियों तक लटक रहे थे। दहकते हुये तन्दूर की रोशनी उसके सुन्दर मुख पर पड़ रही थी—और अजनबी चुपके-चुपके उसे देख रहा था।

शलजम की तरकारी, एक कटोरे में शक्कर और घी, डेलों (बेर की भाँति एक फल) का अचार, दो बड़ी-बड़ी प्याज़ की गंठियाँ, और आठ बड़ी-बड़ी रोटियाँ थाल में रखकर गुरनाम उसको दे आई।

जब अजनबी ने ऊँचे स्वर मे तीन-चार डकारें लीं और बड़े ज़ोर-शोर के साथ मुँह में अंगुली फेर कर कुल्ली की तो गुरनाम को मालूम हो गया कि वह भोजन समाप्त कर चुका है।

वह बरतन उठाने लगी तो उसने देखा कि अजनबी कपड़े उतार रहा है। जब उसने तहमद उतारी (सिक्ख हमेशा घुटनों तक एक

जाँघिया पहनते हैं) और उसे झाड़कर तकिये के पास रखने लगा तो सोने का एक कंठा नीचे गिर पड़ा । गुरनाम ठिठक कर वापस जाने लगी तो अजनबी ने धीरे से पूछा—"गुरनाम, बस जा रही हो क्या ?"

गुरनाम अपनी आदत के अनुसार भोलेपन से मुस्कराई और ओढ़नी संभालती हुई आगे झुक कर धीरे से बोली—"सब लोग सो जाएंगे तो मैं आऊंगी ।"

× × ×

अजनबी दूर खेतों की ओर देख रहा था । शीह और बबूल के वृक्ष काले दैत्यों की भाँति चुप खड़े थे । लुण्ड-मुण्ड बेरियों पर बयों के घोंसले लटक रहे थे ।

ऐसे सुनसान समय में, तारों भरे आकाश के नीचे किसी दूर पर चलते हुए रहट से किसी नवयुवक के गाने की हलकी-हलकी आवाज़ आ रही थी ।

बाग विच केला ई,
निकल के मिल जालो ।
साड़े वंझनेदा वावैला ई,
नी निकल के मिल जालो ।

अर्थात्—प्रेमी प्रेमिका से कहता है कि अब तू घर से बाहर निकल, मुलाक़ात कर ले, मैं जल्दी जाने वाला हूँ ।

इतने में गुरनाम दबे पाँव, शलवार के पाँयचे उठाये, निचला होंठ दाँतों तले दबाये, चुपके-चुपके आई ।

× × ×

थोड़ी देर बाद दोनों में घुल-मिलकर बातें होने लगीं ।

अजनबी ने बहुत से सोने के गहने और मोतियों के हार निकाले ।

आश्चर्य के कारण गुरनाम के मुंह से एक चीख निकलने वाली ही थी लेकिन अजनबी ने होंठों पर अंगुली रखकर चुप रहने का इशारा किया।

गुरनाम बड़ी देर तक मैना की तरह चहकती रही, इधर-उधर की बातें करती रही मगर उसका ध्यान गहनों ही की ओर था। अन्त में उसने अपनी बातों से आप ही उकता कर एक गहरी साँस ली और थके हुये स्वर में बोली—"क्यों, तुम ये गहने कहाँ से लाये हो—मेरे विचार में तुम जेबकतरे तो नहीं हो, मुझे जेबकतरों, और डाकुओं से बहुत डर लगता है। वे झट से गला दबाकर आदमी को मार डालते हैं।" यह कह कर गुरनाम अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से अंधेरे की ओर घूरने लगी मानो कोई सचमुच का डाकू उसका गला दबाने को आ रहा हो।

"मत घबराओ, तुम भी कैसी बच्चों की सी बातें करती हो! भला मेरे होते हुए तुमको किस बात का भय। उठो, यहाँ मेरे पास चारपाई पर बैठ जाओ।"

गुरनाम उठ कर उसके पास बैठ गई। उसने अजनबी के चौड़े कन्धों को देखा और फिर मानो अपना इत्मीनान कर कहने लगी—"तुम बहुत अच्छे हो—ये गहने तुम अपनी पत्नी के लिये लाये होंगे, है न!"

"हाँ।"

गुरनाम ने अपनी हथेली पर अपने गाल रखते हुये बड़े चाव से पूछा—"तुम्हारी पत्नी कैसी है!"

"मगर मेरा तो अभी ब्याह ही नहीं हुआ।"

"अच्छा, तो होने वाली पत्नी के लिये लाये हो!"

अजनबी ने अपनी दाढ़ी के खुरदुरे बालों पर हाथ फेरते हुये कहा—"अभी तो मुझे यह भी नहीं मालूम कि मेरी पत्नी कौन बनेगी, बनेगी भी या नहीं!"

गुरनाम ने अपनी दोनों हथेलियों पर ठुड्डी रखकर अपनी आँखों

को जल्दी-जल्दी झपकाते हुये, नाक ज़रा सिकोड़ कर भोलेपन से कहा—"हाँ, तुम काले हो ज़रा।"

अजनबी की छाती में जैसे किसी ने घूंसा मार दिया। मगर गुरनाम बड़ी गम्भीरता से किसी गहरी चिन्ता में डूब चुकी थी। शायद वह अजनबी के लिये पत्नी प्राप्त करने का उपाय सोच रही थी।

"ये गहने तुम ले लो।"

गुरनाम ने चौंक कर अजनबी की ओर देखा।

"फिर तुम अपनी पत्नी को क्या दोगे?"

अजनबी को कुछ जवाब न सूझा। लड़खड़ाते हुए स्वर में बोला—"फिर मैं तुमसे ले लूंगा।"

गुरनाम की आँखें चमकने लगीं। उसकी बाछें खिल गईं, ताली बजाकर बोली—"मैं इनको उपलों में छिपा दूंगी।—कभी-कभी रात को अच्छे-अच्छे गहने पहिनकर खेतों में जाया करूँगी।"

कुछ देर चुप रहने के बाद अजनबी ने कहा—"गुरनाम, तुम भी तो मुझको कुछ दो।"

गुरनाम ने दोनों हाथों से मुंह छिपा लिया—"मेरे पास क्या है?"

"कुछ भी दो।"

गुरनाम चेहरे से हाथ हटाकर कुछ देर सोचती रही। फिर उसने अपने गले से कौड़ियों और खरबूजे के रंग-बिरंग के बीजों का हार उतार कर अजनबी की ओर बढ़ा दिया। वह अपनी इस तुच्छ भेंट को देख कर कुछ झेंप सी गई और उसके गाल दहकने लगे।

थोड़ी देर बाद गुरनाम ने एक अंगूठी उठाकर कहा—"यह मेरी अंगुली में पहिना दो। देखूँ, कैसी लगती है?"

अजनबी ने अपने काले-काले मैले कुचैले लम्बे हाथों में गुरनाम का कंवल-सा हाथ ले लिया। गुरनाम आँखें झुकाये, बच्चों की सी सादगी और दिलचस्पी के साथ अंगूठी की ओर देख रही थी। उसके

केशों ने उसके कपोलों का एक बड़ा भाग छिपा रक्खा था। अजनबी तन्मयता से उसके सुन्दर सीपियां जैसे पपोटों पर नज़रें गाड़े हुये था। जब वह उसकी अंगुली में अंगूठी पहिनाने लगा तो उसकी अपनी अंगुलियाँ काँपने लगीं और उसे ऐसा अनुभव होने लगा मानो उसकी चार-चार अंगुल चौड़ी कलाइयां की शक्ति छीनी जा रही हो।

गुरनाम चौंकी और सहमी हुई हिरनी की तरह उठ खड़ी हुई।

"माँ खाँस रही हैं—अब मैं जाती हूँ।"

अजनबी अपने स्वप्न से चौंका।

गुरनाम ने आगे झुककर रुपहले स्वर में पूछा—"जाऊँ क्या?"

अजनबी की आज्ञा लेकर वह गहनों की पोटली बग़ल में दबाये झट से अन्दर चली गई।

× × ×

प्रातःकाल गाँव के पशु रात भर की गर्मी से घबराकर तालाब में घुस पड़े।

अजनबी जाने के लिये तैयार बैठा था। गुरनाम ने उसे एक बासी रोटी पर मक्खन और लस्सी का बड़ा कटोरा दिया। और जब अजनबी कपड़े पहिन कर तैयार हुआ तो गुरनाम रोने लगी।

अजनबी ने धीरे से कहा—"रोती क्यों हो?" अजनबी हँस पड़ा। "मैं फिर आऊँगा।"

बापू को आते देखकर उसने आँसू पोंछ डाले।

बापू अजनबी को विदा करने के लिये कुछ दूर तक उसके साथ गये। उन्होंने अजनबी से पूछा—"क्या मैं अपने आदरणीय अतिथि का नाम पूछ सकता हूँ?"

"हाँ" अजनबी ने अपनी तीव्र दृष्टि उसके चेहरे पर गाड़ कर जवाब दिया। फिर उसने अपनी धूप में चमकने वाली छवी की ओर

गर्व से देखते हुये कहा—"और तुम को यह भी मालूम होना चाहिये कि अगर मेरे नाम की चर्चा अपने या पराये किसी से भी की तो तुम्हारे और तुम्हारे खानदान के सब लोगों के खून से मुझे अपने हाथ रंगने पड़ेंगे।"

बूढ़े का चेहरा फ़क हो गया।

अजनबी साँडनी पर सवार हो गया और महार को झटका देकर अपने भारी स्वर में बोला—"आज रात जग्गा डाकू तुम्हारा मेहमान था।"

× × ×

जग्गा डाकू, असली नाम सरदार जगत सिंह, ऐसा भयानक व्यक्ति था जिसका नाम सुन कर बड़े बड़े बहादुरों के छक्के छूट जाते थे। लूट-मार, हत्या और उपद्रव उसका नित्य का काम था। बचपन और जवानी रक्त की होली खेलने में ही बीत गई। बहुत-सी ज़मीन का मालिक था। बड़ों-बड़ों पर हाथ साफ़ करता था, ग़रीब खुश थे। उसके विरुद्ध गवाही देने का कोई व्यक्ति साहस न कर सकता था। तीस वर्ष से ऊपर आयु थी। मौत के साथ खेलता हुआ सो जाता और मौत की दिल्लगी उड़ाता हुआ जाग उठता। सौन्दर्य, प्रेम, दया, और सज्जनता आदि का उसके लिये कुछ भी अर्थ न था। दूर-दूर तक उसकी धूम थी। इलाक़ा भर उससे थर्राता था। उसका हृदय पत्थर, भुजाएं लोहा, क्रोध प्रलय, जीभ आग की लपट—वह क़हर था।

लोगों ने उसके नाम पर कई गाने बना लिये थे। नवयुवक झूम-झूम कर गाया करते थे। एक घटना पर यह गाना बना था :—

"पक्के पुलते लड़ाइयाँ होइयाँ,
पक्के पुलते।
पक्के पुलते लड़ाइयाँ होइयाँ,

ते छत्रियाँ दे किल टुट गए......जगिया !

जग्गे मारेया लायलपुर डाका,

ते तारां खड़क गयित्रां ।

अर्थात्—पक्के पुल पर इतनी भीषण लड़ाई हुई कि छत्रियां के कील ही टूट गये ।

या फिर लायलपुर में उसने एक बहुत बड़ा डाका डाला था और बच कर वापस भी आ गया था । उसका वर्णन इस प्रकार होता था ।

जब जग्गे ने लायलपुर में डाका डाला तो हर तरफ़ बिजली के तारां द्वारा इस बात की सूचना दे दी गई ।

उसकी दीर्घ, अंधियरी और भयानक जीवन-रात्रि में एक तारा उदय हुआ जिसने उसकी आँखों को चकाचौंध कर दिया और वह तारा थी—गुरनाम ।

गुरनाम बेचारी नादान छोकरी उसे सुन्दरता और प्रेम का पता ही न था । उसे लोग कनखियों से देखते, वह हँस देती । वह भोली-भाली सरल स्वभाव की छोकरी यह जानती ही न थी कि वह बाज़, जिसको घायल करने के लिये पंजाब के शक्तिशाली नवयुवकों के धनुष टूट चुके थे, और जिस पर जो भी बाण फेंका जाता था वह उसे छू कर और गोठिल होकर ज़मीन पर गिर पड़ता था, वही बाज़ उसके वार का शिकार होकर पैरां के पास घायल पड़ा था और वह बाण प्रकृति ने उसकी पलकों में गुप्त रख छोड़ा था ।

रात्रि के अंधकार में जग्गा उनके यहाँ आता और प्रातः के प्रकाश से पूर्व ही विदा हो जाता । उसने स्वयं को एक धनी ज़मीदार प्रकट किया । बापू के अतिरिक्त घर के सभी लोग उसको धर्मसिंह के नाम से जानते थे । गुरनाम का आकर्षण उसे खींच लाता था । उसके हृदय में खटक-सी रहती थी कि वह इस देवी को अपनाने के पहिले स्वयं को कैसे उसके योग्य बनाये । उसने कभी उससे प्रेम प्रकट करने की कोशिश

नहीं की। वह नहीं जानता था कि वह इसका आरम्भ कैसे करे। वह सोचता था कि न जाने उसके प्रेम प्रकट करने पर गुरनाम क्या रूप धारण करे। वह उसके पास बैठी चहकती रहती थी और वह भौंचक्का सा बैठा सुना करता था। कभी-कभी उसको अपने से घृणा होने लगती थी। वह कुरूप तो पहिले ही से था, मगर उसका आचरण तो ऐसा था कि उसे देख शैतान भी लजा जाता। गुरनाम ही थी कि उसने कभी उससे घृणा नहीं प्रकट की। वह बड़े प्रेम के साथ उससे पेश आती थी। अगर वह उसे अपने निकट बैठने के लिए कहता तो वह उसके पास ही बैठ जाती, यद्यपि उसने आज तक उसको स्पर्श करने का साहस नहीं किया था। गुरनाम का देवियों जैसा सरल स्वभाव उसके मन में धड़का पैदा कर देता था। उसका दैवी सौन्दर्य उसका सिर नीचा कर देता था। उसके मन की व्याकुलता और पश्चात्ताप का भाव बहुत बढ़ गया। यहाँ तक कि लोगों ने बड़े आश्चर्य से सुना कि जग्गे ने डाका डालना छोड़ दिया।

× × ×

डेढ़ वर्ष का समय पलक झपकाते बीत गया।

जग्गा सुबह-शाम पाठ करता, ग़रीबों को खिलाता-पिलाता, दान करता, गुरुद्वारे में जाकर सेवा करता और हर एक के साथ नरमी और सिधाई से बातचीत करता।

उसने बापू की खुशामद की कि गुरनाम कौर का विवाह उसके साथ कर दिया जाय। उसने डाका डालना छोड़ दिया है। और जो कुछ उसने लूटा वह सब बड़ी तोंद वालों का था। ग़रीबों की कमाई का एक पैसा भी उसके पास न था। वह अपनी बहुत सी ज़मीन और रुपया उनको देने को तैयार था और बापू को हमेशा पूज्य समझ कर उनकी सेवा करेगा लेकिन गुरनाम को यह न मालूम होने पावे कि वह जग्गा

डाकू है। और न उसे अभी यह मालूम हो कि उसका विवाह किससे होने वाला है, क्योंकि उसको विश्वास था कि वह उसको चाहती थी और जब वह अपने प्रीतम को अपने पति के रूप में देखेगी तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहेगा। बापू ने सब कुछ स्वीकार कर लिया।

× × ×

जग्गा भीकन से चौदह कोस पर रहता था। उसके आने-जाने की किसी को कानों-कान खबर न होती थी। लोगों ने उस अजनबी को कभी-कभार उनके घर से निकलते हुए देखा था मगर किसी ने विशेष ध्यान न दिया। क्योंकि पहिले तो वह आता ही कभी-कभार था और दूसरे वह रातों-रात वापस भी चला जाता था। वह हमेशा अपनी अत्यधिक व्यस्तता का बहाना कर देता था। जग्गे को दुनिया जानती थी मगर उसको कोई पहिचानता नहीं था।

जग्गे को विवाह की स्वीकृति मिल ही चुकी थी। अब वह चाहता था कि गुरनाम के मुँह से भी अपने प्रेम की स्वीकृति ले ले, चाहे उसे यह न बतलाये कि उसका होने वाला पति वही है।

एक दिन सूर्यास्त हो चुकने के बाद वह भीकन में दाख़िल हुआ। घर पहुँचने के बाद पता चला कि गुरनाम पास वाले गाँव में जुलाहों को सूत देने गई है।

जग्गे ने आईने में अपनी सूरत देखी। उसने पगड़ी को ज़रा टेढ़ी किया, शमले को ज़रा और ऊँचा किया और फिर उसने सबकी नज़रें बचा कर चिराग़ में से ज़रा सा सरसों का तेल हथेली पर उलट लिया और उसे अपनी घनी और खुरदुरे बालों वाली गर्द-जमी दाढ़ी पर खूब अच्छी तरह मल लिया। फिर वह मूछों को बल देता हुआ घर से बाहर निकला और धीरे-धीरे टहलता हुआ पाँच-छः फ़र्लांग तक चला गया।

चारों ओर धुंध-सी छाई हुई थी। चन्द्रमा की हलकी धुँधली रोशनी में वह एक भूत की तरह दिखाई देता था।

दूर से एक सूरत दिखाई दी। उसने ग़ौर से टकटकी बाँध कर देखा। कोई स्त्री थी, और वह अवश्य ही गुरनाम थी।

जग्गा मुर्गे की तरह तनकर खड़ा हो गया।

गुरनाम निकट आते ही मुस्करा दी। लेकिन मुस्कान में कुछ गम्भीरता झलकती थी। सिर पर एक गठरी थी। बोली—"मेरी तो गरदन टूट गई।"

"इस गठरी में क्या भर लाई हो?" यह कहते हुए जग्गे ने एक हाथ से मन भर का बोझ इस प्रकार उठा लिया जैसे कोई दो वर्ष के बच्चे को पकड़ कर उठा दे।

"उपले—और क्या होता?" गुरनाम ने अपनी छोटी और पतली सी नाक सिकोड़ कर कहा—"आ रही थी, रास्ते में उपले चुनने लगी, यहाँ तक कि इसी में शाम हो गई।"

दोनों खेत की मेड़ पर बैठ कर बातें करने लगे।

आज जग्गे ने गुरनाम की ओर देखा तो उसके मन में अजीब-अजीब ख्याल पैदा होने लगे। वह अपनी भावी पत्नी की ओर बड़े ध्यान से देख रहा था। उसके हाथ की पकी हुई रोटी और साग की कल्पना उसे बेचैन किये डाल रही थी। कभी तो उसके मन में आता कि सारा भेद खोल दे और कभी सोचता कि अभी न बताये। अन्त में उससे रहा न गया, क्योंकि गुरनाम कुछ उदास-सी हो रही थी वह बोला—"गुरनाम!" यह कहते-कहते लार उसकी दाढ़ी पर टपक पड़ी। उसने उसे आस्तीन से पोंछा और फिर कहने लगा—"गुरनाम, तुमको एक सुख-सम्वाद सुनाना चाहता हूँ।"

गुरनाम ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह अपने पाँव के अँगूठे से ज़मीन कुरेदने में लगी थी और गहरी चिन्ता में थी। यद्यपि वह पहिली-सी चंचल और अल्हड़ न रही थी मगर चूंकि जग्गे से काफ़ी हिली मिली थी इसलिये उससे अधिक शरमाती भी नहीं थी।

जग्गे को कुछ उलझन-सी होने लगी। उसने उसका कन्धा हिलाकर पूछा—"क्यों गुरनाम, किस सोच में हो ?"

गुरनाम पहिले तो चौंकी, फिर उसने धीरे से कहा—"मैं बहुत परीशान हूँ, मैं बहुत दिन से चाहती थी कि तुमको सब हाल सुनाऊँ लेकिन......"

"लेकिन क्या ?"

"शर्म आती थी।" गुरनाम ने झेंप कर जवाब दिया।

जग्गा कुछ-कुछ ताड़ गया, मूँछों के नीचे मुस्कराया—"अरे मुझसे कैसी शर्म ?"

गुरनाम चुप रही।

जग्गा खिसक कर उसके क़रीब हो गया। उसके बार-बार आग्रह करने पर गुरनाम ने बताया—"वे मेरा विवाह करना चाहते हैं।"

"तो इसमें परीशानी की क्या बात है ? विवाह तो सब का होता है।"

गुरनाम की आँखों में आँसू भर आये ! भर्राये हुए स्वर में बोली—"वे किसी रुपये पैसे वाले से मेरा विवाह करना चाहते हैं, जिसे मैंने देखा भी नहीं, मगर मैं किसी और से..."

यह कह वह रो पड़ी।

जग्गे ने अपने ऊपर की ओर उठे हुए शमले को छूकर देखा कि वह नीचे तो नहीं झुक गया, फिर उसने छाती फुलाकर कहा—"नहीं गुरनाम, नहीं, जिससे तुम चाहोगी उसी से तुम्हारा विवाह होगा। मैं बापू को खुद समझाऊँगा...हाँ तो...मगर वह है कौन ?"

जग्गे की आँखें खुशी के मारे चमक रही थीं।

गुरनाम ने उसकी छाती पर सिर रख दिया और फूट-फूट कर रोने लगी। आज उसे उसके चौड़े कंधों और संदूक़ जैसी छाती को छूकर कुछ ढाढ़स हो रही थी।

जग्गा घबरा गया। उसने उसको चुमकारा और दिलासा दिया! और फिर उस व्यक्ति का नाम पूछा।

गुरनाम ने कुछ कहना चाहा, फिर रुक गई...और ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी। जग्गे ने ढाढ़स दिलाया तो वह बोली—"तुम ज़रूर मेरी सहायता करोगे, इन सब के हाथों से मैं बहुत तंग हूँ, तुम बहुत अच्छे हो, उसका नाम..."

जग्गे का मन बल्लियों उछलने लगा। "क्या नाम है?"

"उसका नाम है दिलीप...दिलीप सिंह।"

जग्गे को मानो साँप ने डँस लिया। उसका चेहरा एकाएक भयानक हो गया।

"दिलीप सिंह उसका नाम है!" गुरनाम ने दोहराया।

जग्गे की मूछें फड़कने लगीं। उसके माथे पर बल पड़ गये। शरीर के रोंगटे काँटों की तरह खड़े हो गये। आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं। गरदन की रगें फूल गईं—गुरनाम ने आश्चर्य से उसकी ओर देखा।

"घर जाओ।" उसने भारी स्वर में कहा।

यह कह कर वह उठ खड़ा हुआ।

"तुम भी चलो।" गुरनाम बोली।

"तुम तुरन्त घर वापस जाओ।" उसने गरज कर कहा।

गुरनाम चुपचाप आश्चर्य के साथ उठी और गठरी सिर पर रख कर घर की ओर चल दी। जग्गा उसी तरह खड़ा रहा था। उसका चेहरा क्षण प्रति क्षण भयानक होता जारहा था। बाज़ की चोंच जैसी नाक लाल हो गई। आँखें खून होकर रह गईं और चेहरे से बर्बरता टपकने लगी।—सहसा उसने खंजर निकाला और उसे मज़बूती से हाथ में पकड़ लिया। दाँत पीसते हुये धीरे से बोला—"दिलीप सिंह!"

मौत दिलीपसिंह के सिर पर मंडराने लगी।

× × ×

खूनी पुल इलाक़े भर में मशहूर था।

यह पुल एक छोटी सी नहर पर स्थित था। नहर के दोनों किनारों पर शीशम के बहुत घने पेड़ थे। वहाँ न सूर्य की धूप पहुँच सकती थी और न चाँद की चाँदनी। पुल बड़े-बड़े और भद्दे पत्थरों से बनाया गया था। उसके नीचे सिर्फ़ एक कोठी थी और पानी दो भागों में विभाजित होकर बहता था। रात्रि के समय ये बड़े-बड़े मुँह ऐसे दिखाई पड़ते थे जैसे दो मुँह वाला कोई दैत्य मनुष्यों को हड़प कर लेने के लिये मुँह खोले बैठा हो। या जैसे किसी मुरदे की दो बड़ी-बड़ी आँखें हों, जिनकी पुतलियाँ कौवे नोच-नोच कर खा गये हों।

पास ही एक क़ब्रिस्तान था और कुछ दूर पर मरघट। रात के समय कोई घर से निकलने का साहस न कर सकता था। क्योंकि उस पुल पर इतनी हत्याएँ हो चुकी थीं कि उस पुल का नाम ही 'खूनी पुल' रख दिया गया था। नौजवान लड़कियाँ और बच्चे तो दिन के समय भी अकेले उधर न आते थे। मशहूर था कि वहीं एक सिर कटा सैयद रहता था। कभी-कभी उसका सिर पुल के नीचे भयानक स्वर में चिल्लाया भी करता और वह स्वयं बिना सिर के बड़े इत्मीनान के साथ क़ब्रिस्तान में टहला करता था।

आधी रात बीत चुकी थी।

दिलीपसिंह शहर से लौट रहा था। छोटे से गधे पर दो बोरियों में सामान था। वह सुनार का काम भी करता था और पंसारी की दुकान भी। उसकी अपनी तैयार की हुई गुलकंद खूब बिकती थी।

वह नवयुवक था। सुन्दर सजीला। मसें अभी भीग रही थीं, गालों तथा ठुड्डी पर बिल्कुल छोटे-छोटे बाल जैसे केसर। आँखें मानो शर्बत से भरे कटोरे हों। सिर पर उस समय लुंगी बाँधे हुये था, उसका एक छोटा सा

शमला नीचे की ओर लटकता हुआ और दूसरा ऊपर की ओर उठा हुआ। अलग़ोज़े खूब बजाता था। जब राँझा, हीर के विवाह के बाद उसके यहाँ भीख माँगने के लिये जाता है, इस घटना को वारिस की हीर से बड़े करुण स्वर में गाया करता था। बल्कि इसमें तो दूर-दूर तक अपना जवाब न रखता था।

दिलीप शक्तिशाली और साहसी युवक था। मगर खूनी पुल का दृश्य और फिर उससे सम्बन्धित खूनी कथायें उस स्थान को और भी भयानक बना रही थीं। रात्रि के अंधकार में शीशम के घने वृक्षों के नीचे नहर के सिसक-सिसक कर बहने वाले पानी का शब्द सुनकर उसका मन घबराने सा लगा। उसने ऊँचे स्वर में 'छुई' (पंजाब का एक प्रसिद्ध गीत) गाना शुरू कर दिया। अंधकार और निस्तब्धता में अपनी आवाज़ सुनकर उसे कुछ संतोष हुआ।

उसका गधा पुल पर से पार हो चुका था। वह स्वयं पुल के बीच में था। मन में प्रसन्न था कि कोई दुर्घटना नहीं हुई। सहसा उसे पीछे से अपनी गर्दन में किसी तेज़ चीज़ की चुभन महसूस हुई और ऐसा लगा मानो कोई उसके कुरते को पकड़े पीछे की ओर खींच रहा हो। उसने घूम कर देखा। एक ऊँचा मनुष्य पुल की दीवार पर से उचका हुआ था। उसने अपनी छवी पीछे से उसकी क़मीज़ में अड़ा दी थी। उसकी आँखें अंगारे की तरह दहक रही थीं। "तुम कौन हो?" दिलीप ने साहस करके उच्च स्वर में पूछा।

"इधर आ!" भारी और हाकिमाना स्वर में उससे कहा गया।

दिलीप उसकी ओर बढ़ा। एकाएक उसने अजनबी को पहिचान लिया। बोला—"मुझे ऐसा जान पड़ता है कि मैंने तुमको कहीं देखा अवश्य है। क्या तुम वही व्यक्ति तो नहीं जिसने चन्द आदमियों से लड़ते समय मेरा साथ दिया था... हाँ, शायद वह ननकाना साहब का मेला

था। तभी की बात है...और तुमने दो आदमी जान से भी मार डाले थे।"

"बेशक मैं वही हूँ, लेकिन मैं नहीं जानता था कि तेरा नाम दिलीप सिंह है। मैं तुझे एक अजनबी और छोटी आयु का छोकरा समझ कर तेरा सहायक बना—और हत्याएँ तो मैंने बहुत की हैं। इस पुल पर ग्यारह आदमियों को जान से मार चुका हूँ...और आज मुझे बारहवीं हत्या करनी है।"

दिलीप को उसके उजड्डपन पर आश्चर्य हुआ। बोला—"मैं नहीं जानता कि तुम्हें मुझसे क्या बैर है, तुमने तो मेरे साथ उपकार किया है।"

"तू गुरनाम से प्रेम करता है जो कि केवल मेरी है। मुझको यह भी मालूम हुआ है कि तू ने शृंगारासिंह को इसी पुल पर बहुत घायल किया था—आज मेरा तेरा फैसला होगा।"

यह कह कर अजनबी ने छवी हाथ से रख दी और उसकी ओर बढ़ा–"और मैं चाहता हूँ कि तू एक मर्द की तरह मेरे सामने आ जा।"

दिलीप संकोच कर रहा था। उसने कहा—"मैं अपने उपकार करने वाले से लड़ना नहीं पसन्द करता।"

अजनबी ने गरज कर जवाब दिया—"तू कायर है। यह स्त्रियों की तरह गले में रेशमी रूमाल लपेट कर घूमना और बात है और किसी मर्द के साथ पंजा लड़ाना दूसरी बात है। यदि तू वास्तव में अपने बाप का बेटा है तो मेरे सामने आ!" यह कह कर उसने उसके मुँह पर थूका।

दिलीप को क्रोध आगया। वह सिंह कि भाँति बिफर गया। और वह डंडा जो गधे को हाँकने के लिये था, उसने अजनबी के मुँह पर दे मारा। लेकिन अजनबी ने वार रोकने की चेष्टा नहीं की। दिलीप ने दूसरा वार उसके कान पर किया। डंडा टूट गया। उसके माथे और कान से खून बहने लगा। दिलीप जोश में था, उसने पूरे जोर के साथ एक मुक्का

उसके मुँह पर मारा जिससे उसका जबड़ा अपनी जगह से हट गया और मुँह बिगड़ गया... मगर अजनबी शान्त खड़ा रहा।

उस समय उसके माथे से रक्त बह बह कर उसकी दाढ़ी को तर कर रहा था। एक कान का ऊपर वाला भाग टूट कर लटक रहा था और उसमें से रक्त की धार छूट रही थी। मुँह टेढ़ा हो जाने के कारण उसकी सूरत और भी भयानक हो रही थी—मगर वह आश्चर्य-जनक ढंग से शान्त था।

फिर उसने दिलीप की आँखों में आँखें डाल कर अपने गहरे और भारी स्वर में कहा—"इस तरह नहीं दिलीप! तुम अभी बिल्कुल बच्चे हो। लेकिन जग्गा कोई बच्चों का सा काम नहीं करना चाहता।"

यह कह कर उसने अपने मुँह पर एक घूँसा दिया और उसका जबड़ा ठीक असली जगह पर आ गया तब वह लौटा—दिलीप जग्गे का नाम सुन कर कुछ भयभीत सा हो गया।

अजनबी अपनी छवि पकड़ कर बोला—"तेरे पास छवि है?"

"नहीं।"

"तलवार है?"

"नहीं।"

"सफ़ाजंग?"

"नहीं।"

"मगर लाठी तो है, वह तेरे गधे की पीठ पर बोरी में ठुँसी हुई है।"

दिलीप आश्चर्य के मारे चुपचाप खड़ा था।

"जा!" अजनबी ने पुकार कर कहा—"लाठी ले आ—मैंने सुना है कि तू इलाके भर में सबसे अधिक तेज़ दौड़ने वाला जवान है। लेकिन मैं आशा करता हूँ कि तेरा स्वाभिमान तुझे एक कायर की मौत कभी न मरने देगा।

दिलीप वीर था मगर इस प्रकार के आदमी से आज तक उसको पाला न पड़ा था।

जग्गे ने छवि उतार कर अलग रख दी और केवल लाठी उठा ली। वे दोनों एक दूसरे को ललकारते हुये मैदान में कूद पड़े।

उनकी ललकार की आवाज़ सुन कर पक्षी घोंसलों में फड़फड़ाने लगे : गीदड़ों ने 'हुआ-हुआ' का शोर मचाना शुरू किया। चारों ओर गर्द ही गर्द दिखाई पड़ने लगी।

लाठी से लाठी बज रही थी। दिलीप हलका-फुलका, चुस्त, चालाक, नौजवान छोकरा, बिजली के सामान फुर्तीला, जोड़-जोड़ में पारा ! जग्गा भारी-भरकम, क़द्दावर, सिद्धहस्त देव के समान, अब भी जिस समय सरक लगाता था तो ऐसा जान पड़ता जैसे पानी की सतह पर टेकरी फिसलती चली जा रही हो। दिलीप ने ज़ोर लगा कर पहिला वार किया। जग्गा उसे खाली देकर चिल्लाया—"एक !"

दिलीप ने फिर वार किया। जग्गा उसे बचा कर गरजा—"दो !"

दिलीप ने तीसरा वार किया। जग्गा ने उसे भी रोका और कड़का—"तीन !"

यह कहकर वह आगे की ओर लपका। बोला—"ले सँभल बे छोकरे, अब जग्गा वार करता है।"

पसीने के कारण दिलीप के हाथ से लाठी छूट गई। वह तुरन्त छुरा लेकर झपटा। जग्गे ने एक लात उसके पेट में रसीद की और वह लड़खड़ाता हुआ पुल की दीवार से टकरा कर गिर पड़ा।

अब जग्गे के होंठों पर कुटिल मुस्कान पैदा हुई। उसने .एक पागल भेड़िये की तरह गले से एक भयानक शब्द निकला और फिर दोनों एड़ियाँ उठा, आगे की ओर उचक उसने भरपूर वार किया और दिलीप ने छुरा सँभाला और तड़पकर हवा में कूद गया। मगर सिद्धहस्त उस्ताद का वार अपना काम कर गया। शायद पहिली सूरत में यह वार उसके

सिर को तोड़ देता और लाठी उसके सीने तक पहुँच जाती मगर अब भी लाठी काफ़ी ज़ोर के साथ सिर पर पड़ी। सिर फट गया और वह तड़प कर बाहरसिंघे की तरह नहर के किनारे पर जा गिरा।...कुछ देर तड़पता रहा। और फिर ठंडा पड़ गया।

गर्म-गर्म रक्त बह-बह कर नहर के पानी में मिलने लगा। नहर के पानी का कल-कल नाद ऐसा जान पड़ता था मानो ख़ूनी पुल ठट्ठे लगा रहा हो।

क़ब्रिस्तान में पुरानी क़ब्रों के छेदों से हवा सिसकियाँ लेती हुई बह रही थी।

पीला चाँद बदली में से निकल आया मगर उसकी किरणें शीशम के घने पत्तों में उलझ कर रह गईं।

जग्गे ने बड़े इत्मीनान के साथ अपने रक्त भरे माथे को साफ़ किया। मुँह हाथ धोया। कान पर पगड़ी फाड़ कर पट्टी बाँधी। उसने दिलीप की छाती पर हाथ रख कर हृदय की गति सुनने की कोशिश की। फिर उसने छवी उठाई और दिलीप को पीठ पर लाद खेतों की ओर चल खड़ा हुआ।

× × ×

इस घटना के पचीस दिन बाद!

गाँव में संध्या होते ही शान्ति छा जाती है, विशेषकर जाड़ों में तो लोग तुरन्त अपने घरों में घुस बैठते हैं।

गुरनाम के घर सभी लोग अपने-अपने कामों से छुट्टी पा कर बड़े कमरे में बैठे थे। स्त्रियाँ चरखा कात रही थीं, बड़े-बूढ़े बातों में लगे थे और बच्चे शरारतों में।

इतने में जग्गा अन्दर दाखिल हुआ।

शायद डेढ़ वर्ष के बाद आज फिर उसके बलिष्ठ हाथ में छवी चमक रही थी। सब ने उसको देखकर प्रसन्नता प्रकट की।

गुरनाम आश्चर्य से उसकी ओर देखने लगी। माँ ने उसे बैठने के लिये कहा मगर उसने बतलाया कि उसकी साँडनी बाहर खड़ी है और उसे जल्द ही वापस जाना है।

चन्द मिनट के लिये वह रुका, फिर उसने संक्षेप में और निर्णायक की तरह कहा—"मैं आप लोगों से सिर्फ इतनी बात कहने के लिए आया हूँ कि आप गुरनाम का विवाह जिस व्यक्ति से करना चाहते हैं वह कभी भी नहीं हो सकता—बल्कि उसका विवाह उस व्यक्ति से होगा जिससे कि मैं चाहूँगा।"

सब लोग चकित थे। क्योंकि वे जानते थे कि गुरनाम का भावी पति स्वयं वही था। मगर चूँकि उन्हें यह भेद गुप्त रखने की विशेष ताकीद की गई थी, इसलिये वे चुप रहे।

"...और वह व्यक्ति यह है।" यह कहकर उसने दरवाजे की ओर देखा।—और दिलीप अन्दर दाखिल हुआ।

हर एक व्यक्ति आश्चर्य-चकित रह गया!

गुरनाम न जाने किस दुनिया में पहुँच गई। उसको लजा जाना चाहिये था मगर वह उठकर उसके पास आ गई।

जग्गे ने दिलीप के कान में कहा—"अगर गुरनाम को मुझसे प्रेम होता तो तुम आज जीवित न दिखाई पड़ते। दिलीप तुम मर्द हो, मैंने तुम्हारी अच्छी तरह परीक्षा ले ली, मैं चाहता तो तुम्हारी हत्या कर डालता, मगर मर्दों से मुझे प्रेम है। अब, जब कि तुम्हारी गुरनाम तुमको सौंप रहा हूँ, मैं आशा करता हूँ कि तुम मेरा भेद प्रकट न करोगे।"

दिलीप ने कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि से जग्गा को देखा।

जग्गा उच्च स्वर में बोला—"बापू, माँ, चाचा, मैं इनके विवाह के लिये आवश्यकता से भी कहीं अधिक रुपया दूँगा! और इनको बहुत सी ज़मीन दूँगा।"

बापू असल बात भाँप गया। लेकिन सब को अधिक आश्चर्य इस बात पर था कि दिलीप जीवित कैसे हो गया। क्योंकि मशहूर हो चुका था कि दिलीप को डाकुओं ने खूनी पुल पर मार डाला था।

दिलीप ने क़िस्सा गढ़ कर सुना दिया कि खूनी पुल पर डाकुओं ने उसे घेर लिया। इस लड़ाई में वह बहुत अधिक घायल हुआ और वह डाकुओं के हाथों मरने ही वाला था कि सरदार धर्मसिंह वहाँ पहुँच गये और वे इस तेज़ी से लड़े कि डाकुओं के छक्के छूट गये और उनको भागते ही बना। फिर वे उसे अपने घर ले गये और उसकी सेवा टहल करते रहे।

जग्गे की मूछों के नीचे उसके होंठों पर एक कटु मुस्कान पैदा हुई।

गुरनाम की आँखों में आँसू आ गये।

वह आत्म-विस्मृत सी हो आगे बढ़ी। उसने जग्गे का भद्दा हाथ अपने कँवल जैसे हाथों में ले लिया। पहिले उसने जग्गे के ऊँचे सीने और उसके असाधारण चौड़े कंधों को देखा और फिर जैसे इत्मीनान करके भरांये हुए स्वर में बोली—"तुम कितने अच्छे हो...तुम यहीं हमारे पास ही रहा करो।"

क़रीब था कि जग्गा चीखें मार-मार कर रो पड़े, मगर वह जल्दी से पगड़ी के शमले में मुँह छिपाकर बवण्डर की तरह दरवाजे में से बाहर निकल गया।

× × ×

विवाह हो गया!

कुछ दिनों के बाद रात के समय गुरनाम बापू के साथ घर से बाहर करेले की बेल के पास खड़ी थी। एकाएक दूर से गर्द उठी। कुछ साँडनी सवार दिखाई पड़े। उनकी सजी-सजाई साँड़नियाँ, मर्दाना और देव जैसी सूरतें, चमकती हुई छवियाँ—विचित्र दृश्य उपस्थित कर रहीं थीं। उनका सरदार तो असाधारण तौर पर चौड़ा चकिला व्यक्ति था।

गुरनाम उसे देखते ही चिल्ला उठी— "बापू, वे कौन लोग हैं ?—यह सबसे आगे वाला आदमी तो धर्मसिंह दिखाई पड़ता है।"

"नहीं बेटी, नहीं, वह धर्मसिंह नहीं है।" यह कह कर उसने अपनी पोती का सिर अपनी छाती से लगा लिया। और फिर बबूल के वृक्षों के झुण्ड में गायब होते हुए साँडनी सवारों की ओर स्वप्निल दृष्टि से देखते हुए बड़बड़ाया—

"आज जग्गा डाकू डाका डालने के लिये जा रहा है।"

चोर

सामने खेतों में ऊँची सी जगह पर जिसे वे 'टिब्बा' कहते थे, कोई गधा घूमता फिरता आ पहुँचा और लगा जोर-जोर से ढेंचू-ढेंचू करने। उसकी आवाज़ ने मानो घड़ी के अलार्म का काम किया और फुलेल सिंह की आँख खुल गई।

अभी लड़का ही था और फुलेल सिंह सवेरे उठने का आदी नहीं था। किन्तु आज दमदमे का मेला था, इसलिए वह जाग उठा। नहीं तो गधे का रेंकना क्या, यदि एक छोड़ दस गधे भी उसको रौंदकर निकल जायँ तो भी उसकी नींद में खलल न पड़े।

उठकर उसने पहले मुँदी-मुँदी आँखों से चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। दूध के कटोरे में डूबते हुए बताशों की भाँति अभी तारे आँखें झपका रहे थे। दूर-दूर तक फैले हुए खेतों और चुपचाप खड़े हुए वृक्षों पर फैलता हुआ मन्द-मन्द प्रकाश कितना मनोहर दिखाई पड़ता था। फुलेल सिंह के लिए यह एक नया अनुभव ही सही किन्तु उस समय तक काफ़ी संख्या में लोग खेतों को जा चुके थे।

फुलेल सिंह अपने भाइयों में सब से छोटा था। किन्तु वह डील-डौल में सबसे बढ़ा-चढ़ा था। बाईस वर्ष की उसकी आयु थी, माँ-बाप का लाड़ला था, काम कुछ नहीं करता था पर खाने में सब से आगे। बड़े भाई कभी-कभी बड़बड़ाते अवश्य थे किन्तु माता-पिता की उपस्थिति में उनका कुछ वश भी नहीं चलता था। अब जो फुलेल सिंह जागा तो उसने उठते ही बाजू फैलाकर ऐंड़ते हुए एक जम्हाई ली और फिर अपने दोनों हाथों को टाँगें सहलाता हुआ टखनों तक ले गया।

यों तो उसका प्रत्येक दिन बेफ़िक्री में ही बीतता था, किन्तु आज उसे बिलकुल कोई परेशानी न थी। चेहरे से न सिर्फ़ बेफ़िक्री टपकती थी, बल्कि एक अत्यधिक प्रसन्नता भी प्रकट हो रही थी। क्योंकि आज का दिन साल भर के बाद आता था और प्रत्येक व्यक्ति को खुल्लम खुल्ला खुशी मनाने का हक़ था, कोई रोक टोक नहीं थी।

अपनी छोटी-छोटी दाढ़ी पर, जो उस समय सूखी घास की भाँति लग रही थी, उसने हाथ फेरते हुए सोचना शुरू किया कि आखिर वह अनजाने तौर पर इतना प्रसन्न क्यों है ...थोड़ी देर बाद उसके होंठों पर मुसकराहट खेलने लगी और आँखें चमक उठीं...प्रीतो ननिहाल से वापस आ गई थी। उन दोनों की गाढ़ी छनती थी। प्रीतो मज़बूत हाथ-पाँव की एक निर्भीक-सी लड़की थी।

जब प्रीतो ननिहाल से वापस आयी थी तो उससे मिलकर खूब रोई थी। मेले से एक दिन पहले फुलेल सिंह ने उससे पूछा।

"कहो, मेले चलोगी ?"

"हाँ...तुम तो जाओगे ही।"

"हाँ...और रास्ते में मुलाक़ात भी रहेगी।"

"मेरे लिए क्या लाओगे ?"...जैसा कि प्रत्येक स्त्री पुरुष से यह अवश्य पूछती है कि मेरे लिए क्या लाओगे।

इस बात की कल्पना से ही फुलेल सिंह की बाछें खिल गईं। उसका जूड़ा ढीला होकर एक ओर को ढलक गया था। पगड़ी टखनों में उलझी हुई थी। वह मुसकराए जा रहा था और न जाने कब तक वह यों ही मुसकराता रहता किन्तु उसके लंगोटिया दोस्त अमर सिंह और जागीर सिंह इतने में आ पहुँचे जो कि ताड़ के वृक्ष के समान लम्बे थे।

आते ही उन्होंने उसे ललकार कर अपनी ओर आकृष्ट किया। आज मेले का दिन था। उसके दोस्तों ने आते ही चारपाई उलट दी। उसने ढीली-ढाली पगड़ी सिर पर लपेटी और तीनों गाँव की ओर चल दिये।

इधर सूर्योदय हुआ, उधर गाँव में चहल-पहल आरम्भ हो गई। आज नित्य की भाँति जीवन में शिथिलता नहीं थी बल्कि बच्चे-बच्चे को जैसे पर लग गए थे। बड़े-बूढ़ों को तो ख़ैर घर पर ही टिके रहना था किन्तु नवजवानों के उमंगभरे हृदय को चैन कहाँ! एक ओर कुमारियों ने काजल कंघी सँभाली तो दूसरी ओर नवयुवकों ने भी सिल्क के तहमद लहरा दिये। तिरछे-बाँके नौजवान अपनी-अपनी अड़ियल साँडनियों या तीव्रगामी घोड़ों पर सवार शमलों को उड़ाते गाँव के गिर्द चक्कर काटने लगे।

फुलेल सिंह ने आज विशेष रूप से शीशा सामने रखकर पगड़ी बाँधी। खद्दर की दूधिया कमीज पर मख़मल की वासकट और नीचे सिल्क की तहमद। पाँव में पेशावरी जूता और हाथ में पीतल के तारों से बंधी लम्बी और मजबूत लाठी। गाँव से बाहर आकर नवयुवक एक दूसरे से गले मिलने लगे और फिर फब्तियाँ कस-कसकर एक दूसरे का मज़ाक़

उड़ाने लगे। विभिन्न रुचियों के लोग अलग-अलग गिरोहों में बँटकर चल दिये। फुलेल सिंह अपनी घोड़ी की नंगी पीठ पर बैठा इधर-उधर ताक-झाँक कर रहा था। जागीर सिंह और अमर सिंह एक अत्यन्त अड़ियल साँडनी पर सवार थे, जो क्षण भर को भी चैन से खड़ी न होती थी और बेतरह बलबलाए जा रही थी।

फुलेल सिंह प्रीतो की प्रतीक्षा कर रहा था। रवाना होने से पहले वह जानना चाहता था कि प्रीतो किन स्त्रियों के गिरोह में शामिल है ताकि उसे रास्ते में तलाश करने में कठिनाई न हो...वह बार-बार अपनी गेहुएँ रंग की छाती पर लटकते हुए सुनहरे कण्ठे को उंगलियों से छूता और गर्दन उठा-उठाकर गाँव से बाहर निकलने वाली सबसे बड़ी गली की ओर देखता।

अन्त में जैसे खरबूजों से भरा हुआ छकड़ा बाहर निकला। उसमें गाँव की कुमारी और विवाहिता युवतियाँ सवार थीं। बैल ढाल की ओर बड़ी तेज़ी से सींग हिलाते हुए भागे। और उनकी घंटियों की टनटनाहट से वायु मण्डल गूँज उठा। प्रीतो छकड़े के सबसे पिछले भाग में बैठी थी। उसे देखकर इधर फुलेलसिंह की मूँछें फड़कीं और उधर वह अपने प्रेमी की सज-धज देखते ही खिल गई। उसने अपना हाथ विशेष ढंग से ऊपर उठाकर फुलेलसिंह को संकेत किया और फिर बड़ी सफ़ाई से उसी हाथ से दुपट्टा खींचकर उसने छोटा सा घूँघट निकाल लिया।

अब क्या था, फुलेल सिंह ने अपनी चुलबुली घोड़ी को एड़ लगाई और वह गर्द उड़ाती हुई ऐसी तेज़ी से चल निकली जैसे गुलेल में से गुल्ला निकले।

जब वह छकड़े के पास से गुज़रा तो अपने विशेष स्वर में खाँसा... छकड़े में उसकी अपनी बहन भी बैठी थी। उसने प्रीतो को ताकीद कर दी थी कि वे रास्ते में जहाँ कहीं भी उतरें और मेले में जिस जगह

भी ठहरें या घूमें, साथ-साथ रहें जिसमें कि आपस में बात-चीत करने में कोई कठिनाई न हो।

इस तरह सारा रास्ता हँसते-खेलते कट गया और जब वे मेले में पहुँचे तो घने वृक्ष की छाँव-तले फुलेल सिंह ने एक बड़ी सी दरी बिछा दी। उसकी बहन, प्रीतो और अड़ोस-पड़ोस की स्त्रियाँ वहीं पर बैठ गईं। घोड़ी और साँडनी को भी वहीं पर छोड़ दिया गया।

मेले में इर्द-गिर्द के सैकड़ों लोग आ इकट्ठा हुये थे। यद्यपि फुलेल सिंह का जी नहीं चाहता था कि पेड़ के नीचे से उठकर इधर-उधर जाय लेकिन दोस्त कहाँ छोड़ने वाले थे।

दोपहर से पहले-पहले स्त्रियाँ भी मेले में शामिल रहती थीं लेकिन इसके बाद यह मेला केवल पुरुषों का रह जाता था क्योंकि पुरुषों की भीड़ और नशे में बदमस्त नौजवानों के शोर गुल में स्त्रियों का वहाँ रहना उचित नहीं समझा जाता था। स्त्रियों के चले जाने के बाद पुरुष खूब खुल कर खेलते अतएव दोपहर के समय जब स्त्रियाँ वापस आने लगीं तो उन्होंने घोड़ी और साँडनी को भी वापस भेज दिया, जिसमें कि रात को चारे का झंझट न रहे। फुलेल सिंह को प्रीतो से खुलकर बातें करने का मौक़ा न मिला और अब इस विचार से वह बहुत उदास हो गया। उसने मौक़ा पाकर छकड़े के पीछे प्रीतो को जाकर पकड़ लिया और उससे वादा लिया कि वह दूसरे दिन शाम को साग तोड़ने के बहाने उसके कुएँ पर ज़रूर आयेगी। प्रीतो ने वादा कर लिया और इस डर से कि कोई देख न ले, पीछे सरक गई और उसके कण्ठे की ओर संकेत करती हुई बोली—"आप तो कण्ठे पहनते फिरते हो और हमारे लिये पीतल की ज़ंजीर भी नहीं।"

लोग बाग गा-गा कर लगे झूमने...एक बहुत बड़े मजमे के लोग घेरा बनाकर खड़े हो गये। महकती कलियों में लिपटे हुए अलगोजे बजने लगे और एक बाँके ने रान पर हाथ रखकर तान उठाई।

बल्ले बल्ले बइ रोटी लैके देवर दी चली

सर ते डोरिया गंडे दी छल वर्गा

बई रोटी लै के !

(एक रसीली औरत अपने देवर के लिये खेत पर रोटी ले जा रही है और सिर पर डुपट्टा इतना बारीक है जैसे प्याज़ का छिलका ।)

पहले बोल के बाद एकदम 'बल्ले-बल्ले' का शोर उठा और जागीर सिंह बल खाकर फुलेल सिंह की बग़ल से निकला और लाठी को दोनों सिरों पर पकड़कर हवा में ऊँचा किया और पाँव से धूल उड़ाकर लगा बेढंगे तरीके से नाचने । उसकी लम्बी लहराती हुई दाढ़ी ने एक समाँ बाँध दिया । वह बड़ी फुर्ती से नाच रहा था और अपनी लम्बी टाँगों के कारण दो-चार सपाटों में इधर से उधर जा निकलता था ।

भाँति-भाँति के स्वर उठ रहे थे । अपने देवर के लिए रोटी ले जाने वाली अलबेली नारी की कहानी ने जो तूल खींचा तो फिर बात कहीं की कहीं जा पहुँची । जब कहानी ने आखिरी मंजिल में प्रवेश किया तो लोगों के धैर्य का बाँध टूट गया । हाय-हाय, वाह-वाह के नारे ऊँचे होने लगे । इस गड़बड़-सड़बड़ में कुछेक लोगों की पगड़ियाँ उछाल दी गईं । इस बात पर लह बरस गये । पाँच-सात के टखने उतर गये किन्तु अपने-अपने घावों पर धज्जियाँ लपेट कर वे फिर खेल के मैदान में आ डटे ।

सौंची का खेल आरंभ हुआ । जागीर सिंह और अमर सिंह, दोनों तहमद कस कर मैदान में जा खड़े हुए । यद्यपि वे दोनों फुलेल सिंह से दस-दस, बारह-बारह वर्ष बड़े थे किन्तु खेल-कूद में किसी से पीछे रहने वाले न थे । भाग-दौड़ में इतने दमदार थे कि मीलों एक चाल से दौड़ जाते थे और थकते नहीं थे । सूर्य के तीव्र प्रकाश में लम्बे-तगड़े युवकों को एक दूसरे के सामने खड़े देख एक बार तो फुलेल सिंह का मन भी

लहराया किन्तु उसका चित्त वास्तव में उदास था, इसलिए लोगों के बहुत आग्रह करने पर भी उसने खेल में हिस्सा नहीं लिया।

अन्धकार छाने लगा तो खेल ख़तम हुआ। जागीर सिंह और अमर सिंह भी पसीना पोंछते हुये उसके पास चले आये। फिर वे लोग बातें करते हुए मेहेर (तन्दूर वाले) की दूकान पर पहुँचे। भोजन के उपरान्त जागीर सिंह ने कहा—"यार दिन तो अच्छा बीत गया लेकिन पैसा एक भी नहीं बचा। घर वालों के लिए हमें कुछ न कुछ तो ले जाना चाहिए था।"

इधर-उधर की बातों के बाद जागीर सिंह ने सुझाव रखा कि क्यों न आज किसी के यहाँ हाथ साफ़ किया जाय !

फुलेल सिंह यह सुन उछल पड़ा। वाह ! कैसा सुन्दर प्रस्ताव था। उसे आश्चर्य हो रहा था कि आख़िर उसे यह बात क्यों न सूझी। इसमें उसे अपने छुटकारे का रास्ता भी दीख पड़ा। हो सकता है इस तरह प्रीतो के ताने का कोई उपयुक्त जवाब मिल सके।

अन्त में यह सलाह ठहरी कि कुछ रात भीग जाय तो वे लोग सुस्ताने के बाद किसी तरफ़ का रुख़ करें और रातों-रात कुछ न कुछ ले उड़ें। इस तरह घर वाले भी यह नहीं कहेंगे कि उनके लिए मेले से कोई सौगात नहीं लाए। यह निश्चय कर वे लोग भीड़-भाड़ से हटकर एक खेत की मेड़ पर सिर रखकर लेट गए।

कुछ देर ऊँघने और आराम करने के बाद वे उठ बैठे। हर एक ने अपनी अपनी कमर से बँधा हुआ पटके-सा झाड़न उतारा और उसमें जूते बाँध कर दोबारा कपड़े से लपेट लिया और फिर उठकर एक ओर को दुलकी चाल से भाग खड़े हुए।

चाँदनी रात थी। दूर-दूर तक कोई आदमी नहीं दीखता था। चारों ओर शान्ति और नीरवता का साम्राज्य था। वे आपस में बातें करते हुए मज़े-मजे दौड़े चले जा रहे थे।

जब ये लोग लगभग छः कोस का फ़ासला तय कर चुके तो एक गाँव के निकट कुछ दूर पर रुक गये। निश्चय हुआ कि पहले इस बात की कोशिश की जाय कि गाँव के सिरे पर ही किसी मकान में काम बन जाय लेकिन यदि माल मिलने की कोई आशा न हो तब फिर गाँवके अन्दर घुसें। उन्होंने पगड़ियों के शमलों को घुमाकर सिर के दूसरी ओर इस ढंग से ठूंस लिया कि देखने वालों को केवल उनकी आँखें नज़र आएँ, बाक़ी चेहरा न दिखे और फिर सहज-सहज क़दम उठते हुए आगे बढ़े। यद्यपि वे चौकन्ने थे और धीरे-धीरे चल रहे थे किन्तु अनुभवी चोरों की भाँति उन्होंने इस प्रकार की बातों से अपने को बचाया जिससे किसी देखने वाले को कुछ सन्देह हो। परन्तु भला आधी रात को वहाँ कौन बैठा था।

आज चोरी करने का उपयुक्त अवसर भी नहीं था। काफ़ी गरमियों का मौसम, लोग आँगन में या छतों पर सो रहे थे और फिर चाँदनी पूरी जवानी पर थी—लेकिन आज उन्हें लाचारीवश चोरी करनी पड़ रही थी। और इसीलिए वे गाँव के अन्दर जहाँ साहूकारों के मकान थे, जाने से कतरा रहे थे। सहसा उनके पास ही एक पेड़ की छाया में से एक कुत्ता निकला और उन्हें अपरिचित जानकर गुर्राने लगा। दूसरे ही क्षण फुलेल सिंह ने लाठी का एक ही भरपूर हाथ दिया और कुत्ता ठण्डा हो गया। उसकी दबी-सी चीख भी उसके गले से न निकल सकी।

एक छाया से दूसरी छाया तक वे चारों ओर देखते हुए बढ़ रहे थे। सबसे पहले उन्होंने एक छोटे से मकान को ताका जो गाँव से बिल्कुल अलग बसा हुआ था और फिर खास बात यह थी कि छत पर पास ही खड़े नीम के पेड़ की छाया भी पड़ रही थी। मकान के पास एक कूड़े-करकट का ढेर था, जिस पर चढ़कर वे लोग बड़ी आसानी से छत पर पहुँच सकते थे।

वे लपक कर उस मकान की दीवार की छाया में जा खड़े हुए। कच्ची ईंटों का बना हुआ साधारण सा मकान था। पिछवाड़े से सेंध लगाना

भी कुछ मुश्किल नहीं था। लेकिन उनके पास कुछ हथियार भी नहीं था और फिर छत पर चूँकि कोई नहीं था और न चाँद की रोशनी ही वहाँ पहुँचती थी, इसलिए उचित यही समझा गया कि पहले छत से आँगन की ओर झाँककर मौका देख लिया जाय और फिर जो उचित समझा जाय वैसी कार्यवाही हो।

दीवार की ओर मुँह करके अमर सिंह उँकड़ूँ बैठ गया और फुलेल सिंह ने उसके दोनों कन्धों पर पाँव रख दिये। पहले अमर सिंह उठकर सीधा खड़ा हुआ और फिर फुलेल सिंह उठकर उसके कन्धों पर खड़ा हो गया। उसने धीरे से उन्हें बतलाया कि वह आसानी से छत पर पहुँच जायगा।

फुलेल सिंह ने छत पर निगाह दौड़ाकर पहले लाठी आगे सरकाई और फिर स्वयं उचककर ऊपर जा पहुँचा और घुटनों तथा हाथों के बल सरकता हुआ आँगन की ओर बढ़ा। उसके दोनों साथी इन्तजार में खड़े थे कि सहसा वह लौट कर आया और उन्हें जल्दी से ऊपर आने को कहा। एक दूसरे को उठा-खींच कर शीघ्र ही वे सब ऊपर पहुँच गये। एक दूसरे के बराबर रेंगते हुए आगे बढ़े और पहली मुँडेर के निकट पहुँचकर लेट गये। गर्दनें आगे बढ़ाईं तो वह दृश्य दीख पड़ा कि जागीर सिंह और अमर सिंह के मुँह से आश्चर्य और प्रसन्नता की हल्की सी चीखें निकल गईं।

आँगन के बीचो बीच एक जवान और सुन्दर स्त्री चारपाई पर सोई पड़ी थी और उसके शरीर पर इतने गहने थे जितने कि वे कल्पना कर सकते थे। सिर पर चौंक, कनपटियों पर जुगनियाँ, कानों में बालियाँ, गले में हार और कलाइयों पर यह मोटे-मोटे गोखरू और लाल चूड़ा। लगता था कि उसके विवाह को अभी बहुत दिन नहीं बीते।

तीनों चोर पेड़ की छाया में मूर्तिवान् बैठे थे। कुछ क्षणों के लिये तो उन्हें अपने आप की सुध न रही। और फिर इस दृश्य से ध्यान हटा

तो स्त्री के निकट वाली दूसरी चारपाई पर निगाह पड़ी। उस पर एक युवक लेटा था। वह भी हजारों में एक था। सूरत-शकल उतनी अच्छी न थी किन्तु उसका शरीर ऐसा गठा हुआ और सुन्दर था कि अच्छे से अच्छे जवान को देखकर ईर्ष्या हो आती। वह युवक केवल एक जाँघिया पहने सो रहा था। उसकी छाती, उसकी भुजाएँ और रानें, और फिर उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व ऐसा था कि देखकर सब पर रोब छा जाता था। एक बार तो वे तीनों सारी चौकड़ी भूल गये।

वे चुपचाप पेट के बल लेटे हुए स्थिति का निरीक्षण करते रहे। काफ़ी बड़ा आँगन था। पहले कोने में दो बहुत अच्छी नसल की भूरे रंग की भैंसें बँधी थीं। उनमें शायद एक दूध देने वाली और दूसरी गाभिन थी सामने की दीवार पर खूँटी से दूध की बिलोनी लटक रही थी। इस तरफ़ के कोने में रसोई बनी हुई थी, जिसमें कुछ बर्तन चमक रहे थे।

मुँडेर से तनिक परे खिसक कर वे आपस में खुसुर-पुसुर करने लगे। वास्तव में खतरे की बात थी! एक ओर सोना था और दूसरी ओर लम्बा-तड़ंगा बलशाली युवक। स्पष्ट था कि यदि ऐसे में वह जग उठा तो उनमें से एकाध को तो रख ही लेगा। फुलेल सिंह ने कहा कि इतना भीमकाय मनुष्य उनके बराबर लम्बी दौड़ नहीं लगा सकता। और यदि आँगन के बजाय बाहर खुले खेतों में मुकाबिला हो जाय तो वे तीनों उससे शायद ही मात खायँ।

तीनों जवान, जिनकी ताक़त, हथकण्डों और दिलेरी की इलाके भर में धूम थी, डर रहे थे कि कहीं अपने घर से अट्ठारह-बीस कोस परे मुफ़्त में मारे न जायँ। आखीर फुलेल सिंह के गर्म खून ने जोश मारा। उसने कहा—"मैं आँगन में उतरता हूँ और स्त्री के गहने उतारता हूँ। यदि पुरुष की आँख खुल गई, या स्त्री के शोर मचाने पर वह जग उठा

तो स्पष्ट है कि वह पहले उसकी ओर ध्यान देगा। उस समय वे दोनों तुरन्त छत से कूद कर पीछे से उस पर हमला कर दें।"

अमर सिंह ने प्रश्न किया कि क्यों न हम दोनों नीचे उतर कर उसके सिरहाने पर खड़े रहें।

फुलेल सिंह ने कहा—"यह ठीक नहीं है। क्योंकि इस स्थिति में यदि हमें भागना पड़े और हम तीनों आँगन में हुए तो भागना कठिन हो जायगा।"

यह कहकर वह चौके के पास उठी हुई दीवार पर पेट रखकर नीचे उतर गया और दबे पाँवों स्त्री के निकट जा पहुँचा।

जब वह उसकी चारपाई के साथ लग कर बैठ गया तो उसने निकट से स्त्री के शरीर पर निगाह दौड़ाई। उसकी त्वचा की कोमलता, स्वास्थ्य, रंग और महक से उसका हृदय धड़कने लगा। उसने अपने मन को इस प्रकार के विचारों से आजाद किया और अपने कार्य में व्यस्त हो गया।

सोई हुई स्त्री के शरीर से आभूषण उतारने में उसका हाथ बहुत साफ़ हो चुका था। हर गहना उतारने के बाद उसकी मूँछों के नीचे उसकी बाँछें खिल जाती थीं। वह एक नज़र अपने साथियों की ओर देख लेता था जो रात के सन्नाटे में छत पर औंधे लेटे थे। उनकी ठोड़ियाँ तीन-चार अंगुल ऊँची मुँडेर पर रखी थीं। चेहरे पगड़ियों के शमलों में छिपे हुए थे और भेड़ियों के सामान दहकती हुई लाल आँखें दीख रही थीं। अलबत्ता जागीर सिंह की लम्बी दाढ़ी मुँडेर से नीचे लटकती हुई हवा के झोकों से हौले-हौले हिल रही थी। फुलेल सिंह ने यह दृश्य देखा तो उसे हँसी आने लगी।

फुलेल सिंह ने कमर से लिपटी हुई झाड़न को जमीन पर बिछा दिया था और गहने उतार-उतार कर उसमें रखे जाता था।

उसने स्त्री के माथे और सिर के सब गहने बड़ी सफ़ाई से उतार लिये। दोनों कलाइयों के गोखरू बड़ी तरकीब से उतारे, यानी गोखरुओं

के दोनों सिरों में मजबूत डोरी का फन्दा डालकर वह दोनों ओर खींचता और जब उनके मुँह खुल जाते तब वह उन्हें उतार लेता। गले का हार भी उतार लिया और फिर कानों की बालियाँ उतारने में उसने अत्यधिक सफ़ाई से काम लिया। लगभग सब भारी गहने उतर चुके थे, केवल दूसरे कान की बालियाँ रह गई थीं। मुश्किल यह थी कि स्त्री का चेहरा दूसरी ओर को झुका हुआ था। और कान नीचे दब गया था। फुलेल सिंह सोच में पड़ गया कि वह स्त्री का सिर कैसे घुमाए। उसने साथियों की ओर देखा तो वे उसे इशारों ही इशारों में भाग आने को कह रहे थे। लेकिन वह अपनी सफलता पर इतना प्रसन्न था कि उन चन्द बालियों को भी हाथ से न छोड़ना चाहता था। अतएव उसने चारपाई की रस्सी में से एक बारीक-सा रेशा निकाला और उसे एक सिरे से पकड़कर उसका दूसरा सिरा स्त्री के कान में घुमाया। पहली बार तो कुछ असर न हुआ, जब उसने दूसरी बार घुमाया तब स्त्री ने करवट बदलकर मुँह उसकी ओर कर दिया।। वह एकदम झुक कर चारपाई के नीचे हो गया फिर उसने धीरे धीरे सिर ऊपर उठाया। अब स्त्री के कपोल और उसके होठों में एक बालिश्त का अन्तर था। लेकिन उसने कोई ऐसी हरकत करने से अपने आप को रोके रखा। शमले से चेहरे को एक बार फिर भली-भाँति ढाँप लिया और हाथ बढ़ाकर अपने काम में लग गया। दो बालियाँ उतार चुका तो तीसरी, जो आखिरी बाली थी, कुछ फँस गई। बड़ी चेष्टा की किन्तु छेद इतना तंग था कि बाली उतरने ही में न आती थी।

सहसा स्त्री का हाथ हिला, पल भर में बाली उतरी और उसकी ओर बढ़ी।

फुलेल सिंह भौंचका सा रह गया। स्त्री ने अपनी मदभरी आँखें खोली और मुस्कराने लगी। फुलेल सिंह स्त्री के इस व्यवहार पर इतना चकित हुआ कि मूर्तिवत् बैठा रहा। उसे कुछ नहीं सूझ रहा था।

स्त्री ने इतमीनान से हाथ आगे बढ़ाते हुए धीरे-से पुचकार कर

कहा—"अच्छा, तुम्हारे लिए उचित तो यही है कि जिस तरह और जिन हाथों से तुमने सब गहने उतारे हैं उसी तरह और उन्हीं हाथों से इन्हें पहना दो नहीं तो यदि तुम भाग गये तो भी मेरा पति तुम तीनों को जा पकड़ेगा और मार-मार कर तुम्हारा भुरकुस निकाल देगा।"

फुलेल सिंह चुप रहा।

स्त्री मधुर स्वर में धीरे से हँसी—"हाँ, सोच लो..." यह कह कर उसने इतमीनान से आँखें मूँद ली।

फुलेल सिंह का उजड्डुपन जाग उठा। बोला—"यह मैं मानता हूँ कि तुम्हारा आदमी बड़ा मजबूत है, लेकिन हम लोगों को दौड़ कर पकड़ना या हमसे लड़ना उसकी शक्ति के बाहर है।"

यह सुन कर स्त्री ने गहनों की झाड़न उठाई और पोटली बाँधकर उसके हाथ में थमा दी; फिर बोली—"लो, जब तुम सामने वाले उस छोटे से बबूल के पेड़ के पास पहुँच जाओगे तो मैं उसे जगा दूँगी।"

फुलेल सिंह को ताव भी आया और उसने बड़े अपमान का भी अनुभव किया किन्तु वह उठ खड़ा हुआ और ढीठों की भाँति पोटली हाथों में लिए छत पर चढ़ गया। उसने संक्षेप में साथियों को सारी बात कह सुनाई और फिर वे तीनों वहाँ से चल दिये। उनका विचार था कि वह व्यक्ति उन्हें दौड़कर नहीं पकड़ सकेगा और खुले मैदान में पहुँचकर वे यों भी उससे निपट लेंगे।

जब वे बबूल के उस पेड़ के पास पहुँचे तो उन्होंने घूमकर देखा। उन्हें मकान की छत पर वही व्यक्ति दीखा। उसके हाथ में लाठी थी और अब वह पहले की अपेक्षा कहीं अधिक विशालकाय दीख रहा था। उनके देखते-देखते उसने छत से छलाँग लगाई। फुलेल सिंह तो बस वहीं पाँव जमा कर खड़ा हो गया किन्तु उसके साथियों ने आग्रह किया कि ऐसी मूर्खता मत करो। गाँव के निकट लड़ना उचित नहीं। यदि गाँव वालों को मालूम हो गया तो वे सब के सब हम पर पिल पड़ेंगे। मुफ्त

की मुसीबत का सामना होगा। । यदि लड़ना ही है तो गाँव से तनिक परे हट कर लड़ेंगे।

फुलेल सिंह को उनकी राय ठीक जँची और तीनों आगे-पीछे एक ही पंक्ति से दौड़ने लगे। वे तीव्र गति से लपके हुए जा रहे थे, किन्तु उनका पीछा करने वाला बहुत तेज़ निकला इस कारण उन्हें और भी तेज दौड़ना पड़ा। लेकिन उन्हें अनुभव हुआ कि इस प्रकार भी काम नहीं चलेगा क्योंकि वह व्यक्ति रेल के इन्जन की-सी तेजी के साथ आगे बढ़ा आ रहा था और अब उनके बीच दो बड़े खेतों का फ़ासला रह गया था। फिर वे पूरी शक्ति से दौड़ पड़े। कुछ मिनट तक इसी प्रकार दौड़ते चले गये। वे तीनों लम्बी और तेज़ दौड़ के लिए विशेष रूप से मशहूर थे किन्तु इस समय वे हैरान रह गये। उनकी समझ में यह बात नहीं आ रही थी कि इतना भारी भरकम आदमी इतना तेज़ कैसे दौड़ रहा है। उनका यह विचार भी ग़लत निकला कि वह थोड़ी दूर तक दौड़कर हाँप जायगा। वास्तव में वे इतनी तेजी के साथ इतनी लम्बी दौड़ लगाने के कारण स्वयं कुछ हाँप रहे थे। इधर उनका शत्रु कुछ और भी निकट आ गया था।

इसी प्रकार दौड़ते-दौड़ते उन्होंने आपस में सलाह की कि सामने झड़बेरियों के जो दो झुण्ड दिख रहे हैं उनके बीच में होकर निकला जाय। झुण्डों के बीच तंग रास्ते से निकलते समय अगले दोनों साथी उचक कर दाईं ओर की झाड़ियों की ओट में खड़े हो जायँ और फुलेल सिंह सीधा दौड़ता हुआ चला जाय। यह सब काम इस सफ़ाई से किया जाय कि उनके शत्रु को बस यही मालूम हो कि वे तीनों सीधी पंक्ति में एक दूसरे के पीछे भागे चले जा रहे हैं......और जब वह रास्ते से होकर निकले तो उस पर पीछे से हमला किया जाय और उस समय अगला साथी भी वापस लौट आए। इस प्रकार वे तीनों मिलकर उसे ठिकाने लगा दें।

अतएव यही किया गया। जागीर सिंह और अमर सिंह झाड़ियों की ओट में हो गये। फुलेल सिंह सब के पीछे था, इस लिये वह सीधा भागता चला गया। और जब उनका शत्रु झाड़ियों में से होकर निकला तो जागीर सिंह ने लाठी तौल कर ऐसा भरपूर हाथ दिया कि यदि उसके सिर पर बालों का बहुत बड़ा जूड़ा न होता तो लाठी उसके जबड़ों तक उतर जाती। फुलेल सिंह तुरन्त वापस पलटा, उसके पहुँचते-पहुँचते तक उन्होंने उसकी पीठ और टाँगों पर दो-चार लाठियाँ और बरसा दीं। किन्तु उनका शत्रु पहले भरपूर वार से ही गिर पड़ा और बेहोश हो गया।

फुलेल सिंह ने उनका हाथ रोक दिया "अब मारो मत बेचारे को... आओ अब हम लोग चल दें।"

वहाँ से दो कोस परे वे लोग एक रहट के पास खेत में छिपकर लेट रहे। सोचा कि कुछ देर आराम करेंगे और दिन चढ़े मेले में वापस चले जायँगे।

कुछ देर तक वे सोये रहे। सुबह हुई तो उन्होंने उठकर रहट में मुँह हाथ धोया। फुलेल सिंह ने साथियों को सम्बोधित कर कहा—"यार जो कुछ भी कहो, रात वाला जवान खूब था।...अहा, हा...क्या ख्याल है तुम्हारा, वह मर तो न गया होगा...भाई मुझे तो उसकी कुछ चिन्ता सी लगी हुई है..."

फुलेल सिंह ने मानो सब के दिल की बात कह दी। वे बोले—"चलो हम उसका पता लगाएँ। हमें गाँव में कोई पहचानता तो है नहीं।"

वे वापस चल दिये। पहले उस जगह पहुँचे जहाँ उन्होंने उस पर वार किया था। वहाँ अब कोई नहीं था। शायद गाँव वालों में से किसी ने देख पाया हो और उसे उठाकर ले गये हों। लेकिन धरती रक्त से लाल हो गई थी। लगता था कि खून बहुत अधिक बह गया है। इतना खून बह जाने के बाद वह शायद ही जीवित बचा हो।

वे तीनों उदास से हो गये। वास्तव में वे ऐसे असाधारण युवक को जान से नहीं मारना चाहते थे। अब उन्होंने सलाह की वे तीनों अलग-अलग गाँव में प्रवेश करें और उसकी हालत का पता लगायें।

वे बिखर कर अलग-अलग गाँव की ओर चल दिये छोटे-से गाँव में यह समाचार आग की तरह फैल चुका था। उन्हें मालूम हो गया कि उसका नाम दरबारा सिंह है और वह इस समय गाँव के दारे में पड़ा है।

दारे में पहुँचे तो वहाँ कई और लोग भी जमा थे। उन्हें यह मालूम करके खुशी हुई कि वह मरा नहीं। भीड़ में घुसकर देखा तो दरबार सिंह एक बड़ी चारपाई पर कोहनी के सहारे बैठा था। सिर पर पट्टी बँधी थी और वह हँस-हँस कर लोगों से बात कर रहा था।

दिन के प्रकाश में उसका असाधारण रूप से पला हुआ शरीर देखते ही बनता था। ओफ़! कितना तगड़ा और तन्दुरुस्त था वह जवान!

वह इलाके भर में मशहूर जवान था। और अकेला कई-कई जवानों को हरा देता था। आज तक उसके हाथ से कोई व्यक्ति बचकर नहीं जा सका था।

फुलेल सिंह ने सीधे दरबार सिंह से बात करके पूछा कि आखिर मामला क्या है। दरबार सिंह ने उसे परदेशी राहगीर समझकर सारी कहानी कह सुनाई और फिर बड़े मजे में हँसकर बोला—"उनकी संख्या तीन थी। यह मानना पड़ेगा कि वे कोई साधारण चोर नहीं थे क्योंकि आज तक दौड़ में भी मैंने किसी आदमी को बहुत अधिक दूर तक नहीं जाने दिया। रात वाले जवान दौड़ने में निश्चय ही मुझसे कम न थे। मुझे मिलें तो उसके हाथ चूम लूँ। जब मैं उसके पीछे दौड़ रहा था तब मन ही मन उनकी प्रशंसा कर रहा था किन्तु मुझे इस बात का बड़ा दुख है कि आमने-सामने मुकाबिला न हो सका।..."

वे तीनों चुपचाप उसे देखते रहे। उनके मन में भी उसके प्रति

स्नेह उत्पन्न हो गया था। फिर उन्होंने आपस में कनखियों से इशारे किये और वहाँ से चल दिये।

वे तीनों चुपचाप चले जा रहे थे। जब वे रात वाले मकान के पास से गुजरने लगे तो सहसा फुलेल सिंह रुक गया। उसने कुछ क्षण मौन रहकर कुछ सोचा और फिर कमर से गहनों की पोटली निकाली और दूसरे ही क्षण उसे घुमाकर ऐसे निशाने पर फेंका कि पोटली ठीक आँगन के बीच में जाकर गिरी।

फिर वे तीनों जल्दी-जल्दी कदम उठाते हुए आगे बढ़ गये और जब गाँव से दूर पहुँच गये तब एक बार फिर उन्होंने रहट का ठण्डा पानी पिया।

फुलेल सिंह ने डाढ़ी से पानी की बूँदे पोंछते हुए शिकरे की सी दहकती आँखों से साथियों की ओर देखा और बोला—"कहो यार, आज रात किसके यहाँ हाथ साफ़ किया जाय?"

ग्रंथी

"सतनाम !" यह शब्द सदैव की भाँति ग्रंथी के मुँह से निकला और उसके क़दम रुक गये।

"ग्रंथी जी ! सौ मर्तबा कहा है कि यूँ दनदनाते हुए न बढ़े आया करो। ज़रा परे खड़े रहा करो। किस वक्त आदमी न मालूम कैसी हालत में होता है......।" नल के समीप बैठी हुई औरत ने अपनी पिंडली, शलवार के पाँयँचा से खिसका कर ढाँप लिया और एड़ियाँ रगड़ने लगी। ग्रन्थी कब का पीछे हट चुका था। औरत ने मुफ्त में रामायण छेड़ दी। ग्रन्थी का मुँह ऊपर को उठा हुआ था। मुँह ऊपर उठाये रखने की उसे आदत सी हो गई थी।

यह 'सौ मरतबा' की भी खूब रही। कही तो यह बात उसको पहले भी कई बार गई थी, परन्तु यदि बाहर खड़े रहने पर उसकी धीमी आवाज़ सुन ली जाय तो वह कदापि इस प्रकार दनदनाता हुआ अन्दर प्रवेश न करे। उसकी आवाज़ अच्छी खासी थी, लेकिन जोर से आवाज़ देने पर भी उसे टोका गया था—"यह क्या बदतमीज़ी है। इस क़दर गला फाड़ने की भी क्या ज़रूरत है?" अब अगर वह उसकी मन पसंद आवाज़ में, बड़े संगीत पूर्ण ढंग से, सुबह से शाम तक खड़ा-खड़ा—'सतनाम, सतनाम' कहता रहे तो कोई उसकी आवाज न सुन पाये और न उसको रोटी दे। गुरुद्वारे के मुसाफ़िर भी एक मुसीबत ही थे। न वे रोज़-रोज़ आवें, न उसको रोटियाँ माँगनी पड़े! अपने लिये तो वह कभी रोटियाँ माँगने न आये...। एँड़ियाँ रगड़-रगड़ कर पाँव धोने वाली की सूरत तो देखो! यह तो खैर, उस आफ़त की परकाला की सूरत भी भला देखने योग्य थी, जिसने उस पर बदनीयती का अपराध थोपा था? सब से मोटी बात जो उसके बारे में कही जा सकती थी वह यह थी कि उसने अमुक औरत की ओर कुदृष्टि से ताका। और यही अभियोग उस पर लगा कर वह तूमार बाँधा गाया कि बस! इतने में फ़तह सिंह चौकीदार ने आँगन में प्रवेश किया।

औरत ने स्वच्छन्दता से कहा—"आ फ़तिया! क्या बात है। चौकीदार फ़त्ती ने ग्रंथी की ओर चुभती हुई नजरों से देखा—"क्या सरदार जी घर पर नहीं हैं? वह आयें तो कहना कि रात को कुएँ पर आ जायें।" लस्सी का कटोरा देने पर वह उसे एक ही साँस में चढ़ा गया। फिर ग्रंथी के कन्धे से कन्धा भिड़ा कर बाहर निकल गया।......
औरत की भृकुटी चढ़ गई।

ग्रंथी इन सब बातों का मतलब समझता था...। आज उसको एक अघटित अपराध की सज़ा मिलने वाली थी।

× × ×

उस रात गाँव के बड़े कुएँ पर गाँव भर के प्रमुख लोग जमा हुए। ग्रंथी पर जिरह बहस की गई और अगर कोई बात उसके पक्ष में निकलती तो वे झल्ला उठते। सब लोग उससे ख़फ़ा थे। किसी की असली शिकायत यह थी कि वह उनके घर वालों को प्रसाद हमेशा कम दिया करता था, किसी के घर में जाकर उसकी पत्नी ने काम करने से इन्कार कर दिया था, किसी के बच्चों को उसने गुरुद्वारे की फुलवाड़ी उजाड़ने से मना किया था। लेकिन उस पर अभियोग यह लगाया गया कि लाजो एक दिन गुरुद्वारे में माथा टेकने के लिये गई तो उसने उसका हाथ पकड़ लिया। लाजो को अच्छा नहीं समझा जाता था। उसका पति मर गया था! अब वह अपने तीन भाइयों के साथ रहती थी। तीनों भाई बेकार थे। जो भी काम हाथ लगता कर लेते। एक भाई ने पंसारी की दूकान खोल रक्खी थी। कभी वे जलेबियाँ बनाते, कभी ताँगा तैयार करते, हाथ लगने पर अच्छे पैमाने पर चोरियाँ भी करते और कभी किसी आरोही की घोड़ी छीन लेते।

"क्यों लाजो! क्या यह बात सही है कि ग्रंथी ने तुम्हारा हाथ पकड़ा?"

लाजो ने बड़े विस्तार के साथ बताया कि किस तरह ग्रंथी ने उसका हाथ पकड़ा और फिर किस तरह उसने उसको गले लगाने की कोशिश की।

"ग्रंथी जी, तुमको कुछ कहना है?"

"मैंने इसका हाथ नहीं पकड़ा।"

लाजो चमक कर कुछ कहने वाली थी कि उसको रोक दिया गया। "तो ग्रंथी जी, आज तुमने लाजो का हाथ पकड़ा, कल किसी और का आँचल खींचोगे। गाँव की बहू बेटियों की इज़्ज़त तुम्हारे हाथों सुरक्षित नहीं।"

"मैंने इसका हाथ नहीं पकड़ा......।"

"तुमने काम तो वह किया है कि तुम को......। खैर कल संक्रान्ति का काम भुगता कर परसों यहाँ से चले जाओ।"

ग्रंथी वापस आकर बिस्तर पर लेट गया। नींद न आती थी। कितने ही दिनों ठोकरें खाते रहने के बाद वह इस गुरुद्वारे का ग्रंथी हुआ था। यहाँ उसे हर प्रकार का सुभीता था। एक ओर एतिहासिक इमारत थी, दूसरी ओर कई इमारतें बन रही थीं। चक नम्बर ३५ और चक नम्बर ३६ का यह संयुक्त गुरुद्वारा था। दोनों गाँव एक दूसरे के बिलकुल समीप होने के कारण अलग गुरुद्वारे की ज़रूरत मालूम न होती थी। फलस्वरूप चढ़ावा भी ज्यादा चढ़ता था।

थोड़ी देर तक उसकी पत्नी उसके समीप बैठी रही। वह उदास थी। लेकिन उसको अपने पति पर भरोसा था। वह जानती थी कि उसके पति पर जो अभियोग लगाया गया था वह सरासर झूठा था। वे दोनों इस विपत्ति का मूल कारण भी जानते थे। लेकिन लाचार थे। अगर इस जगह रहने का मतलब यह था कि बात-बात पर बेइज्ज़ती सही जाय, उसकी पत्नी दूसरे के घरों में जाकर न केवल सेवा टहल करे बल्कि उनकी खुशामद भी करे तो इससे अच्छा यही था कि वे इस गुलामी से मुक्त होकर अपने गाँव चले जायें...। लेकिन वह इसके बाद क्या करेगा, यह बात उसकी समझ में न आती थी।

गर्मियों की चाँदनी रात में वह खुले आकाश के नीचे चारपाई पर लेटा सही अर्थ में तारे गिन रहा था। उसने तारों की ओर कभी ध्यान ही न दिया था, परन्तु तारों की दुनिया भी कितनी सुन्दर और अनोखी थी। दूर तक फैले हुए अगणित तारों को आकाश गंगा कहा जाता है। मरने के बाद मनुष्य की आत्मा आकाश-गंगा से होकर जाती है। न जाने वह रास्ता कैसा होगा? कैसी जगह होगी? पेड़ होंगे या रेत के टीले? जब आत्मा थक जाती होगी तो उसको विश्राम की अनुमति मिलती भी होगी या नहीं? उस रास्ते का आखिर कहाँ अन्त होता होगा?

उसकी आँख लग गई। जब जागा तो तारे झिलमिला रहे थे और वायु में शीतलता थी। जाड़े में बूढ़ा बैल सींग हिला रहा था, और उसके गले में पड़ी हुई घण्टियाँ बज रही थीं। गुरुद्वारे के अन्दर उसके छोटे-से घर के आँगन में उसकी पत्नी दही बिलो रही थी। दही बिलोने की आवाज़ इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण था कि अब सुबह होने वाली थी।

वह उठा। लाठी उठाकर वह बबूल के पेड़ की ओर चला गया। एक कोमल सी डाल काटकर उसने तीन दातूनें बनाईं—अपने लिए, अपनी बीवी के लिए और अपनी नौ वर्षीया बच्ची के लिये। एक झाड़न कन्धे पर डाले वह खेतों में से होता हुआ बाड़े में वापस आया और बैल की रस्सी खोलकर रहट की ओर बढ़ा।

पुरानी चाल का वह रहट ज़मीन से बहुत ऊँचा था। एक ऊँचा, गोल चबूतरा, जहाँ से गोबर मिली मिट्टी नीचे गिरती रहती थी। चबूतरे के दोनों ओर गारे की बेडौल-सी टेढ़ी-मेढ़ी दो दीवारें खड़ी थीं। उन पर दरख्त काटकर एक लम्बा-सा लट्ठा लटका दिया गया था। उसके बीचो-बीच चर्खी की लकड़ी घुसी हुई थी। पास ही दूसरी चर्खी उसमें दाँत जमाये खड़ी थी। निचली चर्खी के पास लकड़ी का हुक्का था, जो उसको पीछे की ओर घूमने से रोकता था। जब बैल को जोत दिया गया और चर्खियाँ घूमने लगीं तो हुक्का कट-कट बोलने लगा। कुएँ वाली बड़ी चर्खी भी घूमी। रस्सियों से बंधी हुई टिंडें (मिट्टी की छोटी-छोटी हाँडियाँ) पानी की ओर लपकीं। जो टिंडें रात की भरी बैठी थीं उन्होंने पानी उँडेल दिया। झाल में से पानी की धारा तेजी से निकली। कुआँ अजीब स्वर में रूँ-रूँ की आवाज़ निकालने लगा। कभी ऐसा जान पड़ता, जैसे गा रहा हो। कभी रोने की आवाज़ निकलने लगती और कभी उसमें से हृदय विदारक आर्त्तनाद सा पैदा होता...। अंधेरे में यह अजीब-अजीब आवाजें; छोटी-बड़ी घूमती हुई चर्ख़ियाँ ऐसी दिखाई देती थीं मानो कोई अनोखा जानवर रेंक रहा हो।

इस कोलाहलमय वातावरण में सजीवता की लहर दौड़ गई। इधर उधर से दो-चार कुत्ते भूँकने लगे।

ग्रन्थी ने झाल की तरफ़ तख्ता लगाकर पानी रोक लिया जिससे वह टोंटियों की तरफ़ चला जाय। जब खेत को पानी देना होता तो पानी को ढाल की ओर जाने दिया जाता। चहारदीवारी पर बैठ कर उसने दातून की। दातून की कूंची से दाँत और मसूढ़े साफ़ किये फिर दातून बीचो बीच से फाड़कर उसे कमान की तरह से मोड़ लिया और ज़बान पर रगड़ा।

कुएँ पर झुके हुए शहतूत के दरख्त पर पक्षी पर फड़फड़ाने लगे।

दातून फेंककर उसने कपड़े उतारे। टोंटी के मुँह से लकड़ी हटा दी। मुँह और दाढ़ी धोकर 'वाह गुरू, वाह गुरू' का जाप करता पानी के धार के नीचे बैठ गया। यह रोज की क्रिया थी। कल वह उस जगह को छोड़ कर चला जायगा, इस समय उसे यह बात अविश्वसनीय लग रही थी।

कच्छा निचोड़ कर उसने बगल में दबाया। पानी से भरी बाल्टी उठाकर वह अन्दर चला गया। बड़े आँगन में उसकी पत्नी झाड़ू दे रही थी। कच्छा झटककर रस्सी पर डालने के बाद उसने भूमि पर पानी छिड़कना शुरू किया। आज संक्रान्ति थी।

सफ़ाई और छिड़काव के बाद टाट बिछाया गया। ग्रन्थ साहब पर सिल्क के रूमाल डाल दिये गये। चौकी भी साफ़ करके निकट ही धर दी गई। फिर वह अन्दर से हारमोनियम, तबला, ढोलक, चिमटा इत्यादि गाने बजाने के साज उठा लाया। उसकी पत्नी पास खड़ी दातून कर रही थी। उन्होंने एक दूसरे की ओर ताका। दोनों के अन्दर यह विचार था कि जब उनको यहाँ रहना ही नहीं है तो उनकी बला से, वे काम भी क्यों करें ? लेकिन यह गुरू घर का काम था। यह तो गुरुद्वारे की सेवा थी। किसी पर क्या एहसान था। अपनी करनी ही सुधारने का सवाल था। और दोनों के दिलों में आशा की एक हल्की सी किरण भी मौजूद थी कि शायद कोई ऐसा संयोग हो जाय कि उनका जाना रुक जाय।

लड़की आज अच्छे-अच्छे कपड़े पहने फूली न समाती थी। कितनी भोली थी वह।

धूप निकल आई। उसकी पत्नी मुँह पर छड्डी मल कर धूप में जा बैठी। ग्रन्थी ने बड़े-बड़े मटकों में पानी भरना शुरू किया कि संगत को यदि प्यास लगी तो पानी की तकलीफ न हो। गुरुद्वारे का बूढ़ा बैल कम-जोर हो चुका था। काम कम करता और आराम ज्यादा : यह तो हो नहीं सकता था कि संगत को पानी पिलाने को वह बैल शाम तक कुएँ के आगे जोते रखे।

शंख हाथ में लिए वह गुरुद्वारे की टूटी-फूटी चहारदीवारी के बाहर निकल आया। दरवाजे के पास दरख्त का एक भारी भरकम तना पानी के गढ़े में धँसा पड़ा था। आस-पास गुरुद्वारे के वे खेत थे, जिनमें उसने खुद हल चलाया था, बीज बोया था, चाँदनी और अँधेरी रातों में पानी से सींचा था। नलाई भी की थी। उन खेतों से उसका कितना गहरा सम्बन्ध था। उसका पसीना इन खेतों की भुरभुरी मिट्टी में सूख चुका था। अब वह अपनी गाढ़ी कमाई का किसी प्रकार हक़दार न था। पास ही बरगद का एक बूढ़ा वृक्ष था जिसके सम्बन्ध में एक कहावत प्रसिद्ध थी कि गुरुओं के समय में एक बहुत ही धार्मिक पुरुष इस गुरुद्वारे में सेवा किया करता था। उसने अपनी उम्र इसी जगह गुरू के चरणों में बिता दी। यहाँ तक कि वह बूढ़ा हो गया...। लेकिन उसकी संगत और सेवा में फ़र्क न आया। उसका हृदय उसी प्रकार श्रद्धा से परिपूर्ण था। एक बार की बात है कि गर्मियों में दोपहर को वह खेतों की नलाई कर रहा था। उसकी पगड़ी के अन्दर उसके उलझे हुए बाल पसीने से तर हो रहे थे। उसे प्यास लगी। उसने टिंड में पानी भर कर रस्सी का बँधना बना कर बड़ के पेड़ में लटका रखा था। जब उसने टिंड को छुआ तो वह इतनी ठण्डी थी जैसे बर्फ़। कितना शीतल जल है, उसने सोचा गुरु साहब सच्चे बादशाह इसी ओर आने वाले है। क्यों न यह

जल उन्हीं के लिए रहने दूँ। वह इसमें से पानी पी लेंगे तो बचे हुए जल से अपनी प्यास बूझा लूँगा।...निःसन्देह गुरू जी दौरा करते हुए उस ओर को आने वाले थे। लेकिन उनके आने में अभी बहुत समय था वह निश्चिन्त भाव से दरबार में बैठे संगतों को दर्शन दे रहे थे। अचानक गुरू साहब उठ बैठे और तुरन्त प्रस्थान का आदेश दिया। सभी हैरान थे कि आखिर इसमें भेद क्या है ? यह बैठे-बिठाए अकस्मात इतनी जल्दी काहे की पड़ गई। गुरू साहब सच्चे बादशाह बोले—एक सिक्ख हमारी प्रतीक्षा कर रहा है। वह प्यासा है। जब तक मैं वहाँ जाकर पानी न पियूँगा वह प्यासा ही रहेगा...। गुरू साहब घोड़ा सरपट दौड़ाते हुए उस जगह पहुँचे, जाते ही पानी माँगा। सिख ने वह टिंड आगे बढ़ा दी। वह कितना सुखी था। उसकी आँखों में खुशी के आँसू आ गये

ग्रन्थी दरख्त के तने पर खड़ा हो गया। जब उसने शंख मुँह में लगाया तो सोचने लगा—गुरू साहब दिलों का हाल जानते है। उन्हें मेरी निर्दोषता ज्ञात है। वह यहाँ से नहीं जायगा। उसे विश्वास था कि अवश्य ही कुछ न कुछ युक्ति निकल आयगी।

शंख फूँकने के बाद वह देर तक गाँव की ओर निहारता रहा, मानो वह भी किसी के आने की बाट जोह रहा हो। कितनी तेज़ धूप हो गई थी और लोग अभी घर से भी न निकले थे। मटियाले-मटियाले मकान, मकानों से सिर निकाले हुए हरे पेड़...। कच्ची सड़कों से आगे ढाल पर भंगियों के काले कलूटे, नंग-धड़ंग बच्चे खेल रहे थे। तीन बछड़े इधर उधर चौकड़ियाँ भरते फिरते थे।

वह गुरुद्वारे की छोटी-सी फुलवारी में गया। अंगूर की बेलें आड़ी तिरछी लकड़ियां परी से गिर पड़ी थीं। एक कोने में से उसने उलझी हुई रस्सियाँ उठाईं। बेलों को लकड़ियों के साथ लगा-लगाकर रस्सियों के टुकड़ों से कुछ ढील दे देकर बाँधने लगा।

उसकी मोटी-मोटी उँगलियाँ अपने काम में निपुण थीं। पास ही

धनिया और मिर्चों की क्यारी थी। वह उसके किनारे पंजों पर बैठ गया, बीच-बीच में खट्टी-मिट्ठी बूटी के छोटे छोटे पौधे भी थे। उसने संभाल कर उन्हें उखाड़ना शुरू किया। बच्चे उन बूटियों को बड़ी रुचि से खाते थे। अनार के पेड़ चुपचाप समाधि लगाए हुए साधुओं की भाँति दिखाई दे रहे थे। हवा बन्द थी। पेड़ों की पत्तियाँ तक नहीं हिलती थी। मालूम होता था जैसे परमात्मा से उनकी लौ लगी हो। बाग का कितना भाग बेकार पड़ा हुआ था। उसका विचार था कि वह झाड़ियों और मदार के पेड़ों से उस हिस्से को साफ़ करके वहाँ तरकारियाँ बोये—मटर, टमाटर, गोभी...।

हर पेड़ और पौधे को देखता हुआ वह बाहर निकला। फिर उसी तने पर खड़े होकर उसने दूसरी बार शंख बजाया। कोई सूरत नज़र न आती थी। मर्द तो खैर खेतों में काम कर रहे थे, लेकिन औरतें घरों में घुसी पड़ी थीं। बीवी से कहने लगा—"दो मरतबे शंख फूँक चुका हूँ, कोई आदमी नज़र नहीं आता। कम से कम औरतों को तो आना चाहिये।"

उसकी बीवी चुप रही। औरतों के बारे में वह जानती थी। एक तो हर औरत के चार-चार, पाँच-पाँच बच्चे थे। उनको नहलाना धुलाना, फिर हर औरत को अपना भी बनाव-शृंगार करना था। यही वह जगह थी जहाँ अपने गहनों और कपड़ों का प्रदर्शन किया जा सकता था। दुनिया भर की बातें यहाँ की जाती थीं। अनेकों गूढ़ समस्याओं को यहीं बैठकर सुलझाया जाता था।

छोटी बच्ची ने खुशी में ढोलकी थपथपानी शुरू की। ग्रन्थी चमेली के चारों ओर ईंटों के उखड़े हुए जंगले को सुधारने लगा। कहीं कोई ईंटें गिरी पड़ी थीं, कहीं कोई टहनी ईंटों से उलझकर रह गई थी। किसी जगह पेड़ इतने फैल गये थे कि जँगले को और बड़ा करने की जरूरत हो गई थी।

लोहे के डोल भर-भरकर उसने फूलों को पानी देना शुरू किया। बिचारे गेंदे के फूल तो निरे अनाथ ही थे। कोई उनकी देख-रेख न करता था। बेचारों को सूखी और कड़ी भूमि पर ही पनपना पड़ता था। कूड़ा-करकट भी उन्हीं पर फेंक दिया जाता। इस पर भी जब फूल जाते तो हर तरफ़ पीला ही पीला देख पड़ता। फूलों के हार गूँथे जाते, बच्चे झोलियाँ भर-भरकर घरों को ले जाते, कुछ ग्रन्थी साहब के सामने भी चढ़ा दिये जाते। बड़ी दुर्गति होती बेचारों की। वह जब कभी गेंदे के किसी फूल की ओर देखता तो उसे उनके अनाथ होने का ख्याल आने लगता, जैसे कि वह खुद अनाथ था। वह पौधे के समीप बैठ जाता। फूल हवा में इधर-उधर झूमने लगते। वह प्यार से फूल को दोनों हाथों में ले लेता, मानो वह किसी बालक का शशि-मुख हो। उसे एक बात याद आ जाती। एक बार गुरू अर्जुन देव जी के लबादे की झपट में आकर फूल की पंखड़ी भूमि पर गिर पड़ी तो गुरू साहब की आँखों में आँसू उमड़ आये। यह सोचते-सोचते न जाने किस भाव से प्रभावित होकर ग्रन्थी की करुणा उमड़ उठी। वह कुछ समझ न सकता था। वह जानता था कि उसकी अक़्ल मोटी थी, लेकिन फिर भी वह जाने किस भाव में मग्न हो जाता था।

भट्टी के पास उसने कड़ाह-प्रसाद (हलुवा) की कुल सामग्री इकट्ठी कर दी। लकड़ियाँ और मोटे-मोटे उपले भी एक ओर ढेर कर दिये। और फिर शंख लेकर दरख़्त के तने पर जा खड़ा हुआ। तीसरी बार शंख फूँककर वह देर तक उसी तने पर खड़ा रहा। धूप चिलचिला रही थी। आँखें धूप में तपती हुई हवा की गर्मी सहन न कर सकती थीं। उसने आँखों पर हाथ रखकर गाँव पर नज़र जमा दी। शायद कोई सूरत नज़र आ जाय। उसे काम को समाप्त करने की चिन्ता हो रही थी।

कुछ नीले-पीले दुपट्टे हवा में लहराये। कुछ किशोर अवस्था के लड़के और लड़कियाँ अठखेलियाँ करते दिखाई देने लगे। रंग बिरंगे

रूमालों से ढँकी हुई थालियाँ हथेलियों पर धरे पवित्र आत्मा बूढ़ी औरतें पीछे-पीछे चली आ रही थीं। धीरे-धीरे दोनों गाँवों के लोग चींटियों की तरह रेंगते हुए निकले, और छोटी-छोटी टोलियों में गुरुद्वारे की ओर बढ़े।

ग्रन्थी ने हाथ-पैर धोकर पगड़ी सँभाली। गले में पीले रंग का लम्बा-सा कपड़ा डालकर 'वाह गुरू, वाह गुरू' कहता गुरु ग्रन्थ साहब के पास जा बैठा।

गुरु ग्रन्थ साहब पर से रूमाल हटाकर बड़ी सावधानी से लपेट, जिल्द के नीचे रख दिया और पवित्र ग्रन्थ को खोल आँखें बन्द कर चौरी हिलाने लगा।

लम्बे-लम्बे घूँघट निकाले हुए औरतें चहारदीवारी के अन्दर दाखिल हुईं। उनमें से कोई-कोई नई-नवेली दुल्हनें थीं, जिन्होंने कुहनियों तक चूड़ियाँ पहन रखी थीं। लाल रंग की कमीज़ और शलवार में गठरी-सी बनी हुई वे बीर बहूटियों जैसी दिखाई दे रही थीं। गुरु ग्रन्थ साहब के सामने पैसे, बताशे, फूल, थालियों में चावल, दाल, आटा इत्यादि रख वे माथा टेकतीं और एक तरफ बैठ जातीं। लड़कों में किसी ने हारमोनियम पकड़ लिया, एक लड़का धौंकनी को हिला-हिलाकर हवा देने लगा। दूसरा अपनी उंगलियों से लकड़ियों के काले सफेद स्वरों को बुरी तरह दबाने लगा। एक ने ढोलकी बजानी शुरू कर दी। दो लड़के बड़े-से चिमटे को बजाने लगे। छेने भी छनछनाकर बोलने लगे। इधर औरतों ने आपस में बातें शुरू कर दीं। उनकी आवाज़ हर नियंत्रण से मुत्तदूर तक सुनी जा सकती थी। कुछ लड़कों ने इधर-उधर भागना शुरू किया। नई इमारत की ईंटों की थाक लगी हुई थी। लड़कों ने ईंटों की रेलगाड़ी बनाई। एक लम्बी लाइन मे ईंटें एक के पीछे एक कुछ-कुछ अन्तर पर रख दी गईं। फिर एक को जो ठोकर लगाई तो सारी ईंटें धड़ाधड़ गिरने लगीं। लड़के उछल-उछलकर शोर मचाने लगे। उनकी ढीली-ढाली

पगड़ियाँ खुल गई। उन्होंने फिर बाँधने की जगह उन्हें अपनी बगलों में दबा लिया और बाग का चक्कर लगाने निकल गये। आज वे निडर हो रहे थे। वे अपनी माताओं के साथ थे। ग्रन्थी का पहले तो आज कुछ डर भी न था, दूसरे वह उस समय तो आँखें बन्द किये ग्रन्थ साहब के पास बैठा था।

अब मर्दों की आमद शुरू हुई। मोटे खद्दरके तहबंद बाँधे, घुटनों तक लम्बे कुर्ते पहने सिरों पर आठ-आठ, दस-दस गज़ की कलफ लगी पगड़ियाँ लपेटे, हाथों में लोहे और पीतल की मूठवाली लाठियाँ थामे और अपनी दाढ़ियों को खूब चिकना किये हुए आये और माथा टेक-टेककर वह इधर उधर बैठने लगे। उनमें लम्बे तगड़े नवयुवक भी थे, जिनकी तहबन्दों के रंगीन रेशमी इज़ारबन्द जान बूझ कर घुटनों तक लटकाए हुए थे। पगड़ियों के शमले खूब अकड़े हुए थे। कुछ ऐसे छैल-छबीले भी थे जिन्होंने पगड़ी का पिछला छोर घुमा फिरा कर बड़ी युक्ति से अगले सिरे पर ला ठूँसा था, जैसे किसी पले हुए मुर्ग़ के सिर पर उसकी सजी बनी कलँगी।

मर्दों के पहुँच जाने पर कार्यक्रम शुरू हुआ। कुछ नौजवानों ने बढ़ कर साज सँभाल लिये। एक एक इलायची और लौंग मुँह में डालकर साज बजाने शुरू किये। हारमोनियम के साथ ताल पर ढोलक बजने लगी। चिमटे वाले ने झूम झूमकर चिमटा बजाना शुरू किया। इधर छैने भी टकराये। हारमोनियम वाले ने मुँह खोलकर एक लम्बा 'हो' निकालने के बाद गाया—

'इये पैठ कसे नहीं रहना मेला दो दिन का।'

इतना कह कर वह लगातार मुँह हिलाने लगा। ढोलकी वाले की गर्दन हिलती थी तो चिमटे वाले का धड़। जब एक बार कार्यवाही शुरू हो गई तो मुख्य-मुख्य लोगों ने आपस में कानाफूसी शुरू कर दी। कई मामलों पर विचार होता जान पड़ता था।

शब्द कीर्तन के बाद गुरु ग्रन्थ साहब की पवित्र वाणी पढ़ कर उपस्थित सज्जनों को सुनाई गई। उसके बाद ग्रन्थी चौकी पर से उतरा और अरदास के लिये गुरु ग्रन्थ साहब के सामने हाथ बाँध कर खड़ा हो गया। दूसरों ने भी उसका अनुकरण किया। सब लोग हाथ जोड़कर खड़े हो गये। ग्रन्थी ने आँखे बन्द कर लीं और अरदास शुरू की।

"प्रथम भगवती सुमर के गुरुनानक लईं ध्याय।

फिर अंगद गोरते अमर दास रामदासे हो सहाय..."

इस तरह दसों गुरुओं को स्मरण किया गया और फिर—

"पंज प्यारे, चार साहबजादे (साहब अजीत सिंह जी, साहब जुझार सिंह जी, साहब जोराबर सिंह जी, साहब फ़तेह सिंह जी) चालीस मुक्ते, शहीदों, मुरीदों, सिदक रखने वाले सिक्खों की कमाई का ध्यान धर के खालसा जी बोलो वाह गुरू...।" ग्रन्थी के वाह गुरू करने पर उपस्थित लोग 'वाह गुरू वाह गुरू' कहते। इधर उनकी आवाज गूँजती, उधर एक बड़े नगाड़े पर चोट पड़ती। और नगाड़े की आवाज लोगों की आवाज से घुल मिलकर देर तक प्रतिध्वनित होती रहती। और दिलों पर एक आतंक सा छा जाता।..."जिन लोगों ने धर्म के लिये जानें बलिदान दीं, चर्खड़ियों पर चढ़े, बदन के जोड़-जोड़ अलग कर दिये, जिनकी खालें खींच ली गईं, जिन्होंने खोपड़ियाँ उतरवाईं लेकिन अपना धर्म नहीं छोड़ा, जिन्होंने सूली सिदक अपने सिर के पवित्र केशों को अपनी आखिरी साँसों तक निभाया, उन सिंहों और सिंहनियां की कमाई का ध्यान करके खालसा साहब बोलो जी वाह गुरू...।"

"वाह गुरू वाह गुरू...।"

"जिन गुर्मुखों ने गुरुद्वारों के सुधार की ख़ातिर श्री ननकाना साहब जी में और श्री तरन तारन साहब के सिलसिले में अपने जिस्मों पर तकलीफें सहीं, जीते जी तेल में डाल कर जला दिये गये, दहकती भट्टियों में झोंक दिये गये और वह इस तरह शहीद हो गये, उन गुरू की सूरत

रखने वाले सिक्खों की कमाई का सदका! खालसा साहब बोलो जी वाह गुरू ...।"

"वाह-गुरू, वाह-गुरू।"

"......जिन माओं, बीवियों ने अपने बच्चों और पतियों के टुकड़े टुकड़े करवा कर अपनी झोलियों में डलवा लिए उनकी कमाई का सदका, खालसा साहब बोलो जी वाह गुरू...।"

"वाह गुरू, वाह गुरू?"

लम्बी अरदास के अन्त में—

(ए गुरू साहब!) हमको क्रोध, लोभ, मोह, और मद से बचाइए। आपके हुजूर अमृत वेले का अरदास, अगर भूल चूक में कोई शब्द कम व बेश हो गया हो तो उसके लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं, सब के काम सँवारिये, गुरुनानक नाम चढ़ दी भलाँ, तेरे माने सबका भला।

सबने झुककर मस्तक भूमि पर टेक दिये। ग्रंथी ने दिल ही दिल में कहा—'वाह गुरू सच्चे बादशाह से दिलों का हाल छिपा नहीं।' फिर खड़े होकर 'जो बोले सो निहाल, सत श्री अकाल' की तीन ललकारें लगाईं। इसके बाद कड़ाह प्रसाद बाँट गया। धीरे-धीरे लोग प्रसाद हाथों में छिपाये व कटोरियों में लिये चले गये। कुछ ख़ास-ख़ास लोग बैठे रहे। जब एकान्त हो गया तो उन्होंने ग्रन्थी से कहा कि अगर प्रसाद बाक़ी हो तो लाया जाय। ग्रन्थी ने प्रसाद उनको बाँट दिया। चेहरों को अपने चिकने हाथों से मलते हुए वह खाता लेकर बैठे। पौन घन्टे की बहस के बाद हिसाब साफ़ हुआ। ग्रन्थी से कह दिया कि दूसरे दिन जाने के पहले वह चाभियाँ सरदार बग्गासिंह नम्बरदार को दे जाय।

उनके चले जाने के बाद ग्रन्थी की सारी आशाएँ समाप्त हो गईं। उसकी पत्नी ने घर का सामान बाँधना शुरू कर दिया। ग्रन्थी के दिल में अब तक कुछ कसक सी थी। वह उलझन से इधर-उधर घूमने लगा।

अपने दोनों हाथ पीठ पर बाँधे, तालाब के किनारे खड़ा होकर वह

उसके हरे जल को देखने लगा। उसके किनारे टूट-फूट गये थे। एक दो जगह से सीढ़ियां की ईटें भी उखड़ गई थीं, काई जमी हुई थी। उस तालाब में कोई नहाता न था। न जाने कब से उसमें बरसात का पानी जमा था। बबूल के पीले-पीले फूलों की तह सी जमी हुई थी। और बरगद के बड़े-बड़े पीले रंग के पत्ते ध्वस्त जहाज के चूर-चूर तख्तों के टुकड़ों की तरह तैर रहे थे।

उसके पास पुरानी समाधि थी, जिसकी दीवारों पर जगह-जगह से चूना उखड़ा हुआ था। उसकी दीवारों पर पुराने समय की रंगीन तस्वीरें भी थीं। कई जगह से रंग उखड़े हुए जरूर थे, लेकिन जहाँ कहीं भी बचे थे, अति चमकीले और मनोहर दीखते थे, विशेषकर गुरू नानक साहब की छवि। वृक्ष की छाँह में बाबा नानक जी बैठे थे। एक ओर भाई बाला और दूसरी ओर भाई मर्दाना। पेड़ की डाल से पिंजड़ा लटक रहा था, जिसमें एक लाल चोंच वाला तोता साफ दिखाई दे रहा था। एकान्त स्थान पर सातवें गुरू साहब परमात्मा की याद में तल्लीन रहते थे। तीन-चार वर्ष पहले की बात थी कि एक सिक्ख इसी जगह में बैठकर नित्य भक्ति किया करता था। एक बार रात के वक्त यकायक समाधि दिव्यमान हो गई। कण-कण दिखाई देने लगा। इतने में एक दिव्य मूर्ति प्रकट हुई...लेकिन वह सिक्ख दर्शन की ताब न ला सका। वह भागकर बाहर निकल आया। वह तुरन्त गूँगा हो गया। इसके बाद किसी ने उसे बोलते नहीं सुना। ग्रन्थी ने समाधि का द्वार खोल कर उसके गीले फर्श पर अपना पाँव रखा और चुपचाप खड़ा हो गया इतने में उसकी पत्नी वहाँ आई और उसकी बेहाल सूरत देखकर कुछ परेशान सी हो गई। वह अपने साथ उसे लिवा ले गई।

आँगन में हाथ की चर्खी वाले कुएँ के चारों ओर बने हुए चौड़े चबूतरे पर नीले रंग की लम्बोतरी पगड़ियाँ बाँधे निहंग सिक्ख पत्थर के बड़े-से कूँडे में ठण्डई घोट रहे थे। पगड़ियों पर लोहे के चक्र, गले

में लोह मणिकों की माला, लम्बे-लम्बे लबादे...। लोग पारी पारी बादाम चारों मेवे काली मिर्चे और थोड़ी सी रंग वाली ठण्डई की घुटाई कर रहे थे। एक अपने दोनों हाथों और पैरों से कूँडे को दोनों तरफ़ से जकड़े हुए था, और दूसरा घोटने का एक लम्बा चौड़ा डंडा, जो नीचे से कम मोटा और ऊपर से बहुत ज्यादा मोटा था, हाथों में लिए घुमा रहा था। डण्डे के ऊपर घुंघरू बँधे थे जो छुन छुन बोल रहे थे। ग्रन्थी कुछ देर तक उनको देखता रहा।

सूर्यदेव अस्ताचल को जा चुके थे। हवा बन्द थी। उसकी पत्नी दूध दुह कर अन्दर जारही थी। उसने नित्य की तरह अपनी चारपाई बाड़े के पास डाल दी थी। वह जूते उतार दोनों घुटनों पर कुहनियाँ टेक चारपाई पर जा बैठा।

कौओं के झुण्ड के झुण्ड काँव-काँव करते गाँव का चक्कर लगा रहे थे। छोटी-सी नहर की ऊँची मेड़ चक्कर लगाती क्षितिज में गुम हो गई। दूर कुछ ऊँट बिना नकेल के इधर-उधर घूम रहे थे।

ग्रन्थी खोई-खोई नजरों से अस्ताचल की ओर इस प्रकार देख रहा था मानो वह किसी की प्रतीक्षा कर रहा हो। जैसे आकाश से कोई तेजस्वी मूर्ति प्रकट होने वाली थी...। अँधेरा बढ़ रहा था। पूर्ण चन्द्रमा ऊपर उठ रहा था। इतने में बनता सिंह कन्धे पर फावड़ा रखे आ निकला। बनता सिंह किसी औरत को भगाने के अभियोग में डेढ़ वर्ष का कठिन कारावास भुगत कर कल ही अपने गाँव वापस आया था। जेल की विपदाओं का उस पर कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ था। वह वैसा ही हट्टा-कट्टा बना था। जब उसे सजा हुई थी उस समय ग्रन्थी गुरुद्वारे में आया ही था। पास पहुँच कर बनता सिंह ने उच्च स्वर में 'सत श्री अकाल' की हाँक लगाई और चारपाई पर बैठ गया। उसके फावड़े से गाढ़ी गाढ़ी कीचड़ चमक रही थी।

इधर-उधर की बातों के बाद उसने पूछा—"ग्रन्थी जी सुना है आपके

खिलाफ़ कुछ झगड़ा किया गया है। मैं तो कल रात वापस आया था। आज सुबह से मैं चक नम्बर १५६ में मामा से मिलने चला गया था। अब मैं सीधा खेतों की ओर चला आया। आखिर माजरा क्या है?"

बनता सिंह की न सिर्फ़ अपने गाँव में धाक थी, बल्कि इलाक़े भर में लोग उससे भय खाते थे। जब ग्रन्थी ने बताया कि उसके बारे में आखिरी फैसला भी कर दिया गया था तो वह झुँझला कर उठ खड़ा हुआ—"किसकी मजाल है कि तुमको यहाँ से निकाले ग्रन्थी जी! तुम इसी जगह रहोगे और डंके की चोट रहोगे। मैं देखूँगा कौन माई का लाल तुमको यहाँ से निकालने आता है?"

यह सुनकर ग्रन्थी ने, जो अब तक निर्जीव सा बैठा था, आँखें झपकाई। उसकी भौंहें काँपीं और वह दीन स्वर में बोला—"और सर्दार बनता सिंह, वाह गुरू जानता है कि मैंने लाजो को छुवा तक नहीं।"

सरदार बग्गा सिंह के दो आदमी उधर से निकलते हुए यह बातें सुन रहे थे। बनता सिंह उनको सुनाकर ऊँचे स्वर में ललकार कर बोला—"ग्रन्थी जी, तुम यह क्यों कहते हो कि तुमने उसका हाथ नहीं पकड़ा! तुम हज़ार बार उसका हाथ पकड़ सकते हो। मैं बग्गा सिंह को भी देख लूँगा। बड़ा नम्बरदार बना फिरता है। और जिन लोगों ने तुम्हारे खिलाफ़ पंचायत में हिस्सा लिया था, उनमें से एक एक से निपट लूँगा...।" अपनी भरपूर आवाज में उसने मोटी-मोटी गालियाँ भी सुनाई। यह उसके बाप का घर नहीं है। वह गुरू का घर है। यहाँ किसी ग़रीब के साथ भी अन्याय नहीं हो सकता!

यह ख़बर गाँव में आग की तरह फैल ग[illegible]। सब लोग लाजो को गालियाँ देने लगे—"हरामजादी ने मुफ्त में बेचारे ग्रन्थी पर इलजाम लगा दिया।"

अलबेले

यों तो मेरी उम्र उस वक्त तेरह-चौदह वर्ष की थी लेकिन मैं इतना दुबला-पतला और मुनहनी सा लड़का था कि मुश्किल से ग्यारह-बारह वर्ष का दिखाई देता था।

उन दिनों मैं शहर के एक स्कूल में नवीं कक्षा में पढ़ता था और बोर्डिङ्ग में रहता था। वह बोर्डिङ्ग :तो नाम मात्र का था। उसके लिए उपयुक्त नाम घोड़ों का अस्तबल हो सकता है। शहर के बाहर एक कच्ची सड़क के किनारे एक बड़ी सी इमारत थी जिसके इर्द गिर्द कुछ जगह छोड़ दी गई थी। इमारत चौकोर थी। अन्दर एक बड़ा सा मैदान था जिस पर घास उगी हुई थी और उसके एक सिरे से दूसरे सिरे तक

बरामदा चला गया था। फ़र्श की ईंटें जगह जगह से उखड़ चुकी थीं और उनमें से गर्द निकल-निकल कर चलने वालों के क़दमों के साथ उड़ा करती थी; कमरे बहुत बड़े-बड़े थे और एक-एक में कई-कई लड़के रहते थे। हर लड़के के लिए एक आलमारी, एक चारपाई, एक कुरसी और आधी मेज़ का प्रबन्ध था।

रसोईघर का कुल प्रबन्ध लड़कों के ज़िम्मे था। रसोई में तीन नौकर थे—एक रसोइया और दो नौकर खाना खिलाने और अन्य कामों के लिए।

रसोईघर में कोई चीज़ मोल न आती थी। सब के सब जाटों के लड़के थे। घी और गेहूँ सब के घर से आ जाते थे और जरूरत की अन्य चीजें जैसे ईंधन, सब्ज़ी, तरकारी मारधाड़ से प्राप्त की जाती थीं। बोर्डिंग के पीछे एक अराईं (पंजाब की सब्ज़ी-तरकारी बोने और बेचने वाली जाति) के खेत थे। उस अराईं की एक तरहदार लड़की और दो सजीले लड़के थे। दिन भर लड़के होस्टल की छत पर बैठे लड़की को इशारे करते और रात के समय खेतों से ताज़ी तरकारियाँ उठा लाते! अराईं ने होस्टल के सुपरिन्टेन्डेन्ट से लड़कों की शिकायतें की लेकिन बेचारा सूजे हुए चेहरे वाला सुपरिन्टेन्डेन्ट अपनी दाढ़ी खुजला कर रह जाता। वह खुद लाचार था। अराईं को समझा-बुझा कर वापस भेज देता और लड़कों से सिर्फ़ ज़बानी पूछताछ करता। सुपरिन्टेन्डेन्ट ने अराईं की शिकायत पर लड़कों से बीसों बार पूछा होगा पर लड़कों पर इसका कभी कोई प्रभाव न पड़ा और यह लूट जरी रही।

सुपरिन्टेन्डेन्ट पक्का सिक्ख था। खूब लम्बी लहराती हुई दाढ़ी, छोटी पीले रंग की पगड़ी पर उसका यह बड़ा नीले रंग का साफ़ा, तङ्ग पायजामा, ढीला ढाला कोट। उसका ईज़ारबन्द उससे कभी नहीं संभलता था, सदा नीचे लटकता रहता। नित्य बिना नाग़ा गुरुद्वारे जा कर पाठ करता। वह लड़कों की इस ज्यादती के सख्त खिलाफ़ था। लेकिन

होस्टल में उसकी हैसियत बस नाम ही के लिए थी। बेचारे की बीवी और बच्चे सदैव बीमार रहते। उनकी सेवा-सुश्रूषा से छुट्टी पाता तो कभी-कभार होस्टल में आ निकलता। यों दिखलाने के लिये लड़के उसका बहुत आदर करते थे, लेकिन वास्तव में उन्हें उसकी कोई परवाह न थी।

जब वह होस्टल में प्रवेश करता तो प्रायः रसोईघर का एक नौकर उसके साथ होता। बरामदे में दाखिल होते ही वह रुक जाता और टाँगें फैलाकर खड़ा हो जाता। उसका मुँह और आँखें हमेशा सूजी रहती थीं और आँखों से हमेशा पानी बहता रहता जिसे वह झाड़ननुमा रूमाल से कभी-कभी साफ़ कर लिया करता था। आते ही वह एक हलकी सी झूठी खाँसी खाँसता ताकि सबको उसके आने की खबर हो जाय। सबसे पहले वह नौकर से बात शुरू करता। किसी मामूली सी बात पर जवाब तलब किया जाने लगता—हूँ...क्यों बे सुअर ! यह पानी तूने गिराया... अबे रास्ते ही में...हैं !... किसी ने भी गिराया, तूने इसे साफ़ क्यों नहीं कर दिया झाड़ू से...।"

इतने में लड़कों को भी मालूम हो जाता कि हजरत आ गए हैं। सबसे पहले बग़दाद सिंह, जिसका चेहरा चुकन्दर की तरह सुर्ख था, हाथी की तरह झूमता हुआ आगे बढ़ता और बड़ी गम्भीरता से हाथ जोड़ कर कहता—"सत् श्री अकाल, सरदार जी !"

"सत् श्री अकाल !" फिर सुपरिन्टेन्डेन्ट का पहला सवाल यह होता—"क्यों सब टीक ठाक है न ?"

बग़दाद सिंह यह बड़ा हाथ थप मारने के अन्दाज़ में उठाकर कहता—"साब ठीक ठाक है जी।"

सुपरिन्टेन्डेन्ट कुछ चुप रहता। अब और लड़के भी जमा होने शुरू हो जाते।

सुपरिन्टेन्डेन्ट के शरीर की बनावट भी अजीब सी थी। मोटा तो

वह था ही लेकिन व्यायाम न करने के कारण ऊपर की धड़ और टाँगें हलकी थीं और पेट खूब फूला हुआ। अतः जब वह इतमीनान के साथ बड़ी गम्भीर आकृति बनाकर कोट को पेट के आगे से हटाकर दोनों हाथों को कूल्हों पर रखकर खड़ा होता तो उसका फूला हुआ पेट और भी आगे को बढ़ जाता और वह किसी सँपेरे की बीन की तरह दिखाई पड़ने लगता। उसे देख कर लड़कों को हँसी आ जाती। सुपरिन्टेन्डेन्ट दिल में समझता था कि लड़के उसी पर हँस रहे हैं। अतः वह ज़रा बेतकल्लुफ़ होकर बनावटी गुस्से से पूछता—"बग़दाद सिंह, तुम बड़े शैतान हो गए हो ?"

"जी मैं !" बग़दाद सिंह अपनी मोटी सी उंगली अपनी छाती पर रख कर आश्चर्य प्रकट करते हुए कहता—"वाह गुरू, वाहगुरू...मैं तो आपका दास हूँ जी। कहिये तो अभी सिर उतार कर रख दूँ चरणों में आपके।"

इस बात पर लड़के खूब ठहाके लगाकर हँसते। कोई लड़का किसी की ओट में होकर कहता—"किसका सिर ?"

अब बग़दाद सिंह नथुने फुलाकर ललकारता—"ओय ओय...बच्चू, सरदार जी खड़े हैं, नहीं तो अभी तुझे मुर्गा बना देता पकड़ कर।"

इसके बाद सुपरिन्टेन्डेन्ट इसी तरह बातें करता हुआ होस्टल में लट्टू की तरह घूम जाता और बाहर निकलने से पहले एक बार लड़कों को और चेतावनी देता—"अच्छा, अब सब्ज़ी बाज़ार से आती है न ?"

"जी, बिलकुल...अब तो हम रोज़ का हिसाब भी लिख कर रखते हैं, देखियेगा ?"

वह अच्छी तरह जानता था कि ये लोग झूठ बोल रहे हैं लेकिन वह इसी बात से सन्तुष्ट था कि लड़के कम से कम उसकी इज़्ज़त तो रख लेते हैं। वह इसी बात पर अपनी खैर मनाता, हिसाब वगैरह देखे बिना 'अच्छा अच्छा' कहता हुआ चला जाता।

उसके जाने के बाद लद्दा सिंह पानी के गिलास में से कुछ बूँदें

आँखों पर टपका लेता और कुल्हों पर हाथ रखकर खड़ा हो जाता। फिर तौलिये से आँखें पोंछता हुआ कहता—"ऊँहूँ, ऊँहूँ···बहादरसिंह ! सब ठीक ठाक है न ?"

मैं केवल आयु में ही छोटा नहीं था बल्कि दुबला-पतला भी था, इसलिये वे सब मुझे मेरे असली नाम से पुकारने के बजाय बकरी सिंह के नाम से सम्बोधित करते थे। बकरी सिंह नाम तो बहुत बुरा था लेकिन थोड़े ही दिनों बाद यह नाम मेरे लिए अजनबी या अपरिचित नहीं रहा। अब सिर्फ मेरी हँसी उड़ाने के लिए यह नाम नहीं लिया जाता था बल्कि बहुत गम्भीर वार्तालाप में भी मुझे इसी नाम से सम्बोधित किया जाता था। मैं कमज़ोर था और वे लोग सरकारी साँड़ों की तरह पले हुए थे, लेकिन वे मुझ पर हाथ उठाना गऊ हत्या के समान पाप समझते थे। यहाँ तक कि अगर कभी मैं क्रोध में आकर उनमें में किसी को लड़ने के लिए ललकारता भी तो वह मेरे सामने हथियार डाल देता। मैं अपनी दुर्बलता के कारण उन लोगों के बीच बिलकुल सुरक्षित था।

एक बार गरमियों के मौसम में सिक्खों के किसी त्योहार की हफ्ते भर की छुट्टियाँ हुई। क़रीब क़रीब सभी लड़के बोरिया-बिस्तर बाँधकर अपने अपने घरों को चल दिये। मैं मेहनती लड़का था। पहले तो होस्टल ही में छुट्टियाँ बिताने का निश्चय किया लेकिन फिर इतने बड़े होस्टल में अकेले जी न लगा। न वह ताज़ी-ताजी सब्जियाँ, न वह चहल-पहल। रात के समय अँधेरे बरामदों में भुतने नाचते दिखाई देते थे। अतएव दो ही दिन बाद मैंने भी अपने गाँव जाने की ठानी।

गाँव में मेरी माँ, बुआ और दो बड़े भाई रहते थे। मैंने मैले कपड़ों और कुछ किताबों की गठरी बाँधी और साइकिल के पीछे केरियर पर रखकर रस्सी से उसे बाँध दिया। पच्चीस मील का सफ़र था—पम्प, सुलेशन, कैंची आदि ज़रूरी सामान चमड़े के छोटे थैले में रख लिया।

दोपहर के भोजन के बाद थोड़ी देर आराम किया और जब धूप की तेज़ी कुछ कम हुई तो चल दिया।

उस समय पाँच बजे थे। ख़याल था कि अधिक से अधिक चार घन्टे में गाँव पहुँच जाऊँगा।

× × ×

धूप हलकी पड़ चुकी थी, लेकिन गर्मी अब भी काफ़ी थी। सड़क बड़े-बड़े खेतों में से होकर जाती थी। रास्ते में सड़क से ज़रा परे हटकर जगह-जगह रहट चलते दिखाई दे रहे थे। कुओं का साफ़ स्वच्छ पानी भीलों में गिरता हुआ आँखों को कितना भला मालूम होता था। इन पर उन कुओं के इर्द-गिर्द कैंची से कतरी हुई दाढ़ियों वाले किसान मोटी सूती कपड़े की लुंगियाँ बाँधे बड़े सुरूर में हुक्के गुड़गुड़ाते दिखाई पड़ते थे। जब कुओं पर काम करने वाली लड़कियाँ और स्त्रियाँ खेतों में मटक-मटक कर इधर-उधर चलती थीं तो उनकी लम्बी-लम्बी चोटियाँ नागिनों की तरह बल खा-खाकर लहराती थीं। बैलों की टाँगों में घुस-घुसकर भूँकने वाले कुत्ते अलग शोर मचा रहे थे और अपनी मैली-कुचैली चुंदरियों में सूखे हुए गोबर के टुकड़े जमा करने वाली बालिकायें कभी-कभी अपना काम छोड़कर गिलहरियों की तरह मेरी ओर देखने लगती थीं।

अभी मैंने चार-पाँच मील का ही फ़ासला तय किया था कि सायकिल पंचर हो गई। मैंने सड़क से हटकर पानी की तलाश में इधर- उधर निगाह दौड़ाई। रहट बहुत पीछे रह गया था, इसलिए एक पोखरे के किनारे सायकिल को लिटा दिया। पंचर बहुत बड़ा था। डबल पंचर लगाने में बीस-पचीस मिनट लग गये। दो मील चल कर सायकिल की हवा फिर निकल गई। अब की पानी भी नज़दीक नहीं था। इसलिए सायकिल लुढ़काते हुये आध मील के क़रीब पैदल चलना पड़ा। सड़क के किनारे एक गाँव था। वहाँ एक सायकिल वाले की दूकान भी थी। मैंने सायकिल उसे सौंप दी। मेरा लगाया हुआ पंचर उखड़ गया था। उसे नये सिरे

से ठीक किया गया। इसी गड़बड़ में सूरज क्षितिज तक जा पहुँचा और मैंने अभी आधा सफ़र भी तय नहीं किया था। पंचर लग जाने पर मैंने सायकिल खूब तेज चला दी। रास्ते में मुर्गियाँ कुड़कुड़ाती और फड़फड़ाती हुई इधर-उधर भागतीं और कुछ दीवारों पर जा बैठतीं। गाँव से बाहर निकला तो सूर्य प्रायः अस्त हो चुका था। खुली हवा थी। धुआँ, गर्द, शहर की पक्की दीवारों की तपन आदि का नाम तक न था। कुछ दूर तक मैंने खूब जोर से सायकिल चलाई, यहाँ तक कि मैं हाँफ गया। प्यास भी लगने लगी। खुले आकाश के नीचे जहाँ तक नज़र जाती थी, खेत ही खेत फैले हुए थे। कहीं-कहीं बबूल के पेड़ झुंडों में एक दूसरे के पास खड़े हुए ऐसे दिखाई देते थे जैसे कानाफूसी कर रहे हों। खेतों की पगडिन्डयाँ कैंचियों की भाँति एक दूसरे को काटती हुई दूर तक चली गई थीं। दूर क्षितिज में कोई व्यक्ति घोड़े पर सवार उसे सरपट दौड़ाये चला जा रहा था, इतनी तेजी से जैसे न तो उसका घोड़ा कभी थकेगा और न जमीन ही कहीं पर खत्म होगी। बस इसी तीव्र गति से अनन्त काल तक दौड़ता चला जायगा और वह स्वयं इसी जोश और उत्साह से रहती दुनिया तक इस पर बैठा रहेगा। ऊँचे उड़ने वाले पक्षियों की टुकड़ियाँ आकाश की ओर उड़ती चली गईं, यहाँ तक कि वे पक्षी बिलकुल छोटे-छोटे बिन्दु-मात्र दिखाई पड़ने लगे। आकाश का विस्तार असीम था और पक्षियों की उड़ान शक्ति का कोई अन्दाज़ न था। वायु के झोंके चलने लगे और मीलों तक फैले हुए खेतों में उगे हुए पौदे एक रुख को झुके जाते थे, मानो कोई दैवी राग सुनकर एक साथ सिर धुन रहे हों। वास्तव में वह कोई स्वर्गीय राग ही था जिसे सुनकर सवार ने मुँहजोर घोड़े को सरपट दौड़ा दिया, पक्षी तीर की सी तेजी के साथ आकाश मंडल में उड़ने लगे और खेतों में पौदे मस्ती में आकर झूमने लगे।

मौसम अति सुन्दर था। मैंने रूँ-रूँ करते हुये रहट के पास सायकिल रोक ली, नहाने को जी चाह रहा था, अतः मैं कपड़े उतार कर ओलू

(कुएँ का चौबच्चा) में जा घुसा। बैलों की आँखों पर पट्टियाँ बँधी हुई थीं। वे सिर हिलाते और मुँह से झाग उड़ाते तेज-तेज क़दम उठाने लगे। रहट गीत गाने लगा और पानी इस तेजी से बाहर गिरने लगा जैसे कुएँ में पड़े-पड़े उसका दम घुट गया हो। ठंडा पानी मेरे झुलसे हुए शरीर पर गिरा तो मैंने अत्यन्त तरावट का अनुभव किया और सँभल कर झाल के नीचे ही बैठ गया। पानी, मलमल की सी बारीक चादर में से आकाश, धरती, पेड़ पौदे, कुलेलें करते हुए बछड़े, कलाबाजियाँ लगाते हुए मेंढक, सब मेरी खुशी में बराबर का भाग ले रहे थे।

मैं बहुत देर तक नहाता रहा। बड़ी-बड़ी मूँछों वाला किसान, जिसकी ढीली-ढाली पगड़ी में से कानों के पीछे चिकने पट्टे दिखाई पड़ रहे थे, हुक्का गुड़गुड़ाता हुआ उधर आ निकला। मुझे खुश देखकर मुस्कराने लगा। ओलू में से निकलने को मन न चाहता था, लेकिन सूर्यास्त हो चुका था और क्षितिज के निकट धुएँ की एक काली लकीर सी खिंच गई थी। अतएव मैं ओलू में से निकला और गीले शरीर पर कपड़े पहन कर फिर अपनी यात्रा पर चल पड़ा।

अब मैंने सोचा कि रास्ते में किसी जगह पर भी नहीं रुकूँगा। मैंने सायकिल पहले से भी तेज चला दी। पक्की सड़क का लगभग आठ मील का रास्ता रह गया था और खेतों का रास्ता अभी क़रीब-क़रीब इतना ही था। मेरी सायकिल हवा से बातें करने लगी। आधे रास्ते पर एक गाँव था, जिसे क़िला काहनसिंह कहते थे। अच्छा ख़ासा बड़ा गाँव था। पाँच-सात पक्के मकान भी थे। एक छोटा स्कूल भी था। पहले सोचा कि आज की रात इसी गाँव ही में बिता दूँ, लेकिन फिर घर का ख्याल आया। हमारे घर के आँगन में एक छोटा-सा कुँआँ था, जिस पर एक लोहे का डोल पड़ा रहता था। सोचा कुएँ पर डोल भर-भर कर नहाऊँगा। माँ कई-कई तहों वाले पराठे पकायेगी और मैं मजे ले लेकर खाऊँगा। यदि रास्ते में कोई खास रुकावट पैदा न हो तो मेरे

लिए घर पहुँचना असम्भव न था। इसलिये मैंने फिर जोर-जोर से पैडिल चलाना शुरू किया। जब मैं बिजली की तरह गाँव में से होकर गुज़रा तो गाँव के नंग-धड़ङ्ग फूले हुए पेटों वाले बच्चे "ओये-ओये" का शोर मचाते मेरे पीछे भागे। कूड़ों के ढेर सूँघते हुए काले और मटियाले कुत्ते भी दुमें हिलाते हुए मेरे पीछे-पीछे हो लिए। कुत्तों को बेतरह भूँकते देखकर मसजिद के कच्चे चबूतरे पर बैठे हुए एक नौजवान ने गुस्से में आकर हुक्के की नली खींच मारी। गाँव से बाहर एक मुर्दा बैल पर झपट्टे मारने वाले बड़े-बड़े गिद्ध शोर-गुल सुनकर चौंक पड़े और अपने लम्बे-लम्बे पर फड़फड़ाते और उचकते हुए ज़रा परे हट गये। उधर मैं किसी भागे हुए डाकू की तरह बड़ी तेजी से चला जा रहा था। यहाँ तक कि लड़के और कुत्ते बहुत पीछे रह गये और उनका शोर भी मद्धिम पड़ गया।

आगे सुनसान सड़क के दोनों किनारों पर पास-पास खड़े हुए शीशम के पेड़ों का सिलसिला शुरू हो गया। उनकी नीचे गिरी हुई सूखी पत्तियाँ मेरी साइकिल के पहियों के नीचे चर्रमर्र करती हुई घूमने लगीं। गाँव के बच्चों की तरह वे दूर तक तेज़ी से चक्कर खाती हुई मेरा पीछा करतीं और फिर जैसे दम फूल जाने पर वे हँसकर एक जगह बैठकर रह जातीं।

अब एक तारा भी दिखाई देने लगा था और स्वच्छ आकाश पर पीला-पीला चाँद किसी तालाब में तैरती हुई काँसे की थाली की भाँति दिखाई पड़ता।

दायें-बायें दूर तक ऊबड़-खाबड़ भूमि चली गई थी। काँटेदार झाड़ियों के सिलसिले शुरू हो गये थे। यहाँ पर भेड़ियों का भी खतरा था। अगर भेड़ियों का कोई गोल आ घेरे तो फिर! मैं भयभीत होकर सायकिल और भी तेजी के साथ दौड़ाने लगा। धीरे-धीरे सूर्यास्त के बाद दिन की रही-सही रोशनी भी खत्म हो गई। सिर्फ चाँद की फीकी

चाँदनी छिटकी हुई थी। शीशम के पेड़ों के कारण सड़क पर और भी अधिक गहरा अंधकार छा गया था। मैंने इससे पहले केवल दो बार यह सफ़र अकेला किया था, लेकिन दोनों बार दिन ही में सफ़र ख़त्म हो गया था। मेरा ख्याल था कि दो-ढाई मील पर काकूशाह के मक़बरे के पास से सड़क छोड़कर अपने गाँव की तरफ़ घूम जाऊँगा। दिल को कुछ संतोष हो चला था कि कम से कम सड़क का सफ़र तो ख़त्म होने वाला था।

मैं अंधाधुंध चला जा रहा था कि आगे सड़क रुकी हुई मालूम हुई जैसे नये सिरे से बनाई जा रही हो। मैंने सायकिल धीमी कर दी। नज़दीक पहुँच कर पता चला कि सचमुच सड़क बन रही है। सारी सड़क उखड़ी पड़ी थी। लाचार हो सायकिल से उतरकर ऊबड़-खाबड़ ज़मीन पर पैदल चलना पड़ा। यह एक नई आफ़त आ पड़ी थी।

रास्ते में सड़क के किनारे-किनारे पठान मज़दूरों की झोपड़ियाँ बनी हुई थीं। हम लोग उन्हें 'राशे' कहा करते थे। यह 'राशे' खूब मोटे-ताजे और भयानक सूरत वाले होते थे। मैंने सुना था कि यह लोग बच्चों को बोरियों में बन्द करके काबुल ले जाते हैं और आठ-दस रुपये में बेच डालते हैं। मैं मन ही मन भयभीत भी था, लेकिन ज़ाहिर में बड़े हौसले के साथ बढ़ता चला गया। आग के लपकते हुए शोलों की काँपती हुई रोशनी में 'राशों' के भयानक चेहरे, उलझे हुए बाल और चमकती हुई सुर्ख आँखें साफ़ दिखाई पड़ रही थीं।

बड़े मुश्किल के यह रास्ता भी ख़त्म हुआ और मैं फिर सायकिल पर सवार हो गया। रात भीग चुकी थी। इस समय तक पहले तो मुझे गाँव पहुँच जाना चाहिए था या गाँव के पास ही होना चाहिए था। अब सिवाय चलने के और कोई रास्ता न था। काकूशाह के मक़बरे के पास पहुँच कर मैं पगडंडी पर हो लिया।

तङ्ग रास्ता साफ़ दिखाई नहीं देता था, इसलिए मुझे सायकिल से उतरना पड़ा। खेतों में पानी था। मुझे एक निशानी याद थी। फ़र्लाङ्ग के क़रीब एक पुराना रहट था जो आजकल सुनसान पड़ा था। मैंने पहले उसी का रुख़ किया। जब पानी से बचता हुआ कुएँ तक पहुँचा तो देखा कि आगे पानी और भी अधिक दूर तक फैला हुआ है। पगडंडी पानी में ही गुम हो गई थी। मैं पानी से बचता हुआ सूखे रास्ते से चलता गया। दो-ढाई फ़र्लाङ्ग चलने के बाद पानी कम हुआ और मैं अयाँजन गाँव की तरफ़ चल दिया। लेकिन बहुत दूर निकल जाने के बाद भी गाँव का नाम निशान तक दिखाई न दिया।

धुँधली चाँदनी में मैं चलता ही गया। अब मुझे संदेह हुआ कि कहीं मैं ग़लत रास्ते पर तो नहीं जा रहा हूँ। हर तरफ़ निगाह दौड़ाई। खेतों और वृक्षों के सिवा कुछ दिखाई न देता था। कुछ खेतों में कोई फ़सल भी खड़ी नज़र आ जाती थी। मैं कुछ परेशान सा हो गया, यों ही अन्धा-धुन्ध चलता गया। एकाएक मुझे दूर से गर्द उड़ती हुई दिखाई दी। मैं ठिठक कर रुक गया।

थोड़ी देर बाद मालूम हुआ कि कोई छैला-बाँका साँडनी सवार चला जा रहा है। सुनसान जगह, फीकी चाँदनी, झींगुरों का शोर...पहले ख़याल आया कि इसे आवाज़ देकर रास्ता पूछ लूँ, लेकिन उसकी वेश-भूषा कुछ ऐसी थी कि मैंने उसे बुलाना उचित न समझा, बल्कि सोच में पड़ गया कि न जाने यह कौन है, काश! वह मुझे देखे बिना आगे निकल जाय। मैं सिमटकर कीकर के एक छोटे से पेड़ के नीचे जा खड़ा हुआ, लेकिन उस पेड़ की छाया में भी आदमी किसी की नज़रों से ओझल नहीं रह सकता था।...... उसके हाथ में एक लम्बे हत्थे की कुल्हाड़ी देखकर और भी दम सूख गया।

वह अपने रास्ते पर चला जा रहा था। मेरी तबीयत कुछ सँभलने लगी।... एकाएक उसने रुख़ बदला और मेरी ओर मुड़ा। मैंने सोचा

शायद वह इस रास्ते से सीधा आगे को चला जायगा; अतएव मैं जरा पहलू बदलकर खड़ा होगया। लेकिन वह सीधा मेरी ओर आया और पास पहुँच कर उसने साँडिनी रोक ली। मैंने उसकी ओर देखा। ऐसा लगता था जैसे ऊँट के ऊपर एक और ऊँट बैठा हुआ है। वह एक लम्बा-तड़ंगा इकहरे शरीर का मजबूत सिक्ख था। अंडाकार चेहरा, दाढ़ी छोटी-छोटी और छिदरी सी, भवें घनी, नाक जैसे बतख की चोंच, नथुने फूले हुए, आँखे अंदर को धँसी हुई किन्तु चमकदार, ठोड़ी ठीक बीच में से दबी हुई, कानों में सुनहरे बाले और गले में सोने का चमकता हुआ कंठा।

वह थोड़ी देर तक मुँह खोले मेरी ओर देखता रहा। फिर उसने बैठी हुई आवाज में पूछा—"कहो भाई लौंडे, कौन हो तुम?"

मेरा मन डूब गया। "जी, मैं गाव को जा रहा हूँ।"

"कहाँ से आ रहे हो?"

"शहर से।"

"शहर से आ रहे हो?"

"जी...शहर से।"

"क्या करते हो वहाँ?"

"जी, पढ़ता हूँ"

"क्या पढ़ते हो?"

मैं इस सवाल पर चकराया—"किताबे पढ़ता हूँ जी!"

उसने सायकिल के पीछे बँधी हुई गठरी को कुल्हाड़ी के हत्थे से खोदते हुये पूछा—"इसमें क्या है?"

"जी, इसमें मैले कपड़े हैं......क्या जी, खोलकर दिखाऊँ?"

वह हँस पड़ा—"रहने दो।"

मेरी जान में जान आई। उसने साँडिनी की नकेल खींची और चलने ही लगा था कि फिर रुक गया—"कहाँ जा रहे हो?"

"जी, अपने गाँव को।"

"कौन गाँव?"

"जी, अकालगढ़।"

"अकालगढ़?"

"जी!"

वह थोड़ा रुका, फिर अपने कल्लों के नीचे ज़बान फेरते हुए बोला—"इधर आओ।"

मैं डरते-डरते उसके पास गया।

उसने कहा—"सायकिल नीचे रख दो।"

मैंने सायकिल जमीन पर डाल दी। उसने हाथ बढ़ा कर कहा—"मेरा हाथ पकड़ कर मेरे पीछे बैठ जाओ।"

मैं डरा, लेकिन इसके सिवा कोई रास्ता न था। बड़ी मुश्किल से उसके पीछे अड़कर बैठ गया। उसने ऊपर बैठे-बैठे कुल्हाड़ी में सायकिल अड़ाकर ऊपर खींच ली, नकेल को झटका दिया और साँडिनी अपनी बेढंगी चाल से रवाना हो गई।

मैंने उसकी पसीने में तर गरदन पर नजर जमा दी। उसके सर के बाल इतने खींचकर बँधे हुए थे कि उसकी गुद्दी पर बालों की जड़ों का माँस ऊपर उभड़ आया था, जैसे नन्हीं-नन्हीं फुन्सियाँ निकल आई हो। उसने फिर अपनी बैठी हुई भारी आवाज में पूछा—"तुम्हें नहीं मालूम कि तुम्हारा गाँव किधर को है, क्या तुम समझते हो कि अब तुम अपने गाँव ही को जा रहे थे?"

"जी, मैं रास्ता भूल गया था। मैं पहले शहर से सिर्फ दो बार ही आया हूँ, लेकिन दिन ही में घर पहुँच जाता था। लेकिन आज रात हो गई और फिर रास्ते में पानी भी भरा था, इसलिये मुझे रास्ते का पता ही नहीं चला।"

इस पर उसने अपने निर्भीक स्वर में ठहाका लगाया। फिर बोला—"लड़के, अगर तुम रात भर भी इस तरह चलते रहते तो भी अपने गाँव न पहुँच पाते......। तुम्हारे जैसे छोटे लड़कों को रात के वक्त सुनसान जगहों में कभी भी घूमना न चाहिए।"

इसके बाद धीरे-धीरे वह खूब मजे की बातें करने लगा। पहले तो मैं मन ही मन बहुत डरा। मैंने सुना था कि कुछ लोग लड़कों के सिरों में से मोमियायी निकाल लिया करते हैं, सिर मूँड़कर चोटी में एक कील ठोंक देते हैं और टाँगें बाँधकर पेड़ से लटकाकर सिर के नीचे आग जलाकर एक कढ़ाई रख देते हैं। आग की गर्मी से सिर की चर्बी पिघल जाती है और मोमियायी कील के सिरे से बूँद बूँद करके कढ़ाई में टपकती रहती है। यहाँ तक कि सिर की सारी मोमियायी निकल जाती है और लड़का मर जाता है......। साँडिनी सवार की आकृति तो अवश्य ही बड़ी भयानक थी, किन्तु उसकी बातों से किसी प्रकार के खतरे की गंध न आती थी। वह बड़ा हँसमुख, खुश मिजाज़ आदमी था।

कहने लगा कि तुम्हारे घर में किसी ने दिन के समय कहानी कही होगी, तभी तो तुम रास्ता भूल गये।

मैं साँडिनी के कोहान से फिसला जाता था, इसलिए मैं उसकी कमर से लिपट गया। उसकी गाढ़े की कमीज़ पसीने में तर हो रही थी। बग़लों से हलकी-हलकी गंध भी आ रही थी। बालों के घने बाल पसीने में तर होकर चिपक गये थे। उसके जूड़े पर बँधी हुई जाली के नीचे लटकते हुए फुँदने मेरे नथुनों और आँखों में घुसे जाते थे। मुझे पहले कभी ऊँट की सवारी करने का संयोग न हुआ था। इतनी कष्टदायक सवारी थी कि बदन का जोड़-जोड़ दुखने लगा, और वह मेरी तकलीफ से बेखबर अंधाधुँध साँडिनी दौड़ाये चला जा रहा था। वह बड़ा बातूनी आदमी था। उसकी भारी-भरकम आवाज़ और भरपूर ठहाकों से वायुमंडल गूँज रहा था।

हम एक ऐसे पेड़ के पास से गुज़रे, जिस पर बयों के घोंसले लटक रहे थे। एक घोंसला तो मेरे इतने क़रीब था कि मैंने उसे खसोट लेने के लिए हाथ बढ़ा दिया। लेकिन घोंसला मेरी पहुँच से बाहर रहा। वह कहने लगा—"बया बड़ा समझदार पक्षी होता है। वह अपना घोंसला बड़ी मेहनत और कारीगरी से बनाता है। दुनिया में कोई पक्षी इतना सुन्दर घोंसला नहीं बना सकता। तुमने बाँसों पर लटकते हुए घोंसले नहीं देखे? बेहद खूबसूरत होते हैं—हवा में लहराती हुई टोपियाँ सी। बये फुदक कर कभी अन्दर चले जाते हैं, कभी बाहर आ जाते हैं। वे एक प्रकार का घोंसला और भी बनाते हैं। यानी एक तो अपने रहने के लिए नर्म तिनकों और पत्तों से जिनमें एक तरफ़ को अन्दर जाने का रास्ता होता है, और दूसरा घोंसला झूले की शकल का होता है। जब बादल घिर-घिर कर आते हैं और हल्की-हल्की फ़ुहार पड़ती है, ठंढी हवा के झोंके चलते हैं तो बये चहचहाते हुए इन पगोडे जैसे घोंसलों पर पंजे जमाये झूला झूलते हैं।"

मुझे उसकी बातें बहुत दिलचस्प मालूम हुईं। मैंने कहा—"सुना है बये अपने घोंसले में रोशनी करने के लिए जुगनू पकड़ कर घोंसले के अन्दर तिनकों में उड़स देते हैं।"

उसने सिर हिलाकर मुझे विश्वास दिलाते हुए कहा—"हाँ, यह ठीक है, यह बहुत ही सियाना पक्षी है।"

इस पर मैंने उसे बंदर और बये की कहानी सुनाई जो मैंने तीसरी कक्षा में उर्दू की किताब में पढ़ी थी। उसने बच्चों की तरह ध्यान लगाकर वह कहानी सुनी। और जब मैंने कहानी का नतीजा बताया तो वह बहुत खुश हुआ।

इस तरह बंदर से दूसरे जानवरों की चर्चा चल पड़ी। मैंने बताया कि जब मैं सड़क पर सायकिल चलाता हुआ चला आ रहा था तो किस

तरह मुझे डर लगा कि कहीं किसी झाड़ी में से कोई भेड़िया न निकल आये।

इस पर वह फिर अपने निर्भीक स्वर में हँसा—"नहीं, डरने कि कोई बात नहीं, इस इलाके में भेड़िये बहुत कम हैं, फिर भी कभी-कभी दिखाई दे जाते हैं।" फिर उसने बताया कि शेखूपुरा के इलाके में आबादियों से परे खूँख्वार भेड़िये गोल बनाकर घूमा करते हैं और क़द में गधे से कम नहीं होते...।

मैं बहुत चकित हुआ। मैंने पूछा—"अगर कोई भूला-भटका मुसाफ़िर उधर जा निकलता होगा तो भेड़िये उसकी तिक्का बोटी कर डालते होंगे?"

उसने यह बड़ा मुँह फैलाकर कहा—"हाँ,...एक वार एक आदमी उधर से जा रहा था...मैंने यह बात किसी से सुनी थी...।"

"क्या वह कोई बड़ा ताक़तवर आदमी था?"

"हाँ वह बहुत तगड़ा आदमी था...। दोपहर के समय रास्ता चलते-चलते वह थक गया तो एक पेड़ के नीचे आराम करने के लिये बैठ गया। एक झाड़न में रोटी बँधी थी। उसने रोटी खाई और फिर वह पेड़ के तने से टेक लगाकर थोड़ी देर के लिये ऊँघ गया। फिर एकाएक उसकी आँख खुली तो ऊसने कुछ अजीब-अजीब सी आवाजें सुनी और उसे झाड़यों में जानवरों की थूथनियाँ दिखाई पड़ीं...।"

मैंने कहा—"वे भेड़िये होंगे। है न?"

"हाँ, तुम जानते ही हो कि भेड़िये का मुँह बहुत बड़ा होता है। उसके जबड़े खून की तरह सुर्ख होते हैं। भेड़िया बहुत ही मक्कार जानवर है...।"

"फिर क्या हुआ?" मैंने उत्सुकता से पूछा।

"बस भई, वह आदमी उठ खड़ा हुआ। उसने देखा कि इर्द-गिर्द की झाड़ियों में से बहुत से भेड़िये लम्बी-लम्बी जबानें निकाले चोर निगाहों

से उसको घूर रहे हैं...उसे महसूस हुआ कि अब वह बचकर नहीं निकल सकता। उसने पेड़ की तरफ़ देखा तो उसका तना इतना चिकना था कि उस पर फुर्ती के चढ़ना असंभव था। वह यह नहीं जानता था कि वह उस पर चढ़ने की कोशिश करेगा तो भेड़िये उस पर झपट पड़ेंगे... क्षण प्रतिक्षण भेड़िये उसके निकट चले आ रहे थे। वे उसे चारों तरफ़ से घेरे हुए थे और धीरे-धीरे वे अपने घेरे को तंग किये जा रहे थे। समय बहुत कम था, उसने इधर-उधर दृष्टि दौड़ाई, न कोई साथी, न हथियार...संयोगवश पास ही दो-चार ईंटें दिखाई पड़ीं। मालूम होता था कि कभी किसी आदमी ने उस जगह ईंटों का चूल्हा बनाकर रोटी बनाई थी...उसने अपनी खद्दर की मोटी चादर को दोहरा करके फुरती से एक ईंट उसके अन्दर रखकर बाँध दी। अभी उसके सिरे हाथों में थामे ही थे कि सब भेड़िये एकदम उस पर पिल पड़े। उसने चादर में बँधी हुई ईंटों को ज़ोर-ज़ोर से घुमाना शुरू कर दिया। जो भेड़िया उसके पास आता उसकी थूथनी पर इस ज़ोर से ईंट लगती कि वह घबरा कर पीछे हट जाता। भेड़िये बढ़-बढ़कर हमले करते रहे। वह भी बड़ी फुर्ती और तेजी के साथ ईंट घुमाता रहा। इस तरह क़रीब आध घन्टा तक वह भेड़िये के हमलों को असफल बनाता रहा...यहाँ तक कि वहाँ कुछ और राहगीर भी आ पहुँचे। उन्होंने दूर ही से जोर-जोर से चिल्लाना शुरू कर दिया। भेड़िये यह शोर सुनकर भाग निकले और उस आदमी की जान बच गई।"

यह रोमाँचकारी कहानी सुनाकर वह साँडिनी को गालियाँ देने लगा और मैं अपने विचारों में खो गया।...पीले चाँद की फीकी चाँदनी में दूर-देर तक काले-काले पेड़ फैले हुए दिखाई दे रहे थे। कहीं बहुत दूर से किसी के गाने की उड़ती हुई तान सुनाई देने लगी। साँडनी अपनी बेढंगी चाल से लपकी हुई चली जा रही थी। हम एक ऊँचे पेड़ के पास से होकर गुज़रे जिस पर सूखी लौकियाँ लटक रही थीं। उसने कुल्हाड़ी

के हत्थे से एक तौरी को ठुकराकर कहा—"देखो यह है तोंबी ! बचपन में जब हम लोग नहर पर नहाने जाया करते थे तो बस इस तरह की तोंबी बगल में लेकर मजे से बोतल के काग की तरह तैरा करते थे।"

लेकिन मेरा ध्यान अभी तक भेड़ियों की ओर लगा हुआ था—"क्या भेड़िये बड़े आदमी पर भी हमला कर देते हैं ?"—मैंने पूछा।

उसने दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा—"अगर भेड़िये गिनती में अधिक हों और कोई अकेला-दुकेला आदमी मिल जाय तो वे उस पर हमला कर दिया करते हैं। लेकिन आमतौर से आदमियों से डरते हैं...लो मैं तुम्हें एक मजेदार क़िस्सा सुनाता हूँ...यह जगबीती नहीं, आपबीती है...क़रीब चार बरस पहले की बात है—मैं अपने ननिहाल को जा रहा था। रास्ते में जंगल पड़ता था, लेकिन मुझे परवाह न थी। मेरे हाथ में एक बड़ी लम्बी लाठी थी जिसके नीचे लोहे की यह मोटी शाम लगी हुई थी। अगर उस लाठी की एक भी ठिकाने की चोट किसी भेड़िये के सिर पर पड़ जाती तो वह वहीं ढेर हो जाता। खैर दोपहर का समय था। अभी मैं जंगल में थोड़ी ही दूर गया था कि मैंने चौंककर देखा कि मेरे दाहिने हाथ की तरफ कोई जानवर झाड़ियों में छिपा हुआ है। मैंने जल्दी से चारों तरफ नज़र दौड़ाई तो देखा की बायें हाथ की तरफ झाड़ी के पीछे एक भेड़िया खड़ा है...मैं चौकन्ना होकर रास्ता तय करने लगा। जिस जगह झाड़ियाँ ज़रा कम होतीं, मैं देखता कि मेरे दायें-बायें दो भेड़िये तीस-तीस चालीस-चालीस क़दम का फ़ासला देकर चले जा रहे हैं। मैंने लठ उठाकर कन्धे पर रख लिया और उन पर निगाह रखता हुआ बढ़ता चला गया। कभी वे मेरे क़रीब आ जाते और कभी फिर दूर चले जाते। जब हम घनी झाड़ियों में से होकर गुज़रते तो वे नज़रों से ओझल हो जाते। मुझे उस वक्त खतरा महसूस होता था कि कहीं हमला न कर दें। और हाँ...एक अजीब बात देखी, कभी दायें हाथ वाला भेड़िया बायें हाथ की तरफ चला आता और बायें हाथ वाला दायें हाथ की तरफ

७

चला/ जाता। इस तरह वे रास्ते भर अदल-बदल करते रहे। यहाँ तक कि जंगल खतम हो गया, लेकिन उनको मुझ पर हमला करने का साहस नहीं हुआ। जंगल खतम होने पर मैं तो आगे बढ़ गया और वे जंगल ही में रह गये।"

जब वह अपना क़िस्सा खतम कर चुका तो मैंने उस पर सवालों की बौछार कर दी। अब वह मुझे बहुत ही दिलचस्प आदमी मालूम होने लगा था। उसका बात करने का ढंग इतना दोस्ताना था और बातें ऐसी सनसनी पैदा करने वाली और मजे-मजे की करता था कि जी चाहता था, वह बातें ही करता चला जाय। मैंने आग्रह किया कि मुझे भेड़ियों की कोई और कहानी सुनाओ। वहाँ कहानियों की क्या कमी थी। उसने कहा—"अब मैं तुम्हें अपने परनाना का छोटा-सा क़िस्सा सुनाता हूँ—परनाना यानी मेरे नाना के बाप अपने समय में बहुत ही शक्तिशाली आदमी समझे जाते थे। इलाके भर के लोग उनसे थर-थर काँपते थे। एक बार मेरे परनाना अपनी बुआ से मिलने के लिए गये। वहाँ उन्हें कुछ काम था। डेढ़-दो महीने वहाँ रहे। उन्हें खबर मिली कि घर पर मेरे नाना जो उस समय बच्चे ही थे, बीमार पड़ गये हैं। खबर मिलते ही परनाना तुरन्त अपने घर की तरफ रवाना हो गये। जल्दी में उन्होंने अपने हाथ में लाठी तक न ली। बीस-पच्चीस मील का फासला था। वे बड़ी तेज़ी से चलते थे। उस समय चूँकि अपने बेटे की बीमारी की चिंता थी, इसलिये उनकी यही कोशिश थी कि वे जल्दी से जल्दी अपने गाँव पहुँच जायें। आधा रास्ता तय करने के बाद वे एक गाँव के पास से होकर गुज़रे तो उस गाँव के लोगों ने उनसे कहा कि वे जिस रास्ते से जा रहे हैं, उधर से न जायें बल्कि दूसरे रास्ते से चले जायें। दूसरे रास्ते से बहुत बड़ा चक्कर पड़ता था, इसलिये परनाना उस रास्ते से जाना नहीं चाहते थे। उन्होंने कारण पूछा तो लोगों ने बताया कि इस रास्ते पर एक भेड़नी ने बच्चे दे रक्खे थे। जो आदमी उधर से गुजरता था, वह

उस पर हमला कर देती थी । चूँकि दूसरा रास्ता बहुत लम्बा था और उन्हें जल्दी पहुँचना था, इसलिए उन्होंने लोगों के कहने की परवाह न की और सीधे रास्ते से जाने की ही ठान ली। जब कोई एक डेढ़ मील आगे निकल गये तो देखा कि ठीक रास्ते के बीच में एक बिगड़ी हुई भेड़नी बैठी है । वे थोड़ा सा रास्ता काट कर गुज़रने लगे तो उसने उन पर हमला कर दिया । उन्होंने झपट कर उसके जबड़ों के पिछले हिस्से में, जहाँ दाँत नहीं होते, दोनों हाथ डाल कर उसका मुँह फाड़ देने की कोशिश की । उधर वह झुँझलाई । लेकिन ज़िन्दगी और मौत का सवाल था । उन्होंने खूँख्वार जानवर को टाँगों में जकड़कर जोर लगाया और उसका मुँह फाड़ डाला । वह बहुत तड़पी, पर उन्होंने एक बड़ी सी ईंट से उसका बिलकुल खातमा कर दिया...।"

मुझे इस क़िस्से में बहुत मजा आया । इस तरह हम बातें करते हुए चले जा रहे थे । पर अब मैं कुछ थक गया था, शरीर भी दुखने लगा था । दूर से पेड़ के झुँडों में से रोशनी छन-छनकर निकलती दिखाई दी । जब हम और करीब पहुँचे तो बाजों और ढोल का हल्का-हल्का शोर भी सुनाई देने लगा । इस वीराने में यह रौनक !......पूछने पर मालूम हुआ कि वहाँ मेला लगा हुआ है । यह बड़ा मेला सात दिन तक बराबर लगता था । बड़ी-बड़ी दूकानें और भाँति-भाँति के खेल तमाशे आते थे । मैंने पूछा—"क्या अब मेले में चलना होगा ?"

"हाँ, मुझे वहाँ एक...से मिलना है । और उस मेले का मतलब ही क्या है जहाँ मेल न हो सके......क्या समझे ?"

मैं कुछ न समझा ।

अब हम एक चौड़े रेतीले रास्ते पर हो लिए । उस रास्ते के दोनों किनारे ऊपर को उठे हुये थे । और उन किनारों पर बबूल के ऊँचे-ऊँचे पेड़ मेले के स्थान तक चले गये थे ।

जब हम क़रीब पहुँचे तो काले-काले पेड़ों के तनों के बीच में गैस के हंडे और खीमे दिखाई पड़ने लगे। जैसे-जैसे हम आगे बढ़ते गये, वैसे-वैसे ज्यादा रौनक़ दिखाई देने लगी। हलवाइयों, बिसातियों, कुम्हारों, खिलौने और शर्बत-फ़ालूदे वालों की दूकानें, एक तरफ़ ऊपर नीचे घूमने वाले पगोडे और दूसरी ओर हाथों पर नाम या फूल आदि गोदने वालों के अड्डे, घोड़े, गधे, ताँगे, ठेले, बैल और ऊँट भी नजर आने लगे। उस समय खूब धमा-धमी हो रही थी। पुरुषों और स्त्रियों के झुंड के झुंड घूम रहे थे। रोशनी और गाने-बजाने के कारण जंगल में मंगल हो रहा था।

मेले में पहुँच कर एक पेड़ के नीचे मेरे साथी ने साँडिनी को ज़मीन पर बैठा दिया। मैं उतरा तो मेरी टाँगें सन्न हो गई थीं। मैं खड़ा न रह सका, इसलिए तुरंत जमीन ही पर बैठ गया। वह मेरी तरफ़ देखकर दाँत निकालकर हँसा—"क्यों, बस थक गये ?"

मैं कुछ झेंप सा गया, लेकिन वास्तव में उस समय मेरे शरीर के जोड़-जोड़ में पीड़ा हो रही थी।

उसने पूछा—"तुम्हें भूक तो लगी होगी खूब जोर की ?"

मेरे एक़रार पर वह मुझे अपने साथ लेकर हलवाई की सबसे बड़ी दूकान पर पहुँचा। कढ़ाव आग पर चढ़े हुए थे। गर्म-गर्म जलेबियाँ उतर रही थीं। पहले तो उसने मुझे गर्म-गर्म जलेबियाँ दिलवाईं। मुझे भूक भी लगी थी। उस दिन जलेबियाँ खाने में बड़ा आनन्द आया। उसने मेरी पीठ पर थपकी देकर कहा—"बस, अब तुम जो जी चाहे खाओ खूब पेट भर कर, समझे ?"

मुझे दूकान पर छोड़कर वह स्वयं एक तरफ़ को चल दिया। मैंने जो जी चाहा खाया। जब खा चुका तो हलवाई के नौजवान लड़के ने दाम माँगे। मैं बड़ा घबराया। मैंने इधर-उधर देखा। मेरा साथी कहीं दिखाई न पड़ता था। मुझे प्यास भी लग रही थी, लेकिन अब मैं खूब

फँसा। मैंने हलवाई से कह दिया कि मेरे पास दाम नहीं है। इस पर नौजवान हलवाई ने कहा—"कुर्सी पर बैठे रहो। जब तक पैसे नहीं दोगे, यहाँ से हरगिज़ नहीं जाने दूँगा।" मैं बहुत परेशान हुआ। थोड़ी देर बाद हलवाई फिर बकवास करने लगा। मैं डरा कि कहीं दो-चार चपत ही न जमा दे......। इतने में बत्तख की चोंच की सी नाक वाला मेरा साथी भी लम्बे-लम्बे डग भरता आ पहुँचा। उसे आते देखकर मेरी जान में जान आई। उस समय हलवाई का लड़का मुझे खरी-खरी सुना रहा था। मेरे साथी ने आते ही बड़ी ज़ोरदार आवाज़ में उसे ललकार कर कहा—"अबे ओ हरामी के पिल्ले!......क्या कहता है हमारे छोकरे को?"

फिर उसने आगे बढ़कर उसका टेटुआ दबा लिया और बोला—"बेटा मेरा नाम जस्सासिंह......।"

शोर सुनकर लड़के का बाप हाथ जोड़कर दूकान के नीचे उतर आया और जस्सासिंह के सामने रोनी सूरत बनाकर खड़ा हो गया।

"लाला जानते हो मैं कौन हूँ......?"

लाला हाँफ रहा था, मटके की तरह फूला हुआ उसका पेट नीचे-ऊपर हो रहा था—"जी, अन्नदाता, जानता हूँ।"

जस्सासिंह ने उसके जवान लड़के को गर्दन से पकड़ कर इस जोर से पीछे ढकेल दिया कि वह गर्म-गर्म घी के कढ़ाव में गिरने से बाल-बाल बचा—"तो फिर अपने इस लौंडे को भी बता दो। कहीं मुझे इसका भुरकुस न निकालना पड़े......क्यों बे हरामी, तुझे इतनी हिम्मत कैसे हुई कि तू हमारे लड़के पर पैसे लेने के लिए चढ़ दौड़ा......।" वह लाल आँखें निकाले लाला की तरफ़ बढ़ रहा था। इधर-उधर के लोग भी जमा हो गये। लाला ने कद्दू सा सिर हिलाते हुए कहा—"जी, मैंने पैसे नहीं माँगे......अजी, मुझे तो मालूम भी नहीं हुआ कि इस हरामज़ादे ने कब पैसे माँगने शुरू कर दिये?"

जस्सासिंह ने कहा—"खून पी लूँगा खून...यहाँ अंगरेज़ का राज नहीं, मेरा राज है...कहो तो दूकान बराबर कर दूँ सुबह तक।"

इतने में एक और लम्बा-तगड़ा मुसलमान नौजवान आगे बढ़ा—"अबे जाने दे यार, ग़लती हो गई बेचारे से।"

जस्सासिंह ने घूमकर देखा तो उसकी बाछें खिल गईं। दोनों लिपट गये। शायद बहुत दिनों बाद दोनों दोस्तों का मिलाप हुआ था। नवागन्तुक भी खूँख्वार गिद्ध के समान दिखाई पड़ता था।

हलवाई को इतनी चेतावनी काफ़ी समझी गई। इसके बाद हम लोग मेले में घूमने लगे। वे दोनों बहुत देर तक मुक़दमों, पुलीस और थाने आदि की बातें करते रहे।

मेले से ज़रा हटकर एक जगह खुले खेत में अलगोजे बज रहे थे। लोग एक बड़े घेरे में बैठे थे। हुक्के का दौर चल रहा था। कुछ लोग लाठियाँ बग़लों में दबाये उनके सहारे खड़े थे। कुछ लोग लाठियों पर ठुड्डियाँ टिकाये उचके खड़े थे। अलगोजे बजाने वाले के पास एक गबरू हाथ कान पर धरे बड़े मज़े में पूरन भक्त का क़िस्सा गा-गाकर सुना रहा था। सभी महफ़िल पर सन्नाटा छाया हुआ था। सिर्फ़ गाने वाले की दर्द में डूब-डूबकर उभर आने वाली आवाज़ हवा में गूँज रही थी। जब गानेवाला एक बोल कहकर चुप हो जाता तो अलगोज़ों की लहकती हुई आकर्षक आवाज़ दो बोलों के बीच के अंतर को और भी मनोहर बना देती।

एक जगह बहुत भीड़ थी, खूब हुल्लड़ मचा हुआ था। जब हम पास पहुँचे तो देखा कि लोगों ने एक रंगीन मिज़ाज बूढ़े को घेरे में ले रक्खा है। बूढ़े की सफेद दाढ़ी और लम्बे-लम्बे पट्टे हवा में उड़ रहे थे। पहले वह एक लम्बी-सी हाँक लगा कर बड़ी लय के साथ कोई नंगी-सी बोली सुनाता। लोग ठहाके लगाते और वह हाथ उठाकर चुटकियाँ बजाता और कोहनियाँ हिलाते हुये उछल-उछलकर नाचता था। उसके मुँह में एक दाँत तक न था, लेकिन आँखों में बला की चमक थी। फिर उसने

बड़ी चंचल नज़रों से दर्शकों की ओर देखा और उच्च-स्वर में पुकार कर बोला—

"ओय—नाले बाबा खीर खा गया।
नाले दे गया दुअन्नी खोटी।
हो हो!"

"बुल्ले ओय बाबया" चारों ओर से प्रशंसा की आवाजें उठने लगीं।

हम इसी तरह घूमते फिरते जा रहे थे। जस्सासिंह और उसका मित्र बाजों की भाँति आगे को झुक-झुककर तालियाँ बजाते हुए ठहाके लगा रहे थे। मैं उसकी लम्बी-लम्बी टाँगों पर नज़र रखता हुआ उनके साथ-साथ था। इतने में जस्सासिंह ने मुझे संबोधित कर कहा—

"काका...क्या नाम है तुम्हारा...!"

मैं 'बकरीसिंह' कहने ही को था कि एकाएक रुक गया। नहीं तो मेरा खूब मज़ाक उड़ाया जाता। मैंने सँभलकर अपना असली नाम बता दिया।

"तुमने कभी ऊँटनी का दूध पिया है...आहा! बहुत मीठा होता है। आओ तुम्हें ऐसा दूध पिलायें कि बस याद ही किया करो।"

हम मेले से जरा परे हट आये। एक जगह बहुत-सी ऊँटनियाँ जमा हुई थीं। इधर-उधर खुले मैदान में चारपाइयाँ बिछी हुई थीं और उन पर मैले-कुचैले कपड़े पहने हुए आदमी बैठे दिखाई दे रहे थे। रोशनी की कमी के कारण उनके चेहरे साफ़ तौर पर दिखाई न पड़ते थे। हम भी एक चारपाई पर जा बैठे। जस्सासिंह ने अपने सामने दूध दुहाया और फिर तीन टंडें (मिट्टी का छोटा डोल) दूध की भरी हुई लाया। वे दोनों तो अपनी-अपनी टंडें एक ही साँस में चढ़ा गये लेकिन मैं बहुत प्यासा होते हुए भी तीन-साढ़े तीन सेर की टंड न पी सका। अतएव जस्सासिंह मेरी टंड का दूध भी पी गया। वहाँ से उठकर हम फिर मेले

में वापस चले आये। हम बहुत देर तक घूम चुके थे। आस-पास के देहात से आई हुई स्त्रियाँ भी वापस जा रही थीं। यद्यपि अब रौनक काफ़ी थी, लेकिन जहाँ तक स्त्रियों का सम्बन्ध था, महफिल पहले की अपेक्षा कुछ ठंडी पड़ चुकी थी।

एक तरफ मुजरे की तैयारियाँ हो रही थीं, एक सफेद दाढ़ी वाले बुज़ुर्ग काले कपड़े पहने तख्त पर बैठे थे। दाँतों में हुक्के की नली दबी थी। इधर-उधर भक्तों का जमघट था। कुछ नौजवान औरतें बनाव-सिंगार करने के बाद पाँव में घुँघरू बाँध रही थीं। तबले पर आटा मला जा रहा था। थोड़ी-थोड़ी देर बाद थप-थप-थाप की आवाज़ें सुनाई दे जाती थीं। एक तरफ सारंगिये बैठे सारंगी के कान मरोड़ रहे थे। इधर उनके हाथों में पकड़े हुए गज हिलते और उधर उनके बड़े-बड़े पग्गड़ों वाले सर भी एक साथ हरकत करते। सब लोगों की निगाहें उन औरतों पर जमी हुई थीं, जो बल खा-खाकर सौ-सौ तरह से अपने पाँव की तरफ देखती थीं। वे अच्छी तरह जानती थीं कि काले कपड़ों वाले बूढ़े पीर की सुर्मा लगी आँखों से लेकर साधारण से साधारण व्यक्ति की आँखें तक सब उन्हीं के दर्शनों के लिये व्याकुल थे।

जस्सासिंह के दोस्त ने मुजरा देखने की इच्छा प्रगट की जस्सासिंह का भी विचार तो यही था, लेकिन शायद मेरे ख्याल से उसने वहाँ देर तक रुकना उचित नहीं समझा। इसलिये वह अपने दोस्त से विदा हुआ और हम लोग अपनी साँडनी की नकेल पकड़कर मेले से चल निकले।

जब हम मेले से बाहर आ गये तो सामने फिर घनी-घनी झाड़ियाँ और ऊँचे-ऊँचे पेड़ थे। हमारे दायें बायें अब भी कोई इक्का-दुक्का खेमा नजर आ ही जाता था। थोड़ी दूर जाने के बाद जस्सासिंह रुक गया। उसने मुझे वहीं ठहराया और साँडनी की नकेल मेरे हाथ में देकर स्वयं उस रेतीले रास्ते के ऊँचे किनारे की ओर रुख करके तुन के एक और पेड़ के पास पहुँचा।

वह पेड़ के नीचे जाकर खड़ा ही हुआ था कि पेड़ के साये में एक नौजवान औरत तने की ओट में से बाहर निकली । वे दोनों हँस पड़े और बहुत धीरे-धीरे बातें करने लगे ।

मद्धिम प्रकाश में उस स्त्री की सूरत साफ-साफ नहीं दिखाई पड़ती थी। हाँ, जब वह बातें करती हुई अपनी जगह से एक ओर को हट जाती तो चन्द्रमा के प्रकाश में उसका चेहरा साफ-साफ दिखाई पड़ने लगता ।

वह एक खूब पली हुई जंगली बिल्ली के समान थी । उसके चलने का ढंग भी उस मोटी-ताजी बिल्ली की भाँति था जो पेट भर कर चूहे खा लेने के बाद खर-खर करती हुई चलती हो । खूब खिंची तनी हुई ठसाठस माँस का वह एक तड़पता हुआ टुकड़ा थी, जैसे खरबूजे की फाँक या मीठे संतरे की रस भरी फाँक । उसने गहरे नीले रंग की ओढ़नी ओढ़ रक्खी थी, जिसमें केवल उसका चेहरा ही नजर आता था । यदि उसके स्वस्थ गालों पर इतना माँस न होता तो उसकी आँखें खूब बड़ी-बड़ी दिखाई देतीं । भवें लचकती कटार थीं और दाँत साफ और स्वच्छ । अखरोट के वृक्ष की छाल से रंगे हुये मसूड़ों में से हँसते समय उसके दाँतों की चमक बिजली की भाँति कौंध जाती थी । उसके होंठों में समुद्र की लहरों का सा ज्वार-भाटा पैदा होता और वे गर्म रेत पर पड़ी हुई किसी मछली की भाँति तड़पने लगते थे ।

वे दोनों मुझसे कुछ फासले पर तो थे ही, फिर वे बातें भी बहुत धीरे-धीरे कर रहे थे । कम से कम मेरे कान में कुछ नहीं पड़ने देते थे, लेकिन औरत के होंठों के उतार-चढ़ाव से मालूम होता था कि बातें शायद कभी न खत्म करने के लिये हो रही हैं ।...कभी चंचल दृष्टि से उसकी ओर देखकर ठेंगा दिखाने के अंदाज में ऊपर वाला होंठ भींचकर नीचे का होंठ आगे बढ़ा देती ।...उसने अपनी चुंदरी को सँवारा तो उसके काले घने और लम्बे केश वर्षा की बौछार की भाँति बाहर निकल पड़े । उसकी सुन्दर गर्दन की झलक भी क्षण भर को दिखाई पड़ी और फिर, उसकी

ओढ़नी की बदली में छिप गई। वह मस्ती में भरी हुई कबूतरी के समान अठखेलियाँ कर रही थी। जस्सासिंह ने संभवतः उसकी ठोढ़ी ऊपर उठाने के लिए हाथ आगे बढ़ाया। औरत ने नर्मी से उसका हाथ रास्ते में ही रोक दिया और बड़े बाँकपन से ठुमककर अपने को जस्सासिंह को सौंपने के अंदाज़ में उसके क़रीब हो गई और उसके कान के पास धीरे से कुछ कहा। जस्सासिंह ने मेरी ओर देखा और खिलखिला कर हँस पड़ा।...फिर जस्सासिंह एक क़दम पीछे हट गया।

पत्तों में से छन-छन कर आने वाली चाँदनी में औरत की तेज आँखों में से प्रकाश की किरणें निकलती हुई दिखाई दे रही थीं...और जब जस्सासिंह वापस लौटा तो वह पेड़ के तने के साथ लग कर खड़ी हो गई और कुछ उदास निगाहों से जस्सासिंह की ओर टकटकी बाँध कर देखने लगी। उसका एक गाल पेड़ से लगा हुआ था।

हम फिर साँडिनी पर सवार हो गये और साँडिनी पहले की तरह बेढब चाल से भाग निकली। काफी दूर आ जाने के बाद मैंने घूमकर पीछे की तरफ देखा। वह औरत अभी तक उसी तरह पेड़ के तने के साथ सिमट कर खड़ी हुई थी।

जब हम खेतों में पहुँच गये तो जस्सासिंह ने अपना बटुये जैसा मुँह खोल कर मेरी ओर देखा और नाक की जगह मुँह से साँस लेने लगा। उसकी छोटी-मोटी मूछों के तले उसके कुछ भद्दे होठों पर चंचल मुस्कराहट खेल रही थी। वह अपनी भारी आवाज में बोला—"क्या सोच रहे हो!"

मैं कुछ झेंप सा गया।

साँडिनी निचला होंठ आगे को बढ़ाये किसी रूठी रानी की तरह ठुमक-ठुमककर चली जा रही थी। जस्सासिंह ने लोहे के कड़े वाला हाथ उठाकर कान पर रख लिया और एक लम्बी हाँक लगाई। उसके मुँह में से फेफड़ों की पूरी शक्ति के साथ जीवन से भरपूर आवाज़ निकली जो

वायुमंडल में फिसलती चली गई। इतनी स्वतंत्र और भरपूर आवाज़ मैंने कभी नहीं सुनी थी। उसके स्वर में संगीत न सही, लेकिन एक ऐसा करारापन और एक ऐसी सच्चाई थी जिस पर संगीत से भरपूर हजारों आवाज़ें कुर्बान की जा सकती थीं। लम्बी हाँक के बाद वह गाने लगा—

"ओय
मैं मल लाँ तख्त लाहौर दा
मैं खोह लाँ राजे देयाँ रानियाँ।

ओय...हो हो"

(मैं लाहौर के तख्त पर जम जाऊँ मैं राजे की रानियाँ छीन लूँ।)

फिर उसने उच्च स्वर में ठहाका लगाया—"लो मैं तुम्हें एक और गाना सुनाता हूँ। बहुत मजे का गीत है। एक औरत जिसका नाम भागिन है, अपने...यानी समझे न ! उससे पूछती है—

"है वे कित्थे चल्ले ओ
हाकिमा तुसी, तुसी वे कित्थे चल्ले ओ।"

(हाँ, यह हाकिम कहाँ चले हो तुम, तुम कहाँ चले हो।)

अब हाकिम जवाब देता है—

"हे नी दिल्ली चल्ले आँ
भागिनें ! इसी, इसी नी दिल्ली चल्ले आँ।"

(अरी भागिन हम दिल्ली चले हैं।)

इस पर भागिन के मन में लड्डू फूटने लगते हैं। कहती है—

"है दे की ल्या दोगे
हाकिमा ! तुसी, तुसी दे की ल्या दोगे।"

(हाँ तो फिर दिल्ली से तुम क्या लाओगे।)

भला हाकिम भागिन के लिये कुछ लाने से कब चूक सकता था। लेकिन इस मौके पर उसे शरारत सूझती है। वह असल उपहार का ज़िक्र तो करता नहीं बल्कि कहता है—

"हें नी ! बिल्ली ल्या दाँगे ।
भागिनें ! असी, नी बिल्ली ल्या दाँगे ।"
(हाँ री भागिन, हम दिल्ली से बिल्ली लायेंगे, बिल्ली ।)

बिल्ली का नाम सुनकर भागिन का जी कट जाता है । तेवर बिगड़ जाते हैं । पूछती है—

"बिल्ली की कर जेगी
हाकिमा ! बिल्ली, बिल्ली दे की कर जेगी ।"
(बिल्ली क्या करेगी ए हाकिम, बिल्ली क्या करेगी ?)

हाकिम कनखियों से भागिन की तरफ़ देखता है । उसके बिगड़ने का आनन्द लेता है—

"है नी नहोन्दर मारेगी
भागिनें ! बिल्लो, बिल्लो नहोन्दर मारेगी ।"
(हाँ री, बिल्ली पंजे मारेगी)

भागिन इस बात पर दिखाने के लिए खुशी जाहिर करती है और फिर व्यंग्य से पूछती है—

"पट्टी कौन बन्हेगा
हाकिमा पट्टी, दे कौन बन्हेगा ।"
(पट्टी कौन बाँधेगा ए हाकिम, फिर पट्टी कौन बाँधेगा ?)

अब हाकिम की बारी थी । भागिन समझती थी कि अब हाकिम से कोई बात न बन पड़ेगी । अब हाकिम ने पहले तो भागिन की तरफ ऐसी नजरों से देखा कि वह शर्मा गई । जब शर्म के मारे भागिन के गाल लाल हो गये तो उसने कहा—

"पट्टी तूँ बन्हेगी
भागिनें पट्टी, पट्टी नी तूँ बन्हेगी ।
ओ हो हो हो ।"
(पट्टी तू ही बाँधेगी भागिन, पट्टी तो तू ही बाँधेगी ।)

"क्यों, मेरा गाना पसन्द आया ?"

गाना तो खैर जो था सो था ही, लेकिन गाने में जो ज़िंदगी और ललकार और अन्दाज में जो निर्भीकता थी, वह मुझे बहुत पसन्द आई।

उसने पूछा—"तुम भी गाना जानते हो ?"

मैं गाना नहीं जानता था। काश मैं उसे गाना गाकर ही सुना सकता ! मैंने बातों ही बातों में पूछा—"वह मुसलमान कौन था ?"

वह हँस पड़ा—"वह मेरा जिगरी दोस्त है। समझे ! बहुत दिन के बाद बड़े घर से आया था। अच्छा ही हुआ जो मुझे मिल गया।"

"बड़ा घर क्या होता है ?'

"अरे, तुम बड़ा घर नहीं जानते। अफ़सोस, तुम बड़े घर कभी नहीं जा सकोगे। सिर्फ बड़े आदमी ही बड़े घर में जा सकते हैं...बस, सरदार बहादुर ! यह समझ लो कि बड़ा घर सिर्फ उन्हीं लोगों के लिए होता है जो सरकार की सेवा करते हैं। जब वे सेवा करते-करते थक जाते हैं तो उन्हें आराम करने के लिए बड़े घर में भेज दिया जाता है। वहाँ वे इतमीनान से बैठ कर सरकार और परजा की सेवा के नये-नये ढंग सोचा करते हैं और जब आराम करने के बाद सरकार के बड़े घर से निकलते हैं तो फिर नये-नये ढंग से बड़े जोर-शोर से प्रजा की सेवा करते हैं। प्रजा सरकार से उनकी ज़ोरदार सिफ़ारिश करती है। सरकार जितनी ज्यादा खुश होती है, उतनी ही जल्दी उन सेवकों को में बड़े घर भेज देती है। जो व्यक्ति जितनी ही ज्यादा मुस्तैदी के साथ सेवा करता है, उतने ही ज्यादा दिनों के लिये उसे आराम करने का मौका दिया जाता है।"

मैं बहुत देर तक अपनी समझ के अनुसार बड़े घर के विषय में सोचता रहा। जस्सासिंह अपनी बात जारी रखते हुए बोला—"मेरे उस दोस्त का नाम नूर है। उसके बड़े घर में जाने से पहले एक बार हम दोनों एक गाँव में रात के समय किसी के घर में घुस गये। हर तरफ़

सन्नाटा था। हम हर आहट पर कान लगाये हुए थे। कोई असाधारण आवाज न सुनाई दी। लेकिन जब हम बाहर निकलने लगे तो क्या देखते हैं कि जिस मकान के अन्दर हम घुसे हुए थे, उसे गाँव के लोगों ने चारों ओर से घेर रक्खा है......।"

"आप लोग उस घर में घुसे ही क्यों थे ?"

"ओहो ! देखो सरदार, ऐसी बातों में टोकना अच्छा नहीं होता। बस तुम यह समझ लो कि किसी न किसी तरह, किसी न किसी कारण से, किसी न किसी आदमी के घर के अन्दर घुस गये थे। घर वाले सोये हुए थे। पता नहीं, घर वालों की नींद कैसे खुल गई और वे सब गाँव वालों को किस समय बुला लाये...। इतने आदमियों का मजमा देखकर हम बहुत घबरा गये। चुपके से दबककर बैठ रहे। सोचते थे कि कैसे सही सलामत बाहर निकलें। कोई सूरत नहीं दिखाई पड़ती थी। फिर यह भी खटका लगा हुआ था कि यहीं पड़े-पड़े सुबह न हो जाय। या फिर वे लोग कहीं से पुलीस को ही न बुला लायें। अतएव हम दोनों ने सलाह की और एक दूसरे की ओर पीठ करके बाहर निकले तो देखा कि आँगन और गली में आदमी ही आदमी खड़े हैं। लाठियाँ हमारे हाथों में थीं। बस हमने लाठियाँ चलानी शुरू कर दीं, हमारी जान पर बनी हुई थी। इतने जोर से हमने आज तक लाठी नहीं घुमाई थी। लोगों में हलचल मच गई। लाठियों की मार से बचने के लिए वे इधर-उधर हटने लगे। एक भागा तो भगदड़ मच गई। लेकिन जब उन लोगों ने देखा कि हम सिर्फ दो ही आदमी हैं तो फिर उनका हौसला बढ़ा और वे हमारे करीब पहुँचने की कोशिश करने लगे। हम भी लुहूलुहान हो गये। उनके घेरे में से निकल कर जो हम भागे तो आठ कोस तक भागते ही चले गये जिसमें कि ये लोग घोड़ों पर सवार होकर हमें घेर न लें... समझे, मेरा यही दोस्त मेरे साथ था। अगर कोई और होता तो वहीं प्राण-त्याग देता।"

मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। मैंने पूछा—"क्या सारे गाँव में एक भी आदमी ऐसा न निकला जो आपका मुक़ाबला कर सकता ?"

"कहाँ भैया ! हमारा मुक़ाबला करने के लिए तो उनके पास-पड़ोस के गाँव में से भी कोई नहीं निकल सकता। हाँ, अगर कहीं मेरे मामा जैसा कोई आदमी होता वहाँ तो फिर हमारी दाल नहीं गल सकती थी।"

"क्या आपके मामा बहुत ताक़तवर आदमी हैं ?"

"ताक़तवर ?—मेरे मामा इतने ताक़तवर हैं कि इधर-उधर के लोग उन्हें 'लोहा' कहते हैं। बड़ा भारी डील-डौल है उनका। क़द में तो ख़ैर मुझसे भी कुछ कम ही हैं, लेकिन उनकी ललकार ही ऐसी जोरदार होती है कि किसी आदमी की हिम्मत नहीं पड़ती कि सामने सिर भी उठा सके। उनका इलाके भर में बड़ा दबदबा है......।"

"क्या वे कभी चोरों के साथ भी लड़ा करते हैं। कभी कोई डाकू पकड़ा उन्होंने ?"

"उन्होंने बड़े-बड़े काम किये हैं। उनके जीवन की एक छोटी सी पर बहुत ही दिलचस्प घटना सुनाता हूँ। एक बार गर्मियों में रात के समय वे गाँव से बाहर मवेशियों के बाड़े के फाटक के पास चारपाई डाले सो रहे थे। उनके सब मवेशी बाड़े के अंदर बन्द थे। इतने में वहाँ चोर आ निकले और उन्हें गहरी नींद में बेसुध पाकर अन्दर घुस गये और बैलों की एक बहुत अच्छी जोड़ी निकाल कर चल दिये। अभी वे बैल हाँकते हुए कोई चालीस पचास कदम ही गये होंगे कि एकाएक मेरे मामा की आँख खुल गई और वे तुरन्त भाँप गये कि चोर उनके मवेशी लिए जा रहे हैं। वे उठकर बैठ गये और पुकार कर बोले—"भाई, तुम जो कोई भी हो...मेरी बात कान खोलकर सुन लो...तुम मेरे जानवर तो लिए जा रहे हो, बड़ी खुशी से ले जाओ, लेकिन इतनी बात याद रहे कि तुम इन्हें जहाँ कहीं भी ले जाओगे कल दिन के अन्दर-अन्दर अगर

मैं अपने जानवर वापस न ले लूँ तो मैं अपने बाप का बेटा नहीं...और यह भी सुन लो कि मेरा नाम दसौंधासिंह है।"

वे आदमी कुछ देर तक चुपचाप खड़े सलाह करते रहे फिर उनमें से एक आदमी ऊँची आवाज में बोला—"दसौंधासिंह सरदार! हमें मालूम नहीं था कि यह तुम्हारे बैल हैं। न हमें यह मालूम था कि चारपाई पर तुम्हीं सोये पड़े हो। हमने तुम्हारा नाम सुन रक्खा है, इसलिए हम यह बैल इसी जगह छोड़े जाते हैं।" और उन्होंने दोनों बैल बाड़े की तरफ हाँक दिये और स्वयं अपनी राह पर रवाना हो गये।

मुझे उसकी बातें सुनने में बड़ा मज़ा आ रहा था। सुनसान रात में साँडिनी के गले में पड़ी हुई घंटियों की टन-टन में उसकी गूँजती हुई आवाज एक खास आकर्षण रखती थी। मैं उससे कोई बात पूछने ही लगा था कि एक बड़े जोर की फुंकार सुनाई दी। देखा तो परे एक ऊँची सी जगह पर एक फनदार साँप फन उठाये लहरा रहा है।

मेरे शरीर में बिजली सी दौड़ गई। जस्सासिंह ने साँडिनी रोक ली। कुछ देर तक वह साँप की तरफ देखता रहा—"यह साँपों का राजा नाग है। उफ़, कितना काला है। अगर यह किसी को काट ले तो उसे पानी माँगने की मुहलत न मिले।"

फिर उसने मुझे साँडिनी पर बैठे रहने की हिदायत की और स्वयं नीचे उतर गया। साँप अभी तक फन उठाये लहरा रहा था। जस्सासिंह ने कन्धे से चादर उतार कर बायें हाथ में पकड़ ली और दाहिने हाथ में लाठी लेकर वह आगे बढ़ा, वह फूंक-फूंक कर कदम रख रहा था। उस समय वह एक असील मुर्गे की भाँति चौकन्ना हो रहा था। उसकी घनी भवों के नीचे उसकी तेज आँखें चमक रही थीं। उसने अपना लोहे का कड़ा कलाई से पीछे हटाकर बाजू पर फँसा लिया। साँप के पास पहुँचकर वह रुक गया और साँप की आँखों से आँखें मिला कर खड़ा हो गया।

मैं डर गया। मैंने उसे आवाज देकर वापस चले आने के लिए कहा, लेकिन उसने मेरी ओर देखे बिना चुप रहने का इशारा किया और स्वयं साँप के और भी निकट चला गया।

मैंने इधर-उधर दृष्टि दौड़ा कर देखा। कोई आदमी, जानवर या पक्षी दिखाई नहीं पड़ता था। चन्द्रमा का प्रकाश अब कुछ तेज हो गया था। बबूल के पेड़ चुपचाप खड़े थे। उनकी शाखाओं की कोमल से कोमल कोपलें तक निश्चल थीं! वे ऐसी लापरवाही के साथ खड़े थे, मानो उन्हें इस बात से दूर का भी सम्बन्ध न हो। उस सुनसान स्थान पर आदमी और नाग का मुक़ाबला मेरे लिए बिलकुल नई और विचित्र चीज़ थी। मुझे विश्वास था कि साँप धोके से जस्सासिंह की नंगी टाँग पर दाँत मारेगा और वह इसी समय तड़प-तड़प कर मर जायगा। मेरा गला सूख रहा था। मैं चाहता था कि वह वापस चला आये, लेकिन वह मेरी बात सुनता ही कब था। अब वह औरत भी बहुत पीछे रह गई थी, नहीं तो मैं भाग कर उसे ही बुला लाता। वह तो उसे रोक सकती थी।

जस्सासिंह के होंठों पर मुस्कराहट खेल रही थी। वह उस समय एक चंचल बच्चे के समान जिद्दी और खिलेन्दरा दिखाई पड़ रहा था। साँप के पास खड़े होकर वह उचक कर अपनी चादर उसके फन के पास हिलाने लगा। साँप ने भी फन बढ़ा-बढ़ाकर दो-तीन बार उसे काटने की कोशिश की। एक बार जो उसने जरा बढ़कर चादर उसके क़रीब की तो निडर साँप उछल कर चादर से लिपट गया। जस्सासिंह ने चादर ज़मीन पर फेंककर उसे लाठी से पीटना शुरू किया। एक क्षण के लिए साँप उसके पाँव के पास दिखाई दिया, फिर वह भाग निकला। जस्सासिंह भी उछलकर उसके पीछे-पीछे हो लिया। फिर वह समतल रेतीली धरती पर एक दूसरे के पीछे भागे। साँप पलट-पलटकर उस पर हमले करता था। थोड़ी ही देर में वे बहुत दूर निकल गये। जस्सासिंह की लाठी बार-बार

हवा में उठती थी और फिर एकाएक जस्सासिंह ज़मीन पर गिर पड़ा......उठा और फिर गिर पड़ा......मेरा धड़कता हुआ दिल धक् से होकर रह गया। शायद वह स्त्री जिससे वह थोड़ी देर पहले हँस-हँसकर बातें कर रहा था अभी तक पेड़ के तने के साथ लगी खड़ी हो......जस्सासिंह फिर उठ खड़ा हुआ और फिर बड़े-बड़े डग भरता हुआ मेरे क़रीब आया। मैंने घबराकर पूछा—"क्या साँप ने आपको काट खाया था ?"

"नहीं तो," वह हँसकर बोला—"वहाँ गीली ज़मीन थी। मेरा पाँव फिसल गया। देखो यह मेरा कच्छा भी कीचड़ में खराब हो गया...गिर कर मैं उठने लगा तो फिर गिर गया।"

"तो साँप भाग गया ?"

"नहीं भाई, साँप को भागने भी देता मैं ! तुम जानते नहीं, अगर यह साँप एक बार घायल होकर बच निकले तो अपने दुश्मन से बदला ज़रूर लेता है। इसलिए मैं उसके पीछे भागा था अब तो मैंने उसका सिर अच्छी तरह कुचलकर रख दिया है...आओ नीचे उतरो तुम्हें भी साँप दिखलाबें...।"

जब हम मरे हुए साँप के निकट पहुँचे तो देखा कि कम से कम छः हाथ लम्बा साँप था। पीठ बिलकुल स्याह थी। पेट कुछ सफेद था बल खाया हुआ मुर्दा साँप अब भी इतना भयानक दिखाई देता था कि उसके पास जाने की हिम्मत न होती थी।

इस बात की पूरी तसल्ली कर लेने के बाद कि साँप सचमुच बिलकुल मर चुका है, हम वापस आकर साँडिनी पर सवार हो गये।

मैंने जीवन में इस तरह की रोमाँचकारी घटनाएँ कम ही देखी थीं। मुझे अभी तक पसीना छूट रहा था। जस्सासिंह का साहस मूर्खता की हद से आगे बढ़ गया था लेकिन वह पूरे विश्वास के साथ नीचे उतरा था और उसे यक़ीन था कि वह साँप को मार डालेगा। लेकिन मैं

रह-रहकर सोच रहा था कि अगर कहीं साँप जस्सासिंह को काट ही खाता तो क्या होता !

जस्सासिंह ने साँडिनी को ललकार कर हाँकते हुए कहा—"यह साँप बहुत ज़ालिम होता है। यह गाय का थन मुँह में लेकर दूध पी जाता है और कभी-कभी यह मनुष्य जाति का दुश्मन बन बैठता है उस वक्त इसकी कारस्तानियाँ बहुत बढ़ जाती हैं। जो आदमी दिखाई दे, उसे काटने से नहीं चूकता। ऐसा साँप बहुत ही खतरनाक होता है।और फिर सबसे मुश्किल यह होता है कि यह जानवर भी छोटा-सा होता है और है बहुत चालाक और मक्कार। इसको मार डालना भी आसान नहीं। बस ऐसे साँप से वाह गुरू ही बचाये।"

इसी तरह बातें करते हुए चले जा रहे थे कि जस्सासिंह ने कहा—"बोलो यह सामने तुम्हारा गाँव है न ?"

मैं उसकी बातों में ऐसा मग्न था कि मुझे इधर-उधर का कुछ खयाल ही न रहा था। अब हम गाँव के कब्रिस्तान के पास से गुज़र रहे थे। झड़बेरियों के बीच में उभरी-उभरी क़ब्रें चाँदनी रात में और भी अधिक भयानक दिखाई दे रही थीं। सामने नीम के पेड़ों के नीचे चमारों का कुआँ भी नज़र आ रहा था। कुएँ की चर्खी अँधेरे में किसी नक़ाबपोश आदमी के समान दिखाई दे रही थी। गाँव से बाहर कूड़े-करकट के ढेर थे, जहाँ दिन के समय मुर्गियाँ और उनके नन्हें-नन्हें बच्चे ज़मीन कुरेदते फिरा करते थे। दूर छोटे-छोटे पेड़ों का झुण्ड था जो ऐसे दिखाई देते थे जैसे चोर गाँव में घुसने से पहले आपस में सलाह-मशविरा कर रहे हों।

जब हम गाँव में पहुँच गये तो गाँव के ठीक सिरे पर बने हुए रहट के पास जस्सासिंह ने अपनी साँडिनी बिठा दी। मेरी सायकिल उतारी, फिर स्वयं उतरा और मुझे भी उतारा। मेरी गठरी मेरे हवाले कर दी।

गाँव पर उस समय सन्नाटा छाया हुआ था। सब लोग अपने कच्चे

मकानों की छतों पर पड़े सो रहे थे। सिर्फ गाँव के दूसरे सिरे से कुत्तों के भौंकने की हल्की-हल्की आवाजें आ रही थीं।

उसने चलते हुए रहट से पानी पिया। पानी की बूँदे उसकी मूँछों से नीचे की तरफ लटककर काँपने लगीं। मैंने सायकिल पास की एक दीवार के साथ खड़ी कर दी। गठरी भी उसी पर रख दी। जस्सासिंह ने मुस्कराकर मेरी ओर देखा। मैं उससे इतना घुल-मिल चुका था, मानो हम वर्षों से एक दूसरे को जानते हों। मैं ऐसा अनुभव कर रहा था कि भविष्य में हम जिन्दगी भर साथ-साथ रहेंगे। उसने बेतकल्लुफ़ी के साथ पूछा—"कहो अब तो घर पहुँच जाओगे, रास्ता तो न भूलोगे?"

मैंने शर्माकर कहा—"जी नहीं, अब मैं पहुँच जाऊँगा।"

मैं उसको धन्यवाद देना चाहता था, लेकिन समझ न सका कि यह भाव कैसे प्रगट करूँ! मैं यह सोच ही रहा था कि उसने पगड़ी के शमले से मूँछें और दाढ़ी पोंछते हुए कहा—"अच्छा अब तुम घर को जाओ, मैं भी जाता हूँ"

मैंने उसकी पगड़ी के शमलों की तरफ़ देखा एक कान के पास लटक रहा था और दूसरा हवा में उठा हुआ फूल की तरह खिला हुआ था। मैंने सिर से पाँव तक उसको देखा वह एक भारी खम्भे की तरह दिखाई दे रहा था। उसने अपने दोनों काठ के से हाथों में मेरा कमजोर और छोटा सा हाथ लेकर मिलाया। इस तरह इतने बड़े आदमी से हाथ मिलाने में मुझे गर्व का अनुभव हुआ। मुझे यह स्वप्न में भी खयाल न था कि वह एकदम वापस जाने पर तुल जायगा। मैंने कहा—"आइये हमारे घर चलिये। घर के लोग आपको देखकर बहुत खुश होंगे।"

यह बात सुनकर वह बड़ी जोर से हँसा। उसकी हँसी रुकने ही में न आती थी। उसने उँगली से अपनी ओर इशारा करते हुये कहा—"क्या कहते हो!......मुझे देखकर खुश होंगे?...ह-ह-ह-हा!"

हँसते-हँसते उसी नाक की नोक सुर्ख हो गई

मैंने उसकी उँगली पकड़ कर ले आने के लिये आग्रह किया तो फिर वह कहने लगा—"आज मुझे बहुत जरूरी काम है, इसलिये तुम जाओ। मैं फिर कभी आऊँगा। तुम्हारा नाम तो मैं जानता ही हूँ......।"

मैंने उँगली उठाकर कहा—"जरूर ?"

"जरूर"—वह हँसने लगा।

इसके बाद वह अपनी कुल्हाड़ी सँभालता हुआ साँडनी पर सवार हुआ। मैं उसकी तरफ देखता रहा। यहाँ तक कि वह क्षितिज में विलीन हो गया—गर्द के बादल उड़ते रह गये।

लेकिन वह फिर कभी नहीं आया...कभी नहीं !

कुछ क्षण

सोमवार का दिन था।

यों तो मैं अपने दोस्तों का बहुत आदर करता हूँ लेकिन कभी-कभी जी चाहता है कि दोस्तों की सूरत तक न दिखाई दे और मैं सिर्फ अपने लिए ही होकर रह जाऊँ। मेरे दोस्तों की तादाद बहुत कम है, इसलिए मुझे ऐसे दिन भी मिल जाते हैं।

जिस दिन की बात कर रहा हूँ वह इसी तरह का एक दिन था। सुबह का समय था। इसके पहले कि कोई दोस्त मेरे मकान पर पहुँचकर "उमाकान्त! उमाकन्त!" के नारे लगाता, मैं चाय पीकर घर से निकल खड़ा हुआ।

न बीवी न बच्चे, न नौकरी न कारबार, न खुशी न गमी, अजब रिन्दी की हालत में जिन्दगी बीत रही थी। मेरी बेकारी से घर वालों की नाराजी के कारण मन पर उदासी छाई रहती थी। कोई जिम्मेदारी न होने के कारण दिमाग हलका रहता था।

बस स्टैंड पर पहुँच कर देखा कि बस कनाट-प्लेस जाने के लिए तैयार खड़ी है। अन्दर इक्का-दुक्का मुसाफिर बैठा है। मैंने फुटपाथ पर खड़े होकर जेब में से 'कैमेल्स' की डिब्बी निकाली और बड़े इतमीनान से एक सिगरेट को सहलाता रहा। फिर उसे होठों में दबाया और सुलगाकर लम्बा कश लिया। आखिर कोट कालर दुरुस्त करता हुआ बस के अन्दर दाखिल हो गया।

आठ बजे थे। भला सर्दी के मौसम में किसी को क्या पड़ी थी कि घर के गरम वातावरण से निकल कर बाहर को उठ भागे। इसलिए बस में एक अजीब शान्ति छाई थी। थोड़े से लोग एक दूसरे से परे-परे बैठे धीरे-धीरे बातें करने में लगे थे।

मैंने पहले तो औरतों और लड़कियों पर नजर डाली। तीन लड़कियाँ थीं और दो औरतें।

लड़कियाँ गोरी थीं। दो दो चोटियाँ, आँखें बड़ी न छोटी, बातें मीठी न फीकी—लेकिन गाल—ओह—इतने बेडौल और बेहूदा गाल! हड्डियाँ उभरी हुई और गहरी-गहरी लकीरें, जो हँसते वक्त और गहरी हो जाती थीं। अब दूसरी औरत की तरफ देखा—हरे राम! वह तो सूरत से बिलकुल आया लगती थी। शायद सचमुच की आया हो। इसी बात पर मुझे खयाल आया कि हम लोग बच्चों के लिए कितनी बदसूरत: आयाएँ रख लेते हैं। इसका नतीजा यह होता है कि उम्र-भर बच्चों की सौंदर्य को परखने वाली शक्ति पनपने नहीं पाती।—खैर, अब एक औरत को देखना बाक़ी था। वह मेरी ओर पीठ किए बैठी थी। उसके कन्धे पर एक नन्हें

बच्चे का सिर टिका था और एक बच्ची सामने की सीट पर बैठी थी—यानी वह कम से कम दो बच्चों की माँ थी।

दिल पर निराशा सी छाने लगी। क्या बीस पच्चीस मिनट का यह सफ़र यों ही कट जाएगा? दिल बहलाने को कोई सुन्दर सूरत तक दिखाई न देगी, क्या यह सफर जम्हाइयाँ लेते-लेते ही बिताना पड़ेगा?

पिछली सीट पर चुपके से बैठकर मैंने सिर पर हाथ फेरते हुए बालों की तह जमाई। कपड़ों को दुरुस्त किया और फिर इन्तज़ार करने लगा कि वह ज़रा घूम कर इधर-उधर देखे तो उसकी सूरत देखी जाए। लेकिन वह इधर-उधर देखे बिना सामने की ओर मुँह किए चुपकी बैठी रही, यहाँ तक कि बस चल दी।

मुझे बेचैनी सी महसूस होने लगी। आखिर कंडक्टर ने आकर टिकट के दाम माँगे। टिकट लेते समय खयाल आया कि काश, इस महिला से थोड़ी बहुत बातचीत हो चुकी होती तो उसके टिकटों के दाम देकर अच्छी खासी पहचान बढ़ाई जा सकती थी। जब उसकी बारी आई तो उसने मुँह फेर कर देखा। सौन्दर्य की एक झलक दिखाई पड़ी—दिल धक् से होकर रह गया।

वह सचमुच बहुत सुन्दर थी। तारों सी आँखें, नाज़ुक होंठ और चमकता माथा—आशा के विरुद्ध उस स्त्री को सुन्दर पाकर हाथ पाँव फूल गए।

अब सवाल यह था कि इससे बातचीत कैसे शुरू की जाए। कौन सा विषय मुनासिब रहेगा, मौसम?......लेकिन हिन्दुस्तान में अभी मौसम के विषय पर बातचीत शुरू करना अधिक उपयुक्त नहीं सिद्ध हो सकता। उस औरत से यह कहना कि आहा! क्या अच्छा मौसम है, महज़ बेकार होगा। सिनेमा, ऐक्टर, ऐक्ट्रेसें, बसें, सड़कें......नहीं, नहीं ये बातें बेसार हैं......इतने में औरत के कंधे के साथ लगे हुए नन्हें बच्चे ने आँखें खोलीं और अचरज के साथ इधर-उधर देखने लगा।

बड़ा प्यारा बच्चा था। मैंने उसके गाल पर हलकी सी चुटकी ली तो उसके छोटे-छोटे होंठों पर मुस्कराहट पैदा हुई। फिर मैंने दो उंगलियों से उसकी ठुड्डी को हलके-हलके सहलाना शुरू किया तो वह हँसने लगा। मैं जानता था कि उसकी माँ को यह बात मालूम हो चुकी है।

बच्चे के कानों के पीछे दाद के निशान दिखाई दे रहे थे। मैंने साहस से काम लेकर पूछा—"क्यों जी, नन्हे के कानों के पीछे दाद हो रहा है......?"

"जी......हाँ......"

"तो क्या आप इसका इलाज नहीं कराएँगीं ?"

"इलाज तो हो रहा है......"

"क्या होमियोपैथी इलाज करा रही हैं ?"

"जी नहीं, है तो एलोपैथी।"

"एक डाक्टर हैं रुची राम। होमियोपैथी इलाज करते हैं, लेकिन अच्छा करते हैं। खास तौर पर बच्चों के इलाज के तो वह माहिर हैं। अगर यह इलाज सफल न हो तो उन्हें दिखाइए।"

"अच्छा जी।"

"बहुत ही प्यारा बच्चा है," मैंने बातों का सिलसिला जारी रखने की कोशिश करते हुए कहा।

औरत ने बच्चे को कन्धे से हटाकर खिड़की के साथ पीठ लगा ली। अब उसका रुख क़रीब-क़रीब मेरी तरफ़ था। उसने बच्चे को जाँघ पर बैठा कर देखना शुरू किया कि सचमुच वह हसीन है य नहीं। फिर जैसे मन ही मन उसने मेरी बात का समर्थन करते हुए नजरों से मेरी ओर देखा।

"आपको बच्चों से खासा लगाव है। क्या आपके भी बच्चे हैं ?"

"जी नहीं," मैंने जरा झेंप कर कहा—"अभी तो मेरी शादी भी नहीं हुई।"

"क्यों, शादी न होने का क्या कारण ?"

"यों ही," मैंने सिर खुजाते हुए जवाब दिया--"यही, अभी बेकार हूँ—जब तक आमदनी की सूरत न हो, दिल में शादी का खयाल भी नहीं आ सकता।"

"लेकिन आप बेकार क्यों हैं ?"

मैं इस जिरह से घबरा रहा था—"मैंने पंजाब युनिवर्सिटी से बी. ए. करने के बाद पेशावर में कारोबार शुरू किया था। आमदनी की सूरत नजर आने लगी तो दंगे शुरू हो गये और मुझे इधर भागना पड़ा...अब नए सिरे से काम शुरू करने का विचार है।"

औरत की आँखों में उदासी की झलक दिखाई दी। उस वक्त वह कुछ खोई-खोई सी दिखाई पड़ रही थी। मैं मौके का फायदा उठाते हुए उसके सुन्दर मुखड़े को गौर से देखने लगा—क्या वह मेरी खातिर उदास थी ? एक क्षण के लिए ही सही ! मुझे भी ऐसी ही मोहनी पत्नी मिल जाय।

कहते हैं कि नारी पुरुष के मनोभावों को बहुत जल्द पहचान लेती है। औरत ने नजरें झुका लीं और फिर कुछ रुककर, न जाने क्यों, बड़ी बच्ची की तरफ इशारा करके मुस्करा कर बोली—"यह मेरी बेटी है।"

"आओ बेबी ! मेरे पास आओ...।" मैंने हाथ फैलाए। वह संकोच के कारण आगे नहीं बढ़ी तो मैंने आप बढ़कर उसे गोद में बैठा लिया—"आहा हा हा हा......बड़ी अच्छी है हमारी बेबी...अच्छा तो तुम पढ़ती क्या हो ?"

लेकिन वह बड़े ठाठ से शरमाती रही।

औरत बोली—"बतलाओ न बेबी ! तुमसे कितनी बार कहा है कि यों ही मत शरमाया करो।"

मैंने सोचा—कितनी सभ्य है यह औरत। उसकी बातचीत से मालूम होता था कि वह पढ़ी लिखी और खासी सुलझी हुई है।

माँ के आदेश पर बेटी ने सिर हिलाकर 'हाँ' कहा।

"क्या पढ़ा है भई, हमें भी सुनाओ...तुम तो बहुत ही अच्छी बेबी हो। तुम्हें तो पढ़ा लिखा याद होगा सारा, बोलो याद है ?"

"हाँ जी," बेबी ने बड़ी-बड़ी आँखें उठाकर भरपूर नजरों से मेरी तरफ देखा। मालूम होता था कि इस बात को स्वीकार करने में उसे बड़े गर्व का अनुभव हो रहा है।

"अच्छा भई, फिर सुनाओ न, क्या पढ़ा है तुमने ?"

"ए, बी, सी, वाई, जेड।"

इस पर हम दोनों ठहा मारकर हँस पड़े। मैं और वह औरत। हम दोनों, जो एक दूसरे से बहुत दूर थे, लेकिन हमारे ठहों की मिली जुली आवाज़ से यों महसूस होने लगा जैसे फिल्म के हीरो और हीरोइन कोई जादू भरा दुगाना गा रहे हों।

औरत ने बड़ी मुश्किल से हँसी रोकते हुए कहा—"अरी बेबी ! तुझे ए, बी, सी, अभी तक याद नहीं हुई। सी के बाद एक दम वाई जेड ?"

अब हमारी मुलाकात सन्तोषजनक अवस्था तक आ पहुँची थी। अधिकांश आशंकाएँ दूर हो चुकी थीं। हम दोनों बहुत अच्छे परिचितों, बल्कि दोस्तों की तरह बातें करने लगे।

बीस या पच्चीस मिनट के सफर में ज्यादा बातें नहीं हो सकती थीं। लेकिन अगर अनुभूतियों को लीजिए तो क्षण भर में कुछ का कुछ हो जाता है। एक मीठी नज़र थी जो जिन्दगी के उन क्षणों को रंगीन बनाती चली गई। उसकी आवाज में ऐसा लोच और रसीलापन था कि मुद्दतों तक कानों में शहद सा घुलता रहा।

इधर उधर की बातों में हम इतने खो गए थे कि इर्द-गिर्द की कुछ खबर नहीं रही थी—जब मैंने जंगल में शेर के शिकार की झूठी कहानी सुनाई और झूठ मूठ कह दिया कि मैंने शेर के सामने जमीन पर खड़े

होकर उस पर गोली चलाई तो औरत की आँखें फटी की फटी रह गईं। हैरानी से बोली—"लेकिन मैंने तो सुना है कि शेर का शिकार मचान पर बैठ कर किया जाता है।"

"जी हाँ," मैंने बेपरवाही से सिगरेट का बचा हुआ टुकड़ा हवा में फेंकते हुए जवाब दिया—"लेकिन सिद्ध शिकारी मचान पर कभी नहीं बैठते।"

उसे सचमुच मेरी बातों पर विश्वास हो गया। बातों में मुझे खयाल आया कि पुरुष के मन में स्त्री के प्रति आकर्षण का एक कारण यह भी है कि औरत के सामने वह जी खोलकर झूठ बोल सकता है और औरतें भी हरदम झूठ सुनने के लिये तैयार रहती हैं। होशियार से होशियार औरत भी आखिरकार उसी मर्द को पसन्द करती है जिसके झूठ पर वह विश्वास कर सके।

औरत बच्चों के से भोलेपन के साथ कई बातें पूछती रही और मैं बड़े ध्यान से उनके जवाब देता रहा।—पाप पुण्य, प्यार मुहब्बत, सौंदर्य और शराफत व कमीनेपन से मिली जुली यह मुलाकात कितनी मनोहर थी—उस सुहानी सुबह को दो अजनबी मुसाफिरों की छोटी सी मुलाकात संसार के इतिहास की कितनी छोटी घटना !

प्रेम की मंजिल तो क्या आती—हाँ बस की मंजिल करीब आ रही थी।

बेबी अभी तक मेरी गोद में बैठी थी। एकाएक मुझे महसूस हुआ कि काम निकल जाने के बाद बेबी को तो मैं भूल ही गया था। मैंने लज्जित होकर बेबी की बगल में गुदगुदाया—"अरे बेबी ! तुम तो कोई बात ही नहीं करतीं—क्या तुम हमसे नाराज हो ?"

वह चुप रही।

"बोलो—बेबी !"

"नहीं।" बेबी ने इनकार के तौर पर सिर हिलाते हुए कहा।

"अच्छा तो बताओ तुम्हारा नाम क्या है ?"

"मेला नाम ?"

"हाँ ।"

"सूल ता नाँ ।"

"सुलताना," औरत ने कहा ।

मुझे पहली बार यह मालूम हुआ कि वे मुसलमान हैं । सुलताना की बगलों में गुदगुदी करते हुए मेरे हाथ रुक गए । मैंने थोड़ा हिच-किचाते हुए पूछा—"क्या आप मुसलमान हैं ?"

"जी ।" यह कहकर औरत ने मेरी तरफ़ सवाल भरी नजरों से देखा ।

"नहीं, कुछ नहीं ।" मैं हँस दिया । मुझे हैरानी हुई क्योंकि देखने में वे...।

फिर जरा देर के लिए भद्दी खामोशी छा गई ।

"बात कुछ भी नहीं थी ।" मैंने खामोशी को तोड़ते हुए पूछा—"फ़साद के दिनों में आप दिल्ली में ही थीं ?"

"जी हाँ, हम सब यहीं थे ।"

मेरे दिल को न जाने क्या होने लगा । मैंने रुकी-रुकी आवाज में पूछा-"आपको कोई तकलीफ तो नहीं पहुँची ?"

औरत ने कुछ रुककर कहा-"बस कुछ न पूछिए । रुपए पैसे का बहुत नुकसान हुआ । जानें बच गईं, यही गनीमत समझिये । कनाट प्लेस में हमारी दूकानें लुट गईं । दंगाई घर में में घुस आए...लेकिन इसके पहले कि कोई नुकसान होता, पुलीस आ गई..."

मेरा सिर झुक गया......ऐसा क्यों होता है ! ऐसा क्यों होता है !

स्टैण्ड पर पहुँचकर बस रुक गई ।

यह सोचकर कि औरत अकेली है और बच्चे दो, शायद इसे मेरी मदद की ज़रूरत हो, मैंने अपनी सीट पर से उठने में देर की । लेकिन

औरत के हलके से रूखेपन से जाहिर हुआ कि उसे मेरी मदद दरकार नहीं है, इसलिए मैं एक भले आदमी की तरह उठकर चल दिया।

कुछ क़दम चलने के बाद मैंने यों ही घूमकर देखा कि वह औरत उठकर दरवाजे की तरफ बढ़ रही है। लेकिन उसके कदम उखड़े-उखड़े दिखाई देते थे। वह एक टाँग से कुछ लंगड़ा कर चल रही थी।

मैं सोचने लगा कि काश इसकी टाँग में यह दोष न होता। ऐसी सुन्दर स्त्री और यह ऐब!

एकाएक हमारी निगाहें मिलीं—शायद वह समझे बैठी थी कि मैं चला गया हूँ। मुझे एक बार फिर अपने सामने पाकर वह परेशान सी हो गई, जैसे कह रही हो—'आखिर तुमने मुझे लंगड़ाकर चलते हुए देख लिया न?'

लज्जित होकर उसने अपना गुलाबी होता हुआ चेहरा झुका लिया और फिर जैसे रूठकर मुँह दूसरी ओर कर लिया।

मैं उसे मनाने के लिए आगे बढ़ा और उसके सामने जा खड़ा हुआ। उसके चेहरे का निरीक्षण करते हुए मैंने मन ही मन कहा—देवी! तुम बहुत सुन्दर हो, तुम सुन्दरता की पुतली हो, तुम क्या जानो मैं इन कुछ मनोहर क्षणों के लिए तुम्हारा कितना कृतज्ञ हूँ!......और फिर मैंने ज़रा ऊँची आवाज़ में कहा—"माफ कीजिएगा—आप कुछ परेशान सी नजर आती हैं। क्या आपको कहीं जाना है? टाँगा लाऊँ?......या आपको किसी का इन्तजार है?"

उसने सिर पर दुपट्टा सँवारते हुए जवाब दिया—"जी, जाना तो करीब ही है...वह नहीं आए...नौकर को भेज देते...नौकर को तो आना ही चाहिए था...!"

मैंने आगे बढ़कर लड़की को गोद में उठा लिया और बोला—"चलिए मैं आपको छोड़ आऊँ!"

वह बिना कुछ कहे मेरे साथ हो गई।

अभी हम पन्द्रह बीस कदम ही चले होंगे कि वह बोल उठी—"लीजिए वह लड़का...हमारा नौकर चला आ रहा है।"

हम रुक गए। मैंने झिझकते हुए उसकी टाँग की तरफ इशारा करते हुए पूछा—"क्या यह पैदायशी खराबी है ?"

वह जरा रुकी। फिर अपनी आँखें मेरी आँखों में डालते हुए मुस्कराकर बोली—"जी नहीं......जब फसादियों ने हमारे घर पर हमला किया तो एक शूरवीर ने लाठी घुमाकर मारी थी..."

मेरा दिल बैठने लगा। काँपते हाथों से मैंने बच्ची को नौकर की तरफ बढ़ाया ..मेरे माथे पर ठण्डे पसीने की बूँदें फूट पड़ीं। काँपते हुए हाथ से जेब में रूमाल टटोलने लगा।

विदाई के समय मैंने कुछ कहना चाहा लेकिन ओंठ फड़फड़ा कर रह गए और मैं कुछ इस अन्दाज से दो कदम पीछे हटा जैसे वह पुरानी बातुलियों की सुन्दर राजकुमारी हो। मेरी आँखें झुक कर उसके कदमों पर जम गईं। मैंने कल्पना में उसके पाँव पर सिर रख दिया।

फिर उचटती हुई नजरों से उसकी तरफ देखा तो मालूम हुआ कि अब उन आँखों में न वह रूखापन था, न होंठों पर सख्ती। और फिर मुझे यों महसूस हुआ कि वह मेहरबान होती हुई किसी अभिमानी मलिका की तरह कह रही हो—"मलिका खुश हुई...मलिका ने न सिर्फ तुम्हें बल्कि तुम्हारी सारी कौम को माफ किया...!'

एक बार फिर हमने एक दूसरे की ओर कृतज्ञ दृष्टि से देखा और फिर हम एक दूसरे से दूर होने लगे, यहाँ तक कि अन्त में हमेशा के लिए ओझल हो गए।

तीन बातें

खेल सिंह गुरुद्वारा डेरा साहब के सहन में सोया होता तो उसे मुँह अँधेरे ही जागना पड़ता। चूंकि गुरुद्वारे में सवेरे ही सवेरे शब्द-कीर्तन आरंभ हो जाता था और सहन की सफाई के लिए मुसाफ़िरों को जागना पड़ता था, इसलिए वह छत पर देर तक सोया रहा। यहाँ तक कि सूरज निकल आया और तेज़ धूप में शेरे-पंजाब महाराज रंजीतसिंह की समाधि का कलस जगमगा उठा।

कीर्तन आरम्भ हो चुका था और गुरु-प्रेम के मतवाले नर-नारी एकत्र हो रहे थे। खेल सिंह को अपनी सुस्ती पर बड़ी शर्म आई। जब वह गाँव में था तब कभी इतनी देर से नहीं उठा था किन्तु जब से वह लाहौर

आया था, दिन भर आवारागर्दी करने के बाद इतना थक जाता था कि सूर्योदय तक सोया रहता ।

लेटे-लेटे उसने अपने पाँवों पर निगाह डाली। उसके पाँव बड़े-बड़े थे और टखनों की हड्डियाँ किसी बैल की हड्डियों से कम नहीं थीं। उसकी टाँगें बहुत लम्बी थीं और लम्बी दौड़ों में भाग लेने के कारण वे मज़बूत और सुडौल हो गई थीं।

कुछ देर इसी तरह लेटे रहने के बाद वह सहसा उछलकर उठ बैठा। इधर-उधर निगाह दौड़ाई। जो लोग रात को उसके साथ छत पर सोये थे उनमें से अधिकांश जा चुके थे। उसने सहन की ओर झाँककर देखा, जहाँ स्त्रियाँ छोटे-छोटे घूँघट निकाले हाथों में दोनों ओर कटोरियाँ थामे इधर-उधर घूम रही थीं।

अपने घर में भी वह इसी तरह उछलकर उठ बैठता था। यहाँ उसे कोई काम न था। पहाड़-सा दिन काटे नहीं कटता था। चार दिनों से वह गुरुद्वारे के लंगर से रोटी खा रहा था। थोड़ी-सी नक़दी, जो उसके पास थी उसमें से शर्बत और लस्सी पीने के लिए केवल कुछ आने बच गये थे और वह नहीं जानता था कि इसके बाद उसका निर्वाह कैसे होगा। वह सज्जनता का कुछ ऐसा क़ायल भी नहीं था। वह लटके हुए कल्लोंवाले महाजनों को बड़ी भयानक दृष्टि से घूरा करता था। लेकिन यह लाहौर था। एक चहल-पहल—लगातार लोगों की रेल पेल... कोई इक्का-दुक्का व्यक्ति मिल जाय तो वह एक ही धौल जमाकर सब कुछ हथिया ले। उसे याद आया कि पाँच छः महीना पहले वह और उसके साथी गाँव के एक साहूकार के घर में आधी रात के समय जा घुसे। जब कुछ हाथ न आया तो जल्दी में उन्होंने तेरह बोरियाँ गेहूँ की उड़ा लीं लेकिन पकड़ लिये गये। तीन साथी तो सज़ा पाकर बड़े घर पहुँच गये किन्तु उसका और उसके एक साथी का जुर्म प्रमाणित न हो सका... भविष्य के लिये उसने कसम तो नहीं खाई लेकिन सावधान हो गया।...

सावधानी के कुछ और भी कारण थे...एक तो गिरफ्तारी की हालत में उसे बचाने वाला कोई न था बाप मर चुका था और माँ बेचारी असहाय थी। दूसरे अमरकौर ने जिसके साथ उसे बहुत अधिक प्रेम था और जो बड़ी कोमलांगी और धार्मिक विचारों वाली युवती थी, खेल सिंह से साफ़ कह दिया था कि यदि तुम जेल चले गये तो मैं कुछ खाकर मर जाऊँगी। खेल सिंह जानता था कि वह जिद्दी लड़की जो कुछ कहती है उसे पूरा कर दिखायेगी। अन्त में उसकी प्रेमिका और उसकी माँ ने मिल-जुलकर उसे इस बात पर राजी कर ही लिया कि वह शहर में जाकर कोई नौकरी खोजे ताकि वे लोग सुख से जीवन बिता सकें।

उसकी प्रेयसी अमरकौर अपनी आयु की अपेक्षा कहीं अधिक सियानी और दूरदर्शी थी। उसने खेल सिंह के हृदय में बजाय आवारगी के घर का प्यार पैदा करने की चेष्टा की। उनका एक घर होगा। वे दोनों खूब मजे में बड़े प्यार से इकट्ठे रहा करेंगे। उनके यहाँ नन्हें-मुन्ने बच्चे पैदा होंगे। फिर उन्हें कितनी प्रसन्नता प्राप्त होगी। खेल सिंह की मन्द बुद्धि इन बातों को समझने में असमर्थ थी। उसका अक्खड़ हृदय घर के आकर्षण से उदासीन ही रहा। किन्तु जब जब शाम के धुँधलके में कस्सी की पटड़ी पर अमरकौर गीली मिट्टी का तसला सिर पर जमाये हँस-हँस कर इस प्रकार की बातें करती तो उसकी तेजी से घूमने वाली चमकदार आँखें और पतले-पतले होंठ उसे बहुत ही भले प्रतीत होते। उसकी जीभ बाछों पर खिलने लगती, मानों अमरकौर मिठाई का दोना हो। यदि वह अमर कौर का ऐसा ही प्रेमी था तो घर, घर का प्यार और बच्चे तो मामूली बातें थीं। लेकिन जब अमरकौर देखती कि वह उसकी ओर ध्यान देने के बजाय लोलुप दृष्टि से उसके गालों और होठों की ही ओर देख रहा है, तब सिटपिटाकर टूटी हुई कमानी वाली घड़ी की भाँति मौन हो जाती।

"ओहो-हो-हो।" खेल सिंह उसे दोनों बाहों में उचक लेता। उसकी

छोटी-छोटी मूँछें काँपने लगती, "भई अमरो ! देखो मुँह मत फुलाओ। धरम से, जो तुम कहोगी वही करूँगा।"

"तो मैं क्या कह रही थी...तुमसे ?" अमरकौर चमककर पूछती।

"सुनो अमरो ! मेरी मोटी अक़ल इन बातों को नहीं समझती। तुम मुझे समझाने की चेष्टा मत करो। बस मुझे इतना बता दो कि मैं क्या करूँ ?"

फिर वह उसके तमतमाते हुए गालों पर होंठ रख देता। अमरकौर उसे प्यार करने को छुट्टी भी दे देती और साथ ही फटकारती भी जाती। देखो !...कोई आ रहा है...कोई देख लेगा...अब मैं यहाँ कभी नहीं आऊँगी, इस जगह...बस देख लेना, हाँ !"

उसके घर के पास ही अमरकौर की गाय बँधी रहती थी। संध्या समय वह वहाँ दूध दुहने के लिए आती थी। जब उधर से वह गुज़रता तब उचककर एक दृष्टि उधर अवश्य डालता। यदि अमरकौर दिखाई देती तो पहले इधर-उधर देखकर इतमीनान कर लेता और फिर उसे सम्बोधित कर गुनगुनाने लगता :

नी-लच्छीये बादाम रंजिए
तेनू लैन कबूतर आया।

...जो बोले सो निहाल।' गुरू के मतवालों ने नारा लगाया। तब खेल सिंह चौंक उठा। अब प्रसाद बाँटा ही जाने वाला था। उसने इधर-उधर देखकर अपना कंघा सँभाला और अस्त-व्यस्त बालों को समेटने के बाद जल्दी से पगड़ी बाँधी और चादर कन्धे पर डाल तहमत की सिलवटें ठीक करता हुआ सीढ़ियों से नीचे उतरा। मुँह पर पानी के छींटे दिये और पगड़ी के शमले से चेहरा पोंछा। गुरुद्वारे के दरवाजे पर नीहंग सिक्खों को खड़े देख बड़े श्रद्धापूर्ण ढंग से पाँव भी धो डाले और दरवाजे की चौखट लाँघकर अन्दर घुसा। पहले एक बार उसने भूल से चौखट पर पाँव रख दिया था तो सेवादार ने उसे आँखें दिखाकर टोक दिया था।

प्रसाद बाँटा जा रहा था। उसने पहले तो सामने से हाथ बढ़ाकर प्रसाद लिया फिर पैंतरा बदलकर दूसरी ओर हाथ बढ़ाकर प्रसाद ले लिया। प्रसाद देने वाले को तनिक सन्देह हुआ। जब थोड़ा चक्कर काटकर उसने तीसरी बार हाथ बढ़ाये तब प्रसाद बाँटनेवाले को गुस्सा आ गाया।

"सर्दार जी! बड़े अफ़सोस की बात है।"

वास्तव में अफ़सोस की बात थी किन्तु वह सवेरे उसी हलुवे से नाश्ता किया करता था और ऊपर से पाव भर दही की लस्सी पी लेता था। गाँव में तो हर व्यक्ति को पाव भर हलुवा दिया जाता था किन्तु यहाँ ये शहरी लोग छः माशा हलुवा देकर रह जाते थे। अतएव खेल सिंह ने कहा—"ज्ञानी जी! इतना सा हलुवा तो हमने ज़िन्दगी में पहली बार देखा है...यह तो बस हथेलियों से चिपककर रह जाता है।"

प्रसाद बाँटने वाले के तेवर बिगड़ गये—"सरदार जी! प्रसाद आखिर प्रसाद है...इसका यह मतलब नहीं क प्रसाद ही से पेट भर लिया जाय।"

खेल सिंह इस प्रकार के तेवरों से अनभिज्ञ था। चुपचाप एक ओर सरक कर खड़ा हो गया। जब सभी मतवाले चले गए तो वह एक कोने में सीमेन्ट के ठण्डे फर्श पर पालथी मारकर बैठ गया। इतने में ज्ञानी जी दीख पड़े और एक बड़े दोनों में पाव-डेढ़ पाव हलुवा डालकर उसे दे गये। खेल सिंह चकित रह गया। जब हलुवा खाकर वह बाहर निकला तो पाव भर दही में सेर भर पानी डालकर लस्सी पीने लगा। लस्सी पीने के बाद वह सर्दार बुद्ध सिंह टिम्बर मरचेण्ट की दूकान ओर चल पड़ा। दो दिन पहले वह उनके यहाँ जा चुका था। सर्दार साहब उसके गाँव के ही रहने वाले थे। उन्हें एक नौकर की आवश्यकता थी और वे खेल सिंह को नौकरी देने पर राजी हो गये थे। किन्तु यह शब्द बुद्ध सिंह के बेटे हरनाम सिंह ने कहे थे, इसीलिए वह बुद्ध सिंह से मिलने के लिए

आज फिर वहाँ आया था। बुद्ध सिंह को व्यस्त देख कर खेल सिंह कोने में पड़ी हुई चारपाई पर बैठकर ऊँघने लगा।

खेल सिंह कुछ पढ़ा-लिखा भी था। दो कक्षाएँ पास कर चुका था। तीसरी कक्षा में एक बार मास्टर ने उसे अधिक देर तक मुर्गा बनाए रखा तो उसने पढ़ता-लिखना छोड़ दिया था। इसके अतिरिक्त उसने अँग्रेजी पढ़ने की कोशिश भी की थी। वह 'ए' से 'ज़ेड तक सारे अक्षर पढ़ लेता था और उनमें से कुछ लिख भी सकता था।

छुट्टी पाकर सर्दार बुद्ध सिंह उसकी ओर आकृष्ट हुए। उनकी दृष्टि कमजोर थी और कान भी कुछ बहरे थे। अतएव खेल सिंह को उनके निकट पहुँचकर और चिल्लाकर अपनी बात कहनी पड़ी। बड़ी मुश्किल से बूढ़े सर्दार ने बताया कि उनके पहले नौकर का ख़त कल ही आया है और वह दो-चार दिन में वापस आने वाला है। इसलिए वे उसे नहीं रख सकते।

इधर से जवाब पाकर खेल सिंह ने सबील से पानी पिया और शहर की ओर चल दिया। अब वह बिल्कुल निराश हो चुका था। उसने सोचा, आज सैर करके कल गाँव वापस चला जाय। वह बड़ी-बड़ी आशाएँ लेकर शहर आया था लेकिन अब क्या मुँह लेकर वापस जायगा? वह एक स्वच्छन्द प्रकृति का युवक था। इस प्रकार के बन्धनों और विवशताओं से कभी उसका सामना नहीं हुआ था। घूमते-घामते वह शाही मुहल्ले के निकट एक धर्मशाला में पहुँच गया। वह दिन में एक बार उस धर्मशाला में चला जाया करता था। वहाँ का ग्रन्थी एक अच्छा भला युवक था। उन दोनों में कुछ घनिष्टता हो गई थी किन्तु खेल सिंह ने उसे कभी अपने भेद न बताये थे। ग्रन्थी उसे अभी तक एक खाता-पीता जमींदार समझता था।

समय काटने के लिए खेल सिंह दोपहर को वहाँ पहुँच जाता। वे दोनों फर्श पर ठण्डे पानी का छिड़काव करते और बिजली के पंखे के

नीचे ईंटों के बने हुए ठण्डे फर्श पर लेट जाते। इधर-उधर की गप्पें हाँकते रहते। नींद आती तो सो भी जाते।

आज वह समय से कुछ पहले ही पहुँच गया था। जब सीढ़ियाँ चढ़ कर हाल में प्रवेश करने लगा तब उसने देखा कि बग़ल वाले कमरे में ग्रन्थी रीठों के पानी से सिर धो रहा है। उसे देख ग्रन्थी ने ठहाका लगाया। दो-चार बातों के बाद खेल सिंह अन्दर चला गया। उसने सुराही से गिलास में पानी उँडेला और धीरे-धीरे पीने लगा। वास्तव में उसे बड़ी भूख लग रही थी। कई दिनों से वह लंगर की रोटियाँ खा रहा था। अब उसे शर्म महसूस हो रही थी। उसने सोचा कि अब वह कम से कम एक जून का भोजन ही वहाँ नहीं करेगा।

पंखा छोड़कर उसने पगड़ी उतारी और फर्श पर लेट गया। ग्रन्थी नहाने के साथ-साथ बातें भी किये जाता था। उसकी बेतुकी बातों से खेल सिंह अपनी भूख को बहलाने लगा। थोड़ी देर बाद ग्रन्थी अपने लम्बे-लम्बे बाल निचोड़ता हुआ भीतर आया और एक बड़े मजे की बात शुरू कर दी। इतने में एक आदमी उन्हें भोजन के लिए बुलाने आया। श्राद्धों के दिन थे। खेल सिंह मन ही मन प्रसन्न हुआ कि आज पेट भर भोजन मिलेगा। मामूली इनकार के बाद वह भोजन पर बैठ गया। भोजन कर चुकने के बाद उसे ऐसी गहरी नींद आई कि शाम तक उसकी आँख न खुली।

उठते ही उसने नल के ठण्डे पानी से स्नान किया तो तबीयत खिल गई। ग्रन्थी ने शक्कर के ठण्डे शरबत से सत्तू घोल रखा था। उसने आँखें बन्द करके दो लोटे लिये। वह सत्तुओं का बड़ा शौकीन था।

दोबारा पगड़ी बाँधकर उसने ग्रन्थी से हाथ मिलाया और बतलाया कि उसका काम खतम हो चुका है। और वह कल अपने गाँव लौट रहा है। इस पर ग्रन्थी ने बड़े तपाक से हाथ मिलाया और उससे कहा कि जब कभी वह लाहौर आये तो उससे अवश्य मिले।

यहाँ से वह बाजार की सैर करने के लिए चल खड़ा हुआ। अनार-कली में घूमता हुआ वह नीला गुम्बद जा निकला। वहाँ उसने लकड़ी के बड़े-बड़े तख्तों पर विभिन्न प्रकार के चित्र लगे देखे। एक चित्र में पहाड़ का दृश्य दिखाया गया था। पहाड़ में जगह-जगह बिल बने हुए थे। इधर-उधर पत्थरों पर बड़े-बड़े चूहे दौड़ते हुए दिखाये गये थे। नीचे लिखा था :—

"जापानी चूहे हैं, इन्हें मार भगाओ।"

यह चित्र देख कर खेल सिंह बड़ा प्रसन्न हुआ। उन चूहों की आकृति बड़ी ही हास्यास्पद थी। यानी शरीर तो चूहे की भाँति और सिर मनुष्यों के से। कुछ चूहों ने ऐनक भी लगा रखी थी। वह सोचने लगा कि जब वह गाँव में जाकर अमरकौर से इन चूहों की चर्चा करेगा तो वह कितनी प्रसन्न होगी, कितनी विस्मित होगी। फिर उसने दिमाग पर जोर डाला कि आखिर ये जापानी हैं कौन? ये कैसे विचित्र चूहे होते हैं। उसने आज तक ऐसे चूहे नहीं देखे। उसने पगड़ी सरकाई, सिर खुजाया, बहुत सोचा लेकिन कुछ समझ न सका।

इतने में किसी ने उसके कन्धों पर हाथ रख दिया। उसने घूमकर देखा कि उसका एक पुराना दोस्त हर्षा सिंह था। धूप में उसका चेहरा काले बूटों की भाँति चमक रहा था। आधी पगड़ी सिर पर बँधी हुई थी और आधी इधर-उधर झूल रही थी। खेल सिंह उछल कर उससे लिपट गया।

हर्षा सिंह की खेल सिंह से बड़ी घनिष्टता रही थी। वह बलिष्ठ शरीर का साहसी युवक था। उसे ऐसे-ऐसे हथकण्डे याद थे कि बड़े-बड़े उस्ताद उसका लोहा मानते थे। दोनों बचपन ही से बहुत गहरे दोस्त थे। हर्षा सिंह कबड्डी बहुत अच्छी खेलता था। उसका शरीर मछली की भाँति चिकना और खरगोश की भाँति फुर्तीला था। वह भेड़िये की तरह खूँख्वार और मक्कार था। जवान होते ही उसने बड़े पैमाने पर डाके

डालने शुरू कर दिये थे। उसने इलाके के एक नामी डाकू सुन्दर सिंह से भी मेल-जोल पैदा कर रखा था और उन दोनों ने मिलकर बड़े-बड़े मैदान मारे थे। बाद में सुन्दर सिंह को फाँसी हो गई और हर्षा सिंह लापता हो गया। आज उसे अपने सामने देखकर खेल सिंह को बड़ी प्रसन्नता हुई। दोनों एक हलवाई की दूकान में घुसे। हर्षासिंह ने दो सेर मिठाई खरीदी और मिठाई खाने के बाद दोनों ने पेट भर कर लस्सी भी पी।

हर्षा सिंह ने बताया कि उसने जिला अमृतसर में दो ऐसे घर ताड़ रखे हैं जहाँ से माल उठा लाना कुछ बड़ा कठिन नहीं है। यह सुनकर खेल सिंह बड़ा प्रसन्न हुआ। इस प्रकार की बातचीत से उसे गहरी दिलचस्पी थी। उसने भविष्य की बड़ी सुन्दर कल्पना की। और उन दोनों में निश्चय हो गया कि वे कल फिर इसी जगह मिलेंगे। यह निश्चय कर वे दोनों एक दूसरे से विदा हो गये।

हर्षा सिंह के चले जाने के बाद थोड़ी देर तक खेल सिंह को ऐसा अनुभव हुआ मानो उसके हृदय पर से भारी पत्थर हट गया हो। किन्तु जब उसे अमरकौर का ख्याल आया तो वह कुछ निराश-सा हो गया। यदि उसे मालूम हो गया कि मैंने फिर डाके डालने शुरू किये हैं तो वह सचमुच बिगड़ जायगी। उसे चोर की पत्नी बनना कभी पसन्द न था। इस पर उसने मन ही मन अमरकौर को दो-तीन गालियाँ भी दी...... लेकिन वह उससे प्रेम करता था, इसलिए उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता था। उसने फिर गम्भीरता से सोचना शुरू किया। यदि यह सम्भव हो सके कि वह केवल एक बार डाका डाल ले फिर चाहे जिन्दगी भर के लिए इस पेशे को छोड़ दे। लेकिन यदि वह गिरफ्तार हो गया तो उसका जीवन बरबाद हो जायगा। अमरकौर से हाथ धोने पड़ेंगे। माँ को अलग दुख होगा और वह स्वयं जेल में पड़ा सड़ेगा।

इसी उधेड़-बुन में वह चला जा रहा था। यद्यपि यह काम बड़ा

कठिन था किन्तु वह स्वस्थ और मजबूत होने के बावजूद कुटिल नहीं था। वह नहीं जानता था कि आखिर क्या करे ! सड़कों पर असँख्य मोटरें, बहुमूल्य वस्त्र धारण किये पैसे वाले लोग, बड़ी-बड़ी दुकानें और ऊँचे-ऊँचे मकान देखकर वह हैरान हो रहा था। आखिर इन सब के लिए इतना रुपया कहाँ से आता है ! वह क्यों अपनी प्रेयसी के साथ शान्ति-पूर्ण जीवन व्यतीत करने में असमर्थ है ! इसी प्रकार के विचारों में लीन वह एक बाग़ में जा निकला। एक रौस के किनारे बड़े-से बोर्ड पर मोटे-मोटे अक्षरों में लिखा था:—

'वीरता का पुरस्कार!'

वह सोचने लगा कि 'पुरस्कार' क्या होता है। फिर वह गौर से उस पदक की ओर देखने लगा जिसके नीचे लिखा था—'विक्टोरिया क्रास'—मंगल सिंह, आठवीं राजपूताना राइफल को वीरता के पुरस्कार स्वरूप विक्टोरिया क्रास प्रदान किया गया।'

वह नहीं जानता था कि विक्टोरिया क्रास होता क्या है और कैसी बहादुरी पर दिया जाता है। और फिर विक्टोरिया क्रास मिलने के बाद क्या होता है।...ऊब कर वह परे एक बेंच पर जाकर बैठ गया। उसे अपनी बुद्धिहीनता पर बहुत ही दुख हुआ। वह फिर अपने विचारों में खो गया और अपने माथे को उँगलियों से बजा-बजाकर सोचने लगा कि वह क्या करे और क्या न करे वह हर्षा सिंह से दोबारा मिले या न मिले।

खेल सिंह घास पर लेट गया। एक बाजू सिर के नीचे रख लिया, दूसरा माथे पर और अधखुले नेत्रों से दूर-दूर तक देखने लगा। सामने ठण्डी सड़क के पहले सिरे पर बहुत लम्बा-चौड़ा तख्ता लटका हुआ था। उस पर एक सुन्दर स्त्री का चित्र बना था। उस स्त्री का चेहरा उसके पूरे क़द के बराबर था। बड़ी-बड़ी आँखों और लाल-लाल गालों वाली वह अत्याधिक सुन्दर स्त्री थी। वह चकित हो कर सोचने लगा कि आखिर यह किस स्त्री का चित्र है। नीचे अंगरेजी के मोटे-मोटे अक्षरों में कुछ

लिखा था। उसने सोचा, शायद यह किसी मेम की तस्वीर है, यद्यपि उसने देशी कपड़े पहन रखे थे। उसने सुना था कि अब मेमें भी देशी कपड़े पहनने लगी हैं किन्तु इस तस्वीर को बाजार में टाँगने की क्या आवश्यकता थी। पर-पुरुषों के सामने अपने सौन्दर्य का प्रदर्शन क्यों किया गया। फिर वह चित्र की लम्बाई-चौड़ाई को देख-देखकर हैरान होने लगा—"बल्ले-बल्ले" उस बोर्ड के साथ एक और जो छोटा-सा तख्ता था उस पर मोटे-मोटे अक्षरों में कुछ लिखा था। उसने माथे से हाथ हटाकर आँखें और भी अधिक खोल लीं। देर तक ग़ौर करने के बाद वह पढ़ सका :—

"इण्डियन आर्म्ड कोर को आप जैसे नवजवानों की जरूरत है।" वह उछल पड़ा। यह इण्डियन आर्म्ड कोर नया ही नाम है। हर-बंस कौर, प्रेम कौर, जीत कौर तो उसने सुन रखे हैं लेकिन इण्डियन आर्म्ड कोर बिलकुल नया नाम है। शायद किसी अँगरेज़ औरत का नाम हो। इधर-उधर कुछ लोग घूम रहे थे। उसके मन में आई कि किसी से उस औरत के विषय में पूछे। लेकिन औरत का मामला था, इस तरह की बात निर्भीकता से पूछते हुए उसे शर्म सी महसूस हुई। अतएव उसके मन की बात मन ही में रह गई। आखिर उसने अपनी चादर को तह करके उसे सिर के नीचे रखा और लेट गया। ठन्डी-ठन्डी हवा चल रही थी। हवा में एक सुखद-सी नमी थी। उसे नींद-सी आने लगी। लेटे-लेटे वह इन्डियन आर्म्ड कोर के बारे में फिर सोचने लगा। धीरे-धीरे उसकी समझ में कुछ-कुछ आने लगा कि इस स्त्री का चित्र टाँगने का क्या उद्देश्य है। उसने सुन रखा था कि लाहौर में बड़ी-बड़ी बदमा-शियाँ होती हैं। लेकिन क्या कोई स्त्री इतना साहस कर सकती है कि अपनी तसवीर इस तरह बाजार में लगाकर दूसरे तख्ते पर लिखवा दे कि "इन्डियन आर्म्ड कोर को आप जैसे नवजवानों की जरूरत है।"

उसने परियों की कहानियों में एक सुन्दर रानी का किस्सा सुना था।

उसकी जवानी बस एक कयामत थी। जो भी उसकी ओर आँख उठाकर देख लेता, अपने होश-हवास खो बैठता। वह नित्य नये नौजवानों से गाँठ जोड़ा करती और जब वे बेकार हो जाते तो उन्हें मगर-मच्छों के तालाब में फेंकवा देती...किन्तु वह तो कहानी थी लेकिन यह औरत ?—आखिर इसे नौजवानों की क्या जरूरत है ? क्या इसका चाल-चलन भी खराब है ? क्या यह भी नौजवानों को बेकार करके परे फेंक देती होगी ? क्या सरकार ने कोई ऐसा क़ानून नहीं बनाया जो ऐसी बदचलन और नव-जवानों को बरबाद कर देने वाली स्त्रियों पर लागू हो सके ?

धीरे-धीरे बाग में लोगों की उपस्थिति बढ़ने लगी। काली-काली आयाएँ बच्चों की गाड़ियाँ ढकेलती हुई आईं। कुछ शौकीन-मिज़ाज कालेज के छोकरे अंगरेजी में गिट-पिट करते हुए इधर-उधर मटर-गश्ती करने लगे। कई बूढ़े खूसट अपनी चिकनी खोपड़ियों पर हाथ फेरते हुए बेंचों पर आ बैठे। पास के पेड़ से रेडियो की आवाज़ आने लगी। उसने पहले भी रेडियो सुना था। लेकिन बाग़ में सहसा रेडियो की आवाज़ सुनकर वह चौंक पड़ा। इधर-उधर के लोग भी रेडियो वाले पेड़ के पास जमीन पर बैठ गये। उसने अपनी ढीली पगड़ी को ठीक किया और सँभल बैठा। इतने में रेडियो से 'मिर्जा साहबान' के बोल सुनाई दिये। उसके मन पर मस्ती छा गई। एक छाबड़ी वाला उधर आ निकला। उसने जेब टटोलकर देखा, एक टका बच गया था। अब यही उसकी कुल पूँजी थी। उसने छाबड़ी वाले को आवाज़ देकर दो पैसे के कचालू लिए और उन्हें तिनके में फंसा-फंसाकर खाने लगा।

कचालू खाने के बाद वह उठा। नल से पानी पिया और मूँछें पोंछता हुआ रेडियो वाले पेड़ की ओर बढ़ा। वहाँ एक बड़ा तख्ता लगा हुआ था, जिस पर नीचे ऊपर तीन आदमी भागे चले जा रहे थे। उनके पीछे तीन आदमी बन्दूके थामे उनको दौड़ा रहे थे। हर जोड़े के साथ किनारे पर लिखा था :—

"इटली में दुश्मन को भगाने वाला कौन ?

पंजाबी जवान !"

"जर्मनों को कौन भगा रहा है ?

पंजाबी जवान !"

"जापानियों को कौन मार भगायेगा ?

पंजाबी जवान !"

वह ग़ौर से उन तस्वीरों को ओर देखने लगा। कैसी हास्यास्पद सूरतें बना रखी हैं। ऐसा लगता है मानो भागने और भगाने वाले लकड़ी के बने हों। वह देर तक आँखें फाड़कर बोर्ड की ओर देखता रहा। फिर उसने एक लम्बी जँभाई ली और ज़ोर से खाँसकर बलग़म उगला। फिर आँखें झपकाता हुआ रेडियो की ओर बढ़ा। आवाज़ पेड़ की टहनियों में से आ रही थी। उसने सोचा कि अगर रात को चढ़कर रेडियो उठा लिया जाय तो कैसा रहे। वह पेड़ के तने और टहनियों पर नज़र दौड़ा-दौड़ाकर ऊपर चढ़ने की सम्भावनाओं पर विचार करने लगा। जब उसने इधर-उधर घूमकर देखा तो उसे मालूम हुआ कि पेड़ पर सिवाय भोंपू के और कुछ भी नहीं है। एक बाबू ने उसे बताया कि रेडियो परे सरकारी कमरे में बन्द है। वहाँ से बिजली का एक तार पेड़ से बाँध दिया गया है और तार के आगे भोंपू लगाया गया है।

खेल सिंह निराश होकर एक ओर बैठ गया। यहाँ भी छोटे-छोटे बोर्ड लगे थे। एक पर लिखा था—'हिन्दुस्तान को बचाओ।' उसने अपने कसे हुए जूड़े को ढीला किया और सोचने लगा कि हिन्दुस्तान कहाँ है। वह यू. पी. के लोगों को हिन्दुस्तानी समझता था और बस इतना जानता था कि पूर्व की तरफ़ कोई देश है जिसे लोग हिन्दुस्तान कहते हैं। वहाँ के लोग दुबले-पतले होते हैं। उनकी ज़बान भी ख़ूब चटर-पटर-सी होती है। फिर वह मन ही मन में कहने लगा, न जाने बेचारे

हिन्दुस्तान पर क्या आफ़त आ पड़ी है ! धीरे-धीरे वह फिर अपनी उलझनों में गुम हो गया।

वह तिनके से दाँत कुरेदने लगा। अब उसे सख्त भूख लग रही थी। उसने सोचा कि आज वह ज़रा जल्द ही गुरुद्वारे पहुँच जायगा। नहीं तो अगर भोजन का समय निकल गया तो उसे फिर भूखा रहना पड़ेगा। लाहौर में उसका जी नहीं लगा। उसे इस बात का बड़ा रंज था कि उसे कोई नौकरी नहीं मिल सकी। उसके पास बैठा हुआ लड़का एक दूसरा बोर्ड पढ़ने लगा :—

"हिन्दुस्तान की जय।"

"आ जाओ नौजवान ! दुश्मन भाग रहा है। यही मौका है उसका पीछा करने का।"

एक सिपाही लोहे की टोपी पहने और दोनों हाथ उठाये ललकार रहा था। उसके एक हाथ में बन्दूक थी दूसरा खाली था। उसके पीछे-पीछे और सिपाही भी चले आ रहे थे।

खेल सिंह ने फिर हाथ फैलाये और मुँह खोलकर एक लम्बी-सी जँभाई ली।

उसके चौड़े मुँह में मोटे-से मोटे दुश्मन की खोपड़ी आ सकती है और उसकी फौलादी उंगलियाँ तगाड़े से दुश्मन का टेटुआ दबा सकती हैं। लेकिन दुश्मन था किधर !

उसकी भूख तेज़ होती जा रही थी। दिमाग़ में विचारों का उथल-पुथल बढ़ता जा रहा था। लोग शोर मचा रहे थे। रेडियो गीत सुना रहा था। कुत्ते भौंक रहे थे...वह चादर झाड़कर उठ खड़ा हुआ। अब वह अधिक सहन नहीं कर सकता था। वह गुरू के लंगर में जल्दी से जल्दी पहुँच जाना चाहता था।

जब वह बाग के फाटक से निकलने लगा तो उस पर एक फौजी सिक्ख की तस्वीर बनी हुई थी, जिसके गालों पर खूब चर्बी चढ़ी थी।

खुशनुमा दाढ़ी खूब कस कर बँधी हुई थी। और सिर पर गोली सी दोहरी पगड़ी बँधी थी।...उसके एक हाथ की तीन उंगलियाँ उठी हुई थीं दूसरे हाथ की एक उँगली से वह उन उंगलियों की ओर इशारा कर रहा था। नीचे लिखा था:—

तीन बातें—

"अच्छी खूराक !"

"अच्छी तनख्वाह !!"

"जल्दी तरक्की !!!"

और नीचे लिखा था :—

"भोजन मुफ्त मिलता है। वर्दी, कपड़े, जूते और तनख्वाह सब कुछ मुफ्त ही मुफ्त। घर जाने के लिए छुट्टियाँ भी पूरी तनख्वाह पर।"

खेल सिंह कुछ देर तक उस तख्ते की ओर घूरता रहा फिर अपनी लम्बी जबान होंठों और बाछों पर ऐंठी...और फिर पता पूछता हुआ भरती के दफ्तर की ओर चल पड़ा।

काली तित्तरी

काली तित्तरी चरॉं विच बोले
ते उड्डी नूँ बाज पै गया ।

× × ×

बड़े मज़े में मौला ने चिलम में तम्बाकू और उसके ऊपर सुलगते हुए उपले के दो टुकड़े जमा दिये और फिर मारे सर्दी के दाँत कटकटाता हुआ चारपाई पर चढ़ टाँगों पर धुस्सा डाल मगन हो गया ।

रोटी खाने के बाद उसे हुक्के की बड़ी तलब होती थी। उसने आँखें मूँदकर दो-चार कश ही खींचे होंगे कि दरवाजे पर दस्तक की आवाज़ सुनाई दी। यह दस्तक उसे बड़ी बुरी लगी। उसने कड़े स्वर में पूछा—"कौन है ?"

जवाब में फिर खट-खट की आवाज़ सुनाई दी।

पीर दा ठट्टा छोटा-सा गाँव था। ठीक उसके सिरे पर मौला का कच्चा मकान था जहाँ वह अपनी बूढ़ी माँ और एक विधवा बहन सहित रहता था। गाँव में घुसते समय उसका मकान सामने पड़ता था इसलिए राहगीर उसी से किसी के मकान का पता या अगले गाँव का रास्ता पूछने के लिए दरवाजा खटखटाते थे। लेकिन उस समय आधी रात हो रही थी। और फिर, जाड़ों के मौसम में तो शाम ही से गाँव पर सन्नाटा छा जाता था। न जाने ऐसे बेवक्त कौन आ धमका था। जब मौला को विश्वास हो गया कि उसे उठना पड़ेगा तब उसने हुक्के की नाल एक ओर को हटाई और धुस्से को सभाँलता हुआ दरवाजे की ओर बढ़ा।

दरवाजा खोला तो देखा कि बाहर अन्धकार में मँझोले कद का एक सिख खड़ा है। पगड़ी उसके सिर पर मोटे रस्से की तरह लिपटी हुई थी और उसके एक सिरे से उसने अपने चेहरे का, आँखों के अतिरिक्त, निचला भाग छिपा रखा था। उसका रंग साँवला था, भवें मोटी घनी और लम्बी थीं। आँखें तेज और चमकीली। उसकी नाक की जड़ के पास आँखों के नीचे महीन और गहरी रेखाओं का जाल सा बुना हुआ था।...

मौला कोई कटु वाक्य कहते कहते रुक गया। उसने भारी तथा शुष्क स्वर से पूछा—"तुम कौन हो?"

नवागन्तुक ने क्षण भर उसकी ओर पैनी दृष्टि से देखा और फिर बोला—"मैं भँबोड़ी गाँव से आ रहा हूँ।"

भँबोड़ी? वह तो यहाँ से बीस कोस की दूरी पर है। पर तुम ऐसे बात कर रहे हो जैसे पड़ोस के गाँव से आ रहे हो..."

नवागन्तुक ने बेचैनी से पहलू बदलते हुए कहा—"मैं डाची पर आया हूँ।"

मौला को उसके बोलने का ढंग पसन्द नहीं आया। उसने बेपर-

वाही से कहा—"खैर, मुझे इससे क्या मतलब । सवाल तो यह है कि तुम मेरे पास क्यों आये हो ?"

"मुझे बग्गासिंह भत्रोड़ी वाले ने भेजा है ।"

यह सुनकर मौला चौकन्ना हो गया । उसने हाथ बढ़ाकर नवागन्तुक का बाजू थाम लिया और जल्दी से धीमे स्वर में बोला—"तो यहाँ खड़े क्या कर रहे हो, अन्दर चले आओ न !"

नवागन्तुक एक ही जस्त में अन्दर आ गया । वह बड़ा मजबूत दिखता था । उसने शरीर पर मोटा खेस लपेट रखा था ।

मौला ने ड्योढ़ी में से झाँककर भीतर की ओर देखा और इस बात का इतमीनान कर लिया कि उसकी बहन और माँ सबसे पीछे वाली कोठरी में रजाइयों में घुसी पड़ी हैं तो उसने आँगन वाला द्वार बन्द कर लिया और नवागन्तुक से मुखातिब होकर बोला—"मैंने दरवाजा बन्द कर दिया है ताकि हमारी बातों की आवाजें अन्दर तक न पहुँचे ।"

नवागन्तुक कुछ नहीं बोला । मौला ने तेजी से बाहर वाले दरवाजे में से झाँककर इधर-उधर निगाह दौड़ाई । फीकी चाँदनी में दूर जोहड़ का पानी पिघले हुए सीसे की टिकली की भाँति दीख रहा था । हवा बन्द थी । और दूर-दूर तक फैली हुई झाड़ियाँ निश्चल खड़ी थीं । यह देखकर मौला ने अपने दाँतों में अटकी हुई हुक्के की नाल को होठों में दबोचकर बड़ी निश्चिंतता से गुड़-गुड़ की आवाज की और फिर द्वार बन्द करके लौटा । नवागन्तुक ड्योढ़ी के अन्दर बनी हुई खुरली से टेक लगाए खड़ा था ।

"भूख लगी हो तो बताओ । खाने-खूने का कुछ बन्दोबस्त करूँ ।"

"नहीं मैं खाना खाकर आया हूँ । पास के गाँव से......बस अब काम हो जाना चाहिये ।"

"क्यों इतनी जल्दी भी क्या है ?"

"मुझे फौरन लौटना होगा।"

"क्यों ?"

"बग्गे ने यही कहा था। मेरा यहाँ रहना ठीक नहीं ! किसी ने देख लिया तो शक होगा, खामखाह।"

"डाची कहाँ है ?"

"डाची को साथ वाले गाँव में अपने एक दोस्त के यहाँ छोड़ आया हूँ।"

"और बन्दूक़ ?"

"बन्दूक़ मेरे पास है !"

मौला को आश्चर्य हुआ कि इतनी बड़ी बन्दूक़ इसने कहाँ छिपा रखी है।

इसपर नवागन्तुक ने तनिक झुँझलाकर खेस के नीचे से दोनली बन्दूक दिखाई जिसकी दोनों नलियाँ अलग करके उसके कुन्दे सहित अँगोछे में लपेट रखी थीं और फिर उस पर रस्सी कसकर बाँध दी थी।

अब मौला समझा। सिर हिलाकर बोला—"अच्छा तोड़कर बाँध रखी है।"

"हाँ, वैसे तो छिप नहीं सकती न।"

"ठीक !"

"अब जल्दी करो"

"और कारतूस ?"

नवागन्तुक के माथे पर बल पड़ गये। बिगड़ कर कहने लगा—"देखो, मैं बिलकुल तैयार होकर आया हूँ। बस अब मुझे मौके पर ले चलो।"

"अच्छी बात है।' यह कहकर मौला ने हुक्के के दो-तीन खूब गहरे-गहरे कश लिये। फिर धुस्से को शरीर पर खूब अच्छी तरह लपेटा और

मुसकराकर बोला—"उस्ताद तुम्हें मेरे घर का पता कैसे लगा ? किसी से पूछा था ?"

"मैं ऐसा कच्चा नहीं हूँ कि किसी से तुम्हारे घर का पता पूछता फिरूँ। इस तरह तो तुम पर शक किया जा सकता था। बग्गे ने मकान का ठीक-ठीक पता और तुम्हारा हुलिया बता दिया था और कहा था कि वह तुम्हारी राह देखता होगा।"

"हाँ-हाँ, क्यों नहीं।" मौला हँसकर बोला—"बग्गू यह काम किसी मामूली आदमी को नहीं सौंप सकता था...अच्छा तो लो मैं चला। अभी दो-तीन और आदमियों को भी बुलाना है।"

"बुला लाओ...पर मैं उनको अपनी सूरत नहीं दिखाऊँगा।"

"बेशक-बेशक ! जरूरत भी क्या है ?"

यह कहकर मौला चलने लगा तो नवागन्तुक बोला—"हुक्का लेते जाओ।"

"क्यों ?"

"हुक्का गुड़गुड़ाते चलोगे तो शक नहीं होगा देखने वालों को।"

"यह तो सचमुच खरी बात कही तुमने।"

मौला ने हुक्का उठाया। नाल दाँतों में दबाई और चिलम से बँधी हुई चिमटी झुलाता, लुंगी लहराता ड्योढ़ी से बाहर निकल गया।

नवागन्तुक ने उसके जाते ही किवाड़ भीतर से बन्द कर लिये और सरकण्डों का बना हुआ बालिश्त से ऊँचा मोढ़ा घसीटकर सुलगते हुए उपलों से भरी मिट्टी की अँगीठी दोनों टाँगों के बीच रखकर बैठ गया।

मौला के चुओं की भाँति बल खाती हुई सुनसान और तंग गलियों में से होता हुआ अन्त में एक पुराने कच्चे मकान के आगे खड़ा होकर आवाजें देने लगा—"सौदागरा ! ओए सौदागरा !"

कोई उत्तर न मिलने पर उसने फिर हाँक लगाई—"ओए सौदागरा ! सौदागरा होए !!"

फिर वह इतमीनान से हुक्का गुड़गुड़ाने लगा। दिमाग़ में जो तरावट पहुंची तो उसका दिल नवागन्तुक को दुआएँ देने लगा, जिसने हुक्का उसके साथ भेजवा दिया था।

मकान का दरवाजा खुला। भीतर से घने और काले बालों वाला एक नौजवान बाहर निकला। उसने पहले तो मौला की ओर स्वप्निल दृष्टि से देखा किन्तु जब पहचाना तो उसकी आँखें पूर्ण रूप से खुल गईं।

मौला ने पीले-पीले दाँतों का प्रदर्शन करते हुए कहा—"आवाजें दे देकर मेरा तो गला भी बैठ गया। कहाँ...घुसा पड़ा था लाँ के मौड़े ?"

इस पर दोनों हँसने लगे।

सौदागर ने पूछा—"हाँ बे बता !"

जवाब में मौला चुपचाप हुक्का गुड़गुड़ाता रहा फिर उसने शरारत और अर्थपूर्ण ढंग से भौं ऊपर चढ़ाकर एक आँख इस तरह मारी जैसे ढेला खींचकर मार दिया हो।

सौदागर समझ गया।

"चलो।" मौला ने कहा।

"ठहरो, मैं ओढ़ने के लिए तो कुछ लाऊँ अन्दर से "

वह भाग-भागा भीतर गया और काले रंग की एक लोई शरीर पर लपेटता हुआ तुरन्त लौट आया।

दोनों वहाँ से आगे बढ़ गये। गाँव पर पूर्ण निस्तब्धता छाई थी। कहीं-कहीं कोई खुजली की मारी कुतिया दाँत निकालती हुई दुकान के एक तख्ते से निकलकर दूसरे तख्ते के नीचे दुबक जाती। या गारे के बने हुए मकानों की दीवारों के नीचे छछूँदरे जान छिपाती फिरती थीं।

दबे-दबे स्वर में बातें करते हुए वे दोनों बढ़ते चले गये। उन्होंने मेला सिंह को उसके मकान से और लब्भू को ढोरों के तबेले से बुलाकर अपने साथ लिया और मौला के मकान पर वापस पहुँच गये।

भीतर से नवागन्तुक ने द्वार खोला। उसका चेहरा पगड़ी के शमले

में छिपा हुआ था। सौदागर लभ्भू और मेला सिंह अभी नौजवान थे। इन कामों में नये-नये दाखिल हुए थे। नवागन्तुक का नक़ाब के पीछे छिपा हुआ चेहरा और जिन्न की भाँति घनी भौंहों के नीचे उसकी चमकती हुई आँखों को देखकर उनके शरीर में सनसनी की लहरें दौड़ गईं।

नवागन्तुक ने जल्दी से उनके चेहरों का निरीक्षण किया फिर उसने खेस से हाथ निकाल कर इशारा किया कि अब देर किस बात की है!

उसका हाथ भी काला था। उस पर मोटे-मोटे बाल उगे हुए थे।

मौला ने उत्तर दिया—"देर किसी भी बात की नहीं है।"

"तो अब चले?"

"जरूर।"

मौला ने आगे क़दम बढ़ाया और शेष सब लोग उसके पीछे-पीछे हो लिये। नवागन्तुक के क़दम बड़ी फुर्ती से उठ रहे थे और उसकी दोनों पुतलियाँ क्षण भर को भी एक जगह नहीं रुकती थी। माला के दानों की भाँति खटाखट घूमती रहतीं।

दूर से कभी-कभार चौकीदार के चिल्ला उठने की आवाज यों सुनाई दे जाती थी मानो वह कोई भयानक स्वप्न देखकर बड़बड़ा उठा हो। उस आवाज और अपने बीच काफी अन्तर रखते हुए वे बड़ी तेजी से बढ़ते चले जा रहे थे।

गाँव से निकल कर लगभग पौन मील की दूरी पर स्थित पीरों वाले रहट पर पहुँच कर वे रुक गये। मौला के इशारे पर सौदागर ने रहट के निकट वाले बाड़े में घुसकर एक मरियल बैल को बाहर निकाला और फिर वे उसे हाँकते हुए तनिक दूर ले गये और गाँव के एक बड़े महाजन के खेत में उसे छोड़ दिया। वे स्वयं बबूल के पेड़ की छिदरी छाया के नीचे जा खड़े हुए।

आकाश पर पूर्णिमा का चाँद चमक रहा था।

नवागन्तुक सिख ने फुर्ती से अपनी बग़ल में से बन्दूक का अंजर-पंजर निकाला। नलियों को उसके कुन्दे से जोड़ा और नीचे की ओर काठ की खपच्ची जमाई और हथेली की एक ही चोट से उसे अपनी जगह पर जमा दिया।

फिर उसने दोनों नलियों में ठोस गोलियों वाले कारतूस भरे और एक निगाह मरियल बैल पर डाली जो ठन्डी हवा में कान फड़फड़ाता और पतली तथा कमजोर दुम को हिलाता घास पर मुँह मार रहा था। फिर उसने निशाना बाँध कर लबलबी दबाई। गोली खाते ही बैल बिना किसी संघर्ष के जमीन पर ढेर हो गया। यह गोली तो शेर को ठन्डा कर देने के लिए काफ़ी थी किन्तु बन्दूकची ने सन्तोष के लिये एक दूसरी गोली भी उसकी गर्दन में धँसा दी।

बैल का काम तमाम होते ही नवागन्तुक सिख ने अपनी और भी तेजी से चमकती हुई आँखों से मौला और उसके साथियों की ओर देखा फिर भारी स्वर में बोला—"अच्छा, अब मुझे चलना चाहिए। सुबह से पहले वापस पहुँचना जरूरी है।"

मौला ने हाथ बढ़ाकर कहा—"अच्छी बात है।"

नवागन्तुक सिख चारों से हाथ मिलाते हुए एक बार फिर भारी स्वर में बोला—"साब सलामत।"

"साब सलामत।"

नवागन्तुक ने फिर अपनी बन्दूक को तोड़ ताड़ कर उस पर कपड़ा लपेट दिया और फुर्ती से डग उठाता हुआ तनिक फीकी चाँदनी में गायब हो गया।

वे चारों कुछ देर तक उसे जाते हुए देखते रहे फिर वे बैल की ओर बढ़े और देखा कि वह बिलकुल मर चुका है।

अब वे जल्दी-जल्दी गाँव की ओर बढ़े और गाँव के निकट पहुँच कर उन्होंने एकदम पकड़ो-पकड़ो की पुकार लगाई।

लोगों को डाकुओं का डर लगा रहता था। अतएव बहुत बड़ी संख्या में ग्रामवासी घरों से बाहर निकल आये। और तब उन्हें पता चला कि बेचारे मौला का बैल गोली से मार दिया गया।

मौला देर तक गोली मारने वाले की माँ और बहनों से अपना रिश्ता गाँठता रहा और जब उसका गला बैठ गया तो सूर्योदय से पहले पहले वह छः कोस परे थाने में इस बात की रिपोर्ट लिखाकर गाँव लौट आया।

× × ×

पीर का ठट्टा गाँव छोटा था किन्तु यहाँ का सबसे धनी घराना मान्हा दूर दूर तक मशहूर था। आस-पास के गाँवों में भी उनके आसामी मौजूद थे। अब मान्हों का दबदबा कुछ कम हो गया था क्योंकि पीर का ठट्टे और आसपास के कुछ गाँवों के बदमाशों ने मिल जुल कर खामखाह मुकदमेबाज़ी के चक्कर में डालकर उन्हें खोखला बना दिया था। और अब उनके लिये मौला ने एक नई मुसीबत खड़ी कर दी।

जाड़ों का सूर्य कुछ अधिक ऊँचा नहीं होने पाया था कि इलाके के थाने से एक लम्बा-तड़ंगा मुसलमान थानेदार घोड़े पर बैठा दो सायकिल सवार सिपाहियों को साथ लिए पीर का ठट्टा में आ धमका।

गाँव के बाहर एक बड़े और वृद्ध पीपल के पेड़ के नीचे पहुँचकर थानेदार घोड़े पर से उतरा। सुनहरी कुलाह पर लिपटी हुई उसकी खाकी रंग की कलफ लगी पगड़ी के लहराते हुए शमले दूर ही से दिखने लगे। अतएव गाँव भर के चमारों, भंगियों और किसानों के बच्चे तथा कुत्ते गाँव में घुसते ही उसके पीछे हो लिए। और अब वे एक बड़ा सा घेरा बनाए खड़े थे। पीपल के नीचे बड़ी धूल थी जिसमें सूखे पत्ते और भूसे के तिनके मिले हुए थे।

घोड़े की लगाम सिख सिपाही के हाथ में थमा कर थानेदार ने दोनों ओर से वर्दी को खींचकर अपने सुडौल शरीर पर जमाया। उसका ऊँचा कद कुलाहदार पगड़ी के कारण और भी ऊँचा दिखता था। उसका

दमकता हुआ माथा खूब चौड़ा था। और उसकी नाक जड़ ही से एक दम ऊपर को उठ गई थी। अपनी शानदार नाक के कारण वह बड़ा रोबदार दीख पड़ता था। अभी नवजवानी की अनुभवहीनता उसके चेहरे से स्पष्ट झलकती थी किन्तु वह प्रतिभाशाली अवश्य था। अपनी हरे रंग की पुतलियां के कारण देहातियों के कथनानुसार 'अंगरेज' जान पड़ता था।

पहले उसने खुली हवा में टहल-टहल कर दो-तीन गहरी साँसें ली और फिर जेब टटोल कर एक खाकी रंग का कागज बाहर निकाला और उसे ध्यान से देखने लगा।

इसी बीच में गाँव के लोग इकट्ठा होने लगे। उधर सिख सिपाही ने घोड़े की लगाम पीपल की जड़ से बाँध दी।

कहीं से नम्बरदार को खबर मिली तो वह बेचारा सिर पर पाँव रखकर भागा। जब वहाँ पहुँचा तो यह हाल था कि दम फूला हुआ और पगड़ी टाँगों में उलझी हुई थी।

थानेदार ने टाँगें अकड़ा-अकड़ा कर नज़र ऊपर उठाई और घेरे में खड़े हुए आदमियां में से एक को पास आने का इशारा किया।

वह बेचारा घबराकर इधर-उधर देखने लगा।

थानेदार ने आदेशात्मक स्वर में कहा—"मैं तुम्हीं को बुल रहा हूँ।"

"जी, मुझको!" उस आदमी ने अपनी छाती पर उंगली जमाते हुए पूछा। और सिपाही के स्वीकारात्मक ढंग से सिर हिलाने पर उसने हास्यास्पद ढंग से आंखां की पुतलियाँ दायें-बायें घुमाकर इधर-उधर देखा और फिर पगड़ी सभांलता हुआ थानेदार की ओर बढ़ा।

"तुम मौला का घर जानते हो?"

"आ हो जी...आ हो।"

"जाओ, उसे बुला लाओ।"

वह आदमी सरपट भागा लेकिन मौला हुक्का हाथ में लिये पहले ही से लुंगी उड़ाता चला आ रहा था।

थानेदार से आँखें चार होते ही उसने दूर ही से हुक्का जमीन पर रख दिया और जमीन में झुककर फर्शी सलाम किया और फिर आगे बढ़कर बोला—"मोतिया वाल्यो। मैंने दूर ही से आपको देख लिया था। बस, हुक्का ताज़ा करने में देर हो गई।"

यह कह मौला ने बड़ी चापलूसी से हुक्के की नाल उसके मुँह से भिड़ा दी।

नम्बरदार आते ही चारपाई का प्रबंध करने के लिये उल्टे पाँव लौट गया। बैठने का कोई उचित स्थान न पाकर थानेदार एक मुगदर पर बैठने लगा तो मौला ने बढ़कर अपना खेस बिछा दिया उस पर और ललकार कर वहाँ खड़े लोगों से कहा—"ओए मायाव्यो। भाग कर मेरे घर से चारपाई और बिस्तर ले आओ।"

उसकी बात सुनते ही दो तीन आदमी भाग निकले।

थानेदार ने पहले तो चुपचाप हुक्के के खूब गहरे-गहरे कश लिए और फिर मौला की ओर मुड़कर मुसकराते हुए बोला—"ओए भूतनी पलस्तर! बात क्या है, आज चोरां के घर मोर पड़ गये।"

"तौबह! मेरी तौबह!" कहते-कहते मौला वहीं उसके कदमों में बैठ गया। "जबरजस्तो! जभी तो कहते हैं कि बद अच्छा बदनाम बुरा!"

"हाँ, खूब याद आया।" सिपाही को सम्बोधित कर थानेदार बोला—"ओए अजैब सिंहिया! जा जरा रामलाल मान्हें ते ओहदे लड़के को तो बुलाके ले आ।"

पहले ही से सधाये हुए सौदागर ने आगे बढ़कर हाथ जोड़ दिये और विनम्र स्वर में बोला—"खान साब। बड़ा अनर्थ हुआ ए जी।

बेचारे मौला की तो कमर ही टूट गई। किसान को बैल का बड़ा सहारा होता है।"

मौला ने ठण्डी साँस भरकर मुँह नीचे को लटका दिया।

इधर-उधर की बातें हो ही रही थी कि रामलाल सफेद धोती और उस पर सफेद कुर्ता पहने आ पहुँचा। उसके साथ उसका नर्म और नाज़ुक युवा पुत्र हीरा लाल भी था जो पतलून पहने था।

थानेदार ने बाप-बेटे को सिर से पाँव तक देखा। बाप बेचारा अधेड़ अवस्था का गंभीर पुरुष था लेकिन थानेदार को लड़के के खड़े होने के ढंग से विद्रोह की गंध आई थी। फिर भी उसने अपने को काफी सभाँल कर पूछा—"अबे लौंडे अपना नाम बताइयो।"

इस पर पढ़े-लिखे लड़के को कुछ गरमी आ गई। तनिक उत्तेजित हो अँगरेजी में बोला—"यू शुड नाट बी रूड।"

थानेदार को अँगरेजी बस वाजिबी आती थी, इसलिए वह तनिक कठोर स्वर में बोला—"देख ओए मुँडिया! हमसे ज्यादा गिट-पिट नहीं करना...जो कहना हो सो अपनी बोली में कहो जिसमें कि सब लोग तुम्हारा बयान समझ सकें।"

नवयुवक को उसकी यह बात भी पसंद न आई। बोला—"आप अफसर हैं, आपको जरा तमीज से बात करनी चाहिये।"

यह जवाब सुन थानेदार का खून खौल गया। उसकी आँखों से अँगारे निकलने लगे। उसने सिपाही को पास आने का इशारा किया और होंठ काटकर बोला—"अजैब सिंहिया, इस मुंडे को थोड़ा तमीज़ दिखाओ।"

अजब सिंह के दो-तीन झापड़ खाकर नवयुवक के दाँत हिल गये। उसके नथुनों में से खून निकलने लगा। थानेदार ने उसके चिकने बालों के गुच्छे को हाथ में दबा कर कहा—"बेटा! मैं तुम्हारे ऐसे शरीफ बद-माशों को सीधे रास्ते पर लाना खूब जानता हूँ।" फिर उपस्थित लोगों

की ओर देखकर बोला—"देखो जी, एक तो ग़रीब किसान को बैल गोली से उड़ा दिया और ऊपर से घौंसे जमाते हैं ? कानून हमारे हाथ में है। दूध का दूध और पानी का पानी कर दिखाना हमारा काम है।"

उपस्थित जनों में से अधिकांश ने उसकी हाँ में हाँ मिलाई। थानेदार गुर्राकर बोला—"ओए मौलिया !"

"जी मोतियाँ वाल्यो !"

मौला बगल ही से निकल कर हाथ बाँध थानेदार के सामने खड़ा हो गया।

"बैल कहाँ पर मरा पड़ा है !"

"शहंशाह जी। वह तो मान्हों के खेत ही में पड़ा है। बेचारा किस्मत का मारा बाड़े से निकल इनके खेतों में जा निकला। बस, उठा के गोली दाग़ दी इन्होंने। भला दो डण्डे मार कर निकाल देते साले को, ग़रीब का बैल तो बच जाता।" यह कहते-कहते मौला ने रोनी सूरत बनायी।

मान्हा यह आरोप सुन सिटपिटा गया। किन्तु बेटे की दुर्गति देख चुका था, इस लिए चुप हो रहा।

"हम मरा हुआ बैल मौके पर देखेंगे।"

"चल्लो मोतियाँ वल्यो।"

अब आगे-आगे मोतियाँ वाला, साथ-साथ मौला, सौदागर लब्भू इत्यादि, उनके पीछे मान्हें और सब के पीछे नाक सुड़सुड़ाते बच्चे और दुमें हिलाते हुए कुत्ते।

यह टोली खेत पर खेत लाँघती जब मान्हों के खेत में पहुँची तो देखा कि सर्दी से अकड़ा हुआ बैल खेत में टाँगे पसारे पड़ा है। मौला ने पहले ही से एक लौंडे को वहाँ बिठा दिया था जिसमें कि मृत बैल के शव के पास गिद्ध या कुत्ते न आने पायें।

खाँ साहब (थानेदार) ने बैल की अगली टांगों के नीचे और

गर्दन में लगी हुई गोलियों के चिन्हों को ध्यान से देखा। गाँव के तीन चार आदमियों को भी देखने का हुक्म दिया। फिर गाँव वापस आकर पीपल की छाँव तले बिछी हुई चारपाई पर बैठ गये......उस समय उनके लिये मक्खन और लस्सी का कटोरा तैयार था।

मक्खन का गोला निगल कर ऊपर से लस्सी चढ़ाकर खाँ साहब ने बाछें झाड़ननुमा रुमाल से साफ़ करते हुए कहा—"हाँ बे मौलू, अब बता सारा किस्सा। तेरा बयान लिखा जायगा अब।"

मौला ने खाँसकर गला साफ किया और बताना शुरू किया कि कैसे पिछली रात को वह अपने बाड़े तक यह देखने के लिए गया कि वह लौंडा जो वहाँ मवेशियों की रखवाली के लिए रखा गया था, वहाँ मौजूद भी था या नहीं, क्योंकि उस साले का एक चमारिन से याराना था। मौका पाकर रातों को उधर भी खिसक जाया करता था।

"तुम अकेले थे या और भी कोई साथ था।"

"नहीं जी अकेला कैसे? मेरे साथ सुदागर, मेलू और लम्भू भी तो था।"

"यह कब से तुम्हारे साथ थे?"

"पात शाहो! यह तो हर रोज मेरे साथ होते हैं। खाने-खूने से छुट्टी पाकर कभी यह मेरे पास आ जाते हैं और कभी मैं इनके पास चला जाता हूँ, गप उड़ाने के लिये।"

"अच्छा-अच्छा, फिर क्या हुआ?"

"फिर शांहशाहों! अभी हम बाड़े से दूर ही थे कि धाँय-धाँय दो बार बन्दूक़ चलने की आवाज सुनाई दी। हम तो जी डर के मारे खेतों में छिप गये......।"

"अच्छा! तो तुम डर गये?" खाँ साहब ने पूछा क्योंकि शक्ल ही से मौला उन आदमियों में से दिखाई देता था, जिन्हें डर कभी छूता भी नहीं।

"आहो जी ! हम डर गये !"

"अच्छा, फिर ?"

इतने में यह निक्का मान्हों गाँव की तरफ़ भागता दिखाई दिया।

खाँ साहब ने स्वीकारात्म ढंग से यों सिर हिलाया, मानो वे इस मामले की तह तक पहुँच गये हों, "फिर ?"

"फिर जी, हम वाड़े की तरफ बढ़े। रास्ते में इन्हीं के खेत में पड़ते हैं! वहाँ हमें सफेद-सफेद चीज दिखाई दी। हम डरते-डरते पास पहुँचे तो देखा कि मेरा बैल मरा पड़ा है। मैंने तो सिर पीट लिया और नज़दीक से देखा तो गोलियों के निशान दिखाई दिये।"

थानेदार साहब ने मौला से अनेक प्रश्न किये। फिर मेलू, सौदागर और लभ्भू से जिरह की गई।

"अच्छा तो सौदागर ! तुमने अच्छी तरह पहचान लिया था कि वह रामलाल का बेटा हीरा लाल ही था।"

"हाव जी !"

इसी तरह सबने अलग-अलग इस बात की पुष्टि की। अब खाँ साहब फिर हीरा लाल की ओर आकृष्ट हुए—"देखो हीरा ! सच-सच बता दो कि आखिर बात क्या है, नहीं तो याद रखो मैं मुजरिमों का बहुत सख्त दुश्मन हूँ। थाने पहुँचकर दो कानों के बीच सिर कर दूँगा तुम्हारा..."

अब हीरालाल ताव में आने के मूड में नहीं था। अभी पहली मार से ही उसकी नाक जल रही थी और होंठों पर सूजन आ गई थी। उसने मद्धिम स्वर में कहा—"यह इलजाम बेबुनियाद। मैं तो खाना खाकर घर से बाहर तक नहीं निकला।"

खाँ साहब ने उसके बाप की ओर देखकर कहा—"लाला ! तुम्हारा लौंडा जरा कड़ा दाना मालूम होता है। लेकिन हमारा काम भी भूले-भटकों को रास्ते पर लाना है। समझा लो अपने बेटे को, नहीं तो एक बार

मैंने हाथ उठा दिया तो पहचान नहीं पाओगे कि इसका सर किधर को था और मुँह किधर को।"

रामलाल मुक़दमेबाजी से तंग आ चुका था। हाथ जोड़कर बोला—"खाँ साहब! अभी लड़का ही तो है। शायद......मैं बैल की क़ीमत देने को तैयार ।"

"बैल की कीमत?" मौला ने चिल्लाकर कहा—"गरीब के बैल की जान ऐसी सस्ती नहीं होती कि जब जी चाहा मार दिया और फिर पैसे के धौंस जमाने लगे।"

खाँ साहब बोले—"चुप रहो जी तुम। बकवास बन्द करो।"

"नई पातशाहो! मेरी क्या मजाल है!" मौला हाथ जड़ोकर अलग खड़ा हो गया।

"अच्छा लाला! अपनी बन्दूक तो मँगवाओ ज़रा।"

बन्दूक हाजिर की गई।

हीरा बोला—"देखिए, बन्दूक की नाली में ग्रीस लगाकर मैंने अलग रख छोड़ी थी।"

खाँ साहब ने हीरा की तरफ़ घूमकर देखा और ज़ोर से सिर हिलाकर बोले—"सब समझता हूँ। यह ग्रीस तो आज ही की लगी मालूम होती है।"

थोड़ी देर तक बन्दूक का निरीक्षण किया गया। फिर उन्होंने सिपाही से कहा—"अजैब सिंह! काग़ज़ लाओ तो बन्दूक की रसीद लिख दूँ।"

इसके बाद सबके बयान पूरे किये गये और फिर थानेदार ने कहा—"बन्दूक थाने में जमा होगी। बेटा हीरा! चलो थाने, फिर देखो कि मैं हीरा का बटेरा कैसे बनाता हूँ।"

रामलाल बेटे के लिए बड़ा परेशान था। हाथ बाँधकर बोला—"खाँ साहब, दया कीजिए। मैं बैल की क़ीमत और जुर्माना देने को तैयार हूँ।"

"यह तो बाद की बातें हैं...मालूम होता है कि तुम्हारी जेब में रुपये उछल रहे हैं लाला।"

रामलाल ने मुश्किल से थूक निगलते हुए पूछा—"क्या जमानत नहीं हो सकती ?"

"यह सब थाने पहुँचकर तय होगा।"

यह कहकर खाँ साहब घोड़े पर सवार हो गये। जब वे हीरा को लेकर चलने लगे तो रामलाल की आँखों में आँसू आ गये। वह जानता था कि लड़के ने जोश में आकर गुस्ताखी की है, इसलिए उसकी कुशल नहीं। कुछ सोचकर आगे बढ़ा और हाथ जोड़कर बोला—"खाँ साहब, एक बात कहूँ ?"

खाँ साहब ने घोड़ा रोक लिया।

"बात यह है कि मौला के बैल को गोली मैंने मारी थी।"

खाँ साहब ने हँसकर घोड़े को एंड़ लगाई और बोले—"लाला! लड़के को बचाने के लिए झूठ बोल रहे हो। ज़रा गवाहों से तो पूछो। हम तो कानून के बन्दे हैं।"

जब थानेदार साहब उन सबकी दृष्टि से ओझल हो गये और बन्दूक भी अपने साथ ले गये तो मौला ने भी अपने घर की ड्योढ़ी में पहुँचकर पहले आकाश की ओर देखा और फिर भारी स्वर में बोला—"या मौला!" इसके बाद सौदागर को सम्बोधित कर उसने कहा—"देख बे सुदागर! घोड़ी पर सवार होकर सीधा भँबोड़ी चला जा और बग्गा सिंह से कह दे कि धाँय-धाँय बोलनेवाली चिड़िया पिंजड़े में बन्द हो गई है।"

× × ×

अभी सूरज ढल ही रहा कि एकदम इस जोर की आँधी उठी कि जमीन से आसमान तक धुआँ-धार हो गया। ऐसा लगता था, मानो पृथ्वी की छाती फट गई है और चारों ओर के बादल गगनचुम्बी पहाड़ों

की भाँति झूम-झूमकार उठ खड़े हुए हैं। और धूल का यह समुद्र घास-फूस और मिट्टी को उड़ाता, उमड़ता चला आ रहा है।...सूर्य अकस्मात छिप गया। चारों ओर धुंध और फिर अन्धकार बढ़ने लगा और धुंधले आकाश में आनेवाली आँधी का समाचार देने वाले चीलों के झुण्ड भी इस असाधारण धुधँलाहट में विलीन हो गये।

लकड़ी के बने हुए भारी-भारी चरखड़ों वाले रहट के ऊपर छाये हुए फुलाह के पेड़ों के झुण्ड में से कपूरा सिंह ठट्टे वाला एक आग उगलती थूथनीवाली सिर से पाँव तक काली और मजबूत घोड़ी पर सवार बाहर निकला। उसने पहले पीर के ठट्टा की ओर देखा और फिर दूर-दूर तक फैले हुए खेतों पर निगाह दौड़ाई। किन्तु उसकी दृष्टि दूर तक नहीं जा सकी क्यों कि आँधी प्रति क्षण बढ़ती आ रही थी। खेतों की फसलें धूमिल वायु के आगमन से एक बड़े तालाब के मैले गँदले पानी की भाँति हिलोरें लेती दीख रही थीं।

कपूरा ठट्टे वाला, जिसे आमतौर से लोग काला तीतर कहते थे, अपने गाँव से निकाल दिया गया था। कई वर्ष से उसने गाँव में प्रवेश करने का साहस नहीं किया था। किन्तु एक सप्ताह पूर्व वह चोरी-छिपके अपनी बहन से मिलने के लिए गया। केवल एक रात रहकर और यह मालूम करके कि ससुराल से लाये हुए गहने कहाँ पर रखती है, वह चुपचाप लौट आया था। आज उन गहनों और उसके साथ अड़ोस-पड़ोस वालों पर हाथ साफ़ करने का उसने निश्चय किया था।

उस विशालकाय पुरुष का रंग काला भुजंग था, कुटिलता और धूर्तता नस-नस में भरी हुई थी। उसका हृदय दयाहीन और स्वभाव क्रूर था।

अभी वह दूर-दूर तक दृष्टि दौड़ा ही रहा था कि खेतों में कुछ परछाइयाँ दिखाई पड़ीं जो उसकी ओर बढ़ रही थीं।

आँधी का वेग बढ़ते लगा।

गाँव के चारों ओर फैली हुई धूल पर पहले तो हल्की गर्द की चादरें लहलहाईं फिर भारी गर्द ऊपर को उठने लगी और तालाब के पानी की सरसराते हुए साँपों की तरह नन्हीं नन्हीं लहरें करवटें लेने लगीं। तोते, कौवे तथा अन्य घरेलू पक्षी पीपल और धरेक के पेड़ों में दुबक गये।

खेत-खेत चलते हुए वे आदमी जब निकट पहुँचे तो कपूरे ने उन्हें पहचान लिया। आगे आगे मौला था और उसके पीछे-पीछे सौदागर, लब्भू तथा मेला सिंह।

उन्हें देखते ही कपूरा कठोर स्वर में बोला—"तुम लोग कहाँ थे?"

"यहीं तो थे।" सौदागर ने हँसकर जवाब दिया।

कपूरे को सौदागर की हँसी बिलकुल पसन्द न आई। उसने उसकी ओर कड़ी दृष्टि से देखा। वह स्वयं बहुत कम हँसता था। प्रकट तो यह होता था कि वह सौदागर के मुँह पर उल्टे हाथ का झापड़ देगा किन्तु फिर ख़ून का घूँट पीकर रह गया और मौला से बोला—"मौला!"

"हूँ!"

"सब ठीक?"

"हम तो सब ठीक ही हैं ...तैयारी तो तुम्हारी होनी चाहिए।"

उसे मौला की हाज़िर जवाबी भी पसन्द नहीं आई। लेकिन उस समय गुस्से का मौका नहीं था। और कुछ नहीं तो डाके का मामला चौपट हो जाने का डर था। फिर भी उसने कटु स्वर में कहा—"हमारी तैयारी से तुम्हारा मतलब! तुम अपनी कहो।"

"हमारा काम तो कभी का हो चुका। गाँव में एक बन्दूक थी सो अब थाने में है।"

"किसी तरफ़ से कोई बात निकली तो नहीं?"

"नहीं।"

"कोई अफवाह? शक-शुबहा?

"कुछ नहीं।"

कपूरे की घोड़ी शायद आँधी में कई प्रकार की गंध पाकर बेचैन हो-होकर बिदकती और बेचैनी से जमीन पर दुम झाड़ती थी। किन्तु वह उस पर खूब जमकर बैठा था।

अन्धकार क्षण प्रति क्षण बढ़ता जा रहा था। कपूरे की लोहे के तारों के समान कड़े दाढ़ी के बाल लहराने लगे। खेतों से भाग कर लोग-बाग अपने-अपने घरों में घुस गये थे। चोर प्रसन्न थे। आज भगवान भी उनकी सहायता करने पर तुले थे।

उन्हें कई साथियों का इन्तजार था, जो दूर-दूर अर्थात् पटियाले तक से आने वाले थे। कपूरे ने सोचा कि यदि आँधी का यही हाल रहा तो उन्हें अपनी कार्रवाई जल्दी शुरू करनी होगी।

कपूरा बोला—"अच्छा, अब मैं चलता हूँ।"

"अभी बाकी लोग तो नहीं आये होंगे?"

"आ गये होंगे। चलकर देखता हूँ। तुम लोगों को खोजने में मेरा बहुत समय खराब हुआ।"

"हम तुम्हें देखते रहे। तुम कहीं दिखाई ही नहीं दिये।"

"रहट पर मिलने का वादा था। मैं सीधा इसी जगह पहुँच गया था।"

"पहले हम भी रहट पर गये थे। फिर हम खेतों में चले गये।"

"क्यों?"

"हमने सोचा कि कहीं रहट पर हमें कोई साथ-साथ देख न ले।"

"यह अच्छी हरकत की तुमने। इस प्रकार की बुद्धिमानी करोगे तो आप भी फँसोगे और हमें भी फँसाओगे।"

मौला बोला—"अच्छा जो होना था सो हो गया। हम अपनी जगह से तुम्हें देखने की कोशिश करते रहे पर आँधी के कारन तुम दिखाई नहीं दिये...भई! आगे को ख्याल रखेंगे। ऐसी गलती नहीं होगी।"

इस पर कपूरा खुश हो गया।

"देखो, हम आकर पहले इसी जगह रुकेंगे। अगर कोई ऐसी-वैसी बात हो तो हमें ख़बर कर देना।"

"अच्छी बात है।"

"भौला! तुम्हारा घर तो बिलकुल सामने पड़ता है?"

"हाव।"

"तो फिर जरा निगाह रखना जिसमें कि जब हम यहाँ पहुँचे तो तुममें से एक आदमी हमें यहाँ आकर मिले। समझे?"

"लेकिन आँधी बढ़ती जा रही है। न जाने कब तक इसका जोर रहे। थोड़ी देर में हाथ को हाथ तक न सुझाई देगा। तुम लोग इत्ती दूर से कैसे दिखाई दे सकते हो?"

कपूरे ने कुछ सोचा फिर बोला—"यह भी ठीक है पर अब करें क्या?"

"तुम यह बताओ कि सबको लेकर कब तक लौटोगे?"

कपूरे ने तनिक सोचने के बाद उत्तर दिया—"भई पटियाले और जिन्द तक से जवान आ रहे हैं, अगर सब पहुँच गये तो हम एक घण्टे तक लौट आयेंगे।"

"अच्छी बात है!"

"और क्या, अब रात भींगने का इंतजार तो करेंगे नहीं हम। आँधी से तो इतना अँधेरा छा जायगा कि बस तबीयत खुश हो जायगी।"

"ठीक है।"

"तो अब मैं चला।"

यह कहकर कपूरे ने घोड़ी को एंड़ दी और बवंडर की सी तेज़ी के साथ क्षण प्रति क्षण धुंधलाती हुई झाड़ियों में विलीन हो गया।

× × ×

एक घण्टा बीतने भी न पाया था कि पीर का ठट्टा पर ऐसा घोर अन्धकार छा गया कि पहले कभी देखने में नहीं आया था।

कपूरा और उसके साथी घोड़ों तथा साँडनियों पर सवार अन्धाधुन्ध चले आ रहे थे। तीव्र वायु मानो उनके कपड़े नोचकर उनके शरीर से अलग फेंक देना चाहती थी। उनकी दाढ़ियाँ और मूछें धूल से अट गई थीं। आँखों की पलकें एक दूसरी से चिपकी जा रही थीं। यदि कपूरा उनका पद-प्रदर्शन न करता तो वे कभी रास्ता न खोज पाते।

उनमें हिन्दू, मुसलमान और सिख सभी लोग शामिल थे। उनके पास दो कच्ची राइफलें थीं जिनकी नलियों के मुँह उन्होंने कपड़े की डाटों से बन्द कर रखे थे जिसमें कि धूल भीतर न जाने पाये। लारी के स्टियरिंग की नली वाली एक बन्दूक भी थी। इनके अतिरिक्त उन सब के पास कृपाणें, छुरियाँ, लाठियाँ और सफ़ाजंग भी थे।

उस समय दूर से पीर का ठट्टा मरे हुए भैंसे के समान दीख रहा था।

गाँव से हट कर सन्त दतार सिंह जी की टूटी हुई समाधि की ऊँची दीवारें अलग-अलग खड़े हुए दैत्य के समान दीख रही थी। जर्जर दीवार के निकट सड़े हुए पानी की एक खाई थी जिसकी सतह पर हरे रंग की काई जम रही थी और दीवार की दरारों से जँगली बेलें लटक आई थीं और उनकी पत्तियाँ पानी की सतह को चूमा करती थीं।

मौला ने सौदागर को कपूरा के आदेशानुसार मौके पर भेज दिया था। सौदागर रेत के टीले की ओट में सिर और कानों को धुस्से में लपेटे और सिर दोनों घुटनों के बीच दावे बैठा था। देखने के लिए उसने आँखों के आगे एक छोटा-सा छेद खुला छोड़ दिया था। भला ऐसे अन्धकार में क्या दिखाई दे सकता था! दृष्टि ने तो कुछ काम किया नहीं, अलबत्ता कानों में घोड़ों के सुमों की टपाटप और साँडनियों के बल-

बजाने की आवाजें आईं तो उसने चौकन्ना होकर गर्दन ऊपर उठाई किन्तु डाकू पलक झपकाते में उसके सिर पर थे।

इस अन्धकार में छुरियों की मन्द-मन्द चमक और भी अधिक भयानक दीख रही थी।

आँधी के शोर में आवाज गूँजी—"कौन ?"

"सुदागर !" सौदागर ने जल्दी से जवाब दिया। यह सोचकर कि कहीं उत्तर देने में देर हो और उसका सिर छुरि के एक ही वार में कटकर अलग जा गिरे।

"सुदागर कौन ?"

अब सौदागर के हाथ पाँव फूल गये। चिल्लाकर बोला—"ओए मैं...मैं सुदागर ठट्टे वाला। कपूरा कित्थे ए ?"

उसी समय कपूरे की घोड़ी मचलकर आगे बढ़ी—"सुदागर !"

"हाव कपूरिया !"

"ओए अपना ही मुण्डा।" कपूरे ने साथियों से कहा। फिर सौदागर को सम्बोधित कर पूछा—"मौला भी है ?"

"नहीं--वह घर पर है।"

"बाकी सब ठीक है ?"

"सब ठीक-ठाक है।"

इस बीच में धूल भरी हवा तूफ़ानी वेग से बहती रही। घोड़े तथा सॉंडनियाँ बेचैनी से नाचती रहीं।

नवागन्तुक डाकुओं ने कुछ क्षण आपस में विचार विनियम किया और फिर कपूरा सौदागर से बोला—"सुदागर बचू ! अब हमें रहट की तरफ़ से ले चलो।"

सौदागर कुछ कहे बिना उठा और रहट की ओर चल पड़ा। वे सब उसके पीछे-पीछे हो लिए।

कपूरे ने रहट के निकट पहुँच कर पूछा—"सुदागरा ! तबेला तो खाली है।"

"हाव, बिलकुल खाली है।"

"ऐसा न हो कि कोई बाहर का आदमी घुसा हो।"

"अरे नहीं।"

रहट पर पहुंचकर वे घोड़ों और साडनियों से नीचे उतरे। जानवरों को तबेले में बन्द करके सौदागर को रखवाली के लिए छोड़ दिया और स्वयं सारे साज सामान सहित गाँव की ओर बढ़े।

मौला के घर का द्वार अधखुला था। उसने दरवाजे में ईंट फँसा कर तख्तों को एक जगह जमा दिया था और वह स्वयं लम्भू के साथ बैठा हुक्का पी रहा था। मेला सिंह अलग बैठा दाढ़ी कुरेद रहा था।

उन्होंने दरवाजे में से डाकुओं के गिरोह को पहचान लिया। जब वे पास आ गये तब उन्होंने देखा कि उनमें सब के सब मजबूत और लम्बे तिरछे शामिल थे।

मौला तहमत झाड़कर उठ खड़ा हुआ और बोला—"साब सलामत।"

"साब सलामत ए जी !" दबे-दबे मिले-जुले स्वर सुनाई पड़े।

मौला बढ़कर ड्योढ़ी तक गया। उसने देखा कि उसके दरवाजे के आगे भाँति-भाँति की आकृतियाँ खड़ी हैं उन्होंने पगड़ियों के शमले घुमाकर चेहरे ढाँप रखे थे। सिवाय आँखों के उनके चेहरों का और कोई भाग दिखाई नहीं पड़ता था। उनके शरीर नंगे थे और सरसों के तेल के कारण न केवल चमक रहे थे बल्कि तेल की हल्की-हल्की गंध भी फैल रही थी।

मौला ने गिरी हुई लम्बी मूछों पर उँगलियाँ फेरते हुए कहा—"आज ता अल्लाह दा बड़ा फजल है जी।"

"हाव।"

मौला ने कपूरे की नंगी पीठ पर हाथ रखकर कहा—"आमा ! पानी पूनी पी लो सारे !"

कपूरे ने जटा झाड़ मरियल की भाँति अपने नंगे सिर को नकारात्मक ढंग से हिलाते हुए कहा—"नहीं भई ! वक्त घटे ए। पानी-पूनी की बात छड।"

मौला ने इधर उधर देखा।

"जारो ! सवारी बिना आ गये ओ।"

"नई, घोड़े–डाचियाँ तवेले में छोड़ आया हूँ।"

"पर यार ! घोड़े कुछ नजीक रखो। भागते समय जरूरत पड़ेगी... और फिर कपूरिया। तुम्हें किसी ने पहचान लिया तो आफत आ जायगी। अपनी घोड़ी बहुत नजीक रखना।"

कपूरे को मौला की बात पसन्द आई। उसने मुस्कुराकर एक साथी के कान में कुछ कहा और वह 'हाव' कह कर तवेले की ओर रवाना हो गया।

"मौलिया ! अब देर मत करो।" कपूरे ने मौला से कहा—"बस, चलो। ऐसा मौका फिर कभी नहीं हाथ आयगा।"

"बहुत अच्छा।"

मौला ने फूक मार कर दिया बुझाया तो उसकी लम्बी लम्बी मूछें फड़कीं।

अब वे एक लम्बी पंक्ति के रूप में एक दूसरे के साथ लगे लगे बढ़ने लगे।

गोबर के ढेरों, पोखरों और अरूड़ियों के निकट से होते हुए वे गली में घुसे गये।

आँधी के कारण भयानक शोर उत्पन्न हो रहा था। ऐसे अवसर पर कुत्ते भी तन्दूरों में दुबके हुए थे। एकाध ने दबे स्वर में भूका भी तो उनकी आवाज आँधी के शोर में दब कर रह गई।

उनकी राइफलें भरी हुई थीं। उन सबके हथियार बिलकुल तैयार थे। प्रत्येक महत्वपूर्ण मोड़ पर कपूरा एक आदमी खड़ा कर देता।

मौला की अभी तक बग्गा सिंह से कोई बात नहीं हुई थी। बग्गा बहुत कम बोलता था। मौला यह बात जानता था इस लिए उसने भी कोई बात नहीं की। वह बग्गे के साथ-साथ चला जा रहा था। बग्गा ताड़ की तरह लम्बा था। उसकी आँखें भीतर की ओर धँसी हुई थीं किन्तु उनमें हिंसक पशु की आँखों की सी चमक और जिज्ञासा थी। वही उन सब का सर्दार था।

डाकू लम्बे कनखजूरे की भाँति दीवारों से लगे-लगे बढ़ रहे थे।

बग्गे ने मौला से पूछा—"मकान है कहाँ?"

"गाँव के बीचोबीच!"

यह सुनकर बग्गे के माथे पर बल पड़ गये। उसने दबे स्वर में कहा—"यदि लोग-बाग जाग पड़े तो इस अँधियारी और आँधी में गाँव से बाहर निकलने के लिए बड़ी सावधानी और होशियारी की जरूरत पड़ेगी।"

मौला ने तनिक बेपरवाही से कहा—"ओए आ! तुम लोगों के सामने कौन टिका रह सकेगा। चाहे सौ आदमियों से भी क्यों न मुकाबिला हो जाय।"

बग्गे पर मौला की इस बात का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। वह जानता था कि वे लोग गाँव वालों का भली भाँति मुकाबिला कर सकते हैं किन्तु वह एक छटा हुआ अनुभवी डाकू था। उस समय सवाल मुकाबिला कर सकने या न कर सकने का नहीं था। बल्कि असल सवाल यह था कि गिरोह का हर आदमी बचकर निकलना चाहिए नहीं तो एकाध भी पुलिस के हत्थे चढ़ गया तो सारे गिरोह पर आफ़त आ जायगी। इतनी तीव्र आँधी, अँधियारी और शोर में यह सारा काम कुशलतापूर्वक पूरा हो जाना उतना सरल नहीं था जितना कि मौला को लग रहा था।

सहसा ग्गू एक ओर रुक गया और उसके पीछे सबके सब डाकू रुक गये।

अन्धकार में सामने से उन्हें एक बहुत ही काली छाया दिखाई पड़ी। लगता था कि कोई आदमी जल्दी जल्दी कदम उठाता बढ़ा चला आ रहा है।

वे सब पलक झपकते में दीवार की छाया से लगकर खड़े हो गये।

वह व्यक्ति शरीर पर काली चादर लपेटे तेज़ी से बढ़ता आ रहा था। क्षण प्रति क्षण वह उनके निकट पहुँच रहा था।

डाकू दम साधे खड़े थे। संयोग से उस दीवार पर एक छज्जा बढ़ा हुआ था इसलिए वे बिलकुल अंधेरे में खड़े थे। यों आसानी से पास खड़ा हुआ आदमी भी दिखाई नहीं देता था। यह तो केवल ग्गू की पैनी दृष्टि ने ही आगन्तुक को आते देख पाया था।

कुछ क्षणों के बाद वह व्यक्ति उनके पास से गुजरने लगा। उस बेचारे को इस बात का तनिक भी पता नहीं था कि वह हथियारबन्द डाकूओं की छुरियों के साये के नीचे से गुजर रहा है। यदि कहीं उसके मुँह से चूँ की आवाज़ निकल जाती तो उसका सिर तन से जुदा हो जाता।

डाकू एकदम साँस रोके खड़े थे। वे उस पतले दुबले से आदमी की छाया को अपने पास से गुजरते देख रहे थे। आखिर वह उनसे आगे बढ़ गया उसके जाने के बाद सबने इतमीनान की साँस ली क्योंकि वह उस समय खून खराबी नहीं करना चाहते थे। यदि कहीं उसकी बहुत तेज चीख निकल जाती और उस चीख को सुनकर गाँव में शोर मच जाता तो उन्हें खाली हाथ वापस भागना पड़ता।

गाँव के अन्दर वाले चौराहे पर पहुँचे तो देखा कि ऊँचे चबूतरे वाले बड़े कुएँ की मुडेर पर पानी निकालने की ऊँची-ऊँची चर्खड़ियाँ सिर झुकाये उदास मुद्रा में खड़ी हैं। और उन चर्खड़ियों के चरणों में ऊबड़ खाबड़ पेंदों वाले लोहे के डोलचे हवा के जोर से हिल-हिलकर एक शोर

सा उत्पन्न कर रहे थे और चबूतरे के निकट खड़े पेड़ मानो उन्हें रोषपूर्ण दृष्टि से देख रहे थे।

वे सब तुरन्त पेड़ों के झुन्ड के नीचे चले गये जिसमें कि आपस में सलाह कर लें।

कपूरे ने घूम-घूमकर सबकी संख्या मालूम की फिर सन्तुष्ट हो कर उसने कहा —"इस जगह कम से कम तीन जवान खड़े रहने चाहिए।'

"वह क्यों ?" उनमें से एक ने जो लुधियाने के इलाके का जरा हथछुट जवान था आपत्ति की।

कपूरे को उसका यह सवाल पसन्द नहीं आया। उसने माथे पर गहरे बल डालकर उसकी ओर देखा और अपने दृष्टि कोण को स्पष्ट करने लगा।

"इस जगह से सिर्फ एक तंग गली आगे को जाती है जो मकानों के अन्दर ही खतम हो जाती है। हमारे भाग निकलने का सिर्फ यही एक रास्ता है।

"ओए, अपने को इसकी परवाह नईं ! अपना कौन मुकाबिला कर सकता है ?" नवयुवक ने बाज़ू हवा में लहराकर बेपरवाही से उच्च स्वर में कहा।

अब तो कपूरे का जी चाहा कि उसकी गर्दन मरोड़कर रख दे। उसके यह तेवर देखकर नौजवान भी बिफरने लगा। नौजवान मजबूत और जोशीला ही सही किन्तु कपूरे के मुकाबिले में खड़ा होना तो सरासर उसकी मूर्खता थी।

शायद उनके दो-दो हाथ हो भी जाते किन्तु बग्गे ने युवक को आँख दिखाई तो वह ठण्डा पड़ गया। फिर बग्गा कपूरे को सम्बोधित कर बोला—"हाँ तो क्या कह रहे थे तुम ?"

"उधर जो तंग गली तुम देख रहे हो उसी के अन्दर हमें जाना है। वह मकान जिन पर हमारी नज़र है किले के समान मजबूत और

सुरक्षित है। पहले तो वहाँ पहुँचने का किसी डाकू को आज तक साहस ही नहीं हुआ। हमारी यह पहली चढ़ाई है। यदि हम वहीं कहीं घिर गये तो बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। हमारी भलाई इसी में है कि हम यहाँ से सब के सब सही सलामत निकल जायें...सिर्फ यही एक खुली जगह है। खतरे के मौके पर हमारा एक आदमी तुरन्त गली के अन्दर आकर हमें ख़बर कर सकता है। हमारी यह कोशिश होनी चाहिए कि पहले तो हमें मुकाबिला करना ही न पड़े लेकिन यदि ऐसा हो भी तो यहीं खुली जगह में हो"

अग्गे ने समर्थन में सिर हिलाया।

कपूरे ने फिर कहना शुरू किया—"यह आँधी हमारी सहायता भी कर सकती है और नुकसान भी। यदि कोई गड़बड़ हो गई तो इस हुल्लड़बाजी, आँधी और अँधेरे में हम अपने साथियों की गिनती भी नहीं कर पायेंगे"

अग्गा उसके एक-एक शब्द से सहमत था।

अतएव तीन आदमी वहाँ पर छोड़कर वे लोग आगे बढ़े।

तंग गली में पहुँचकर उन्हें ऐसा अनुभव हुआ मानो वे कब्र में हों। आँधी और हवा का जोर कम था किन्तु इस ग़जब का शोर था कि कानों के पर्दे फटे जाते थे।

सहसा अग्गा एकदम रुक गया। उसके साथ ही सब के कदम रुक गये और वे अपनी थुथनियाँ उसके करीब ले आए जिसमें कि उसकी बात सुन सकें।

अग्गे ने साहँसी की ओर देखकर पूछा—"बाँस नहीं लाये ?"

"अरे! वह तो भूल गये!"

"वाह! ओए भैया...तो क्या अब...के सहारे चढ़ोगे छत पर ?"

"बाँस कौन दूर है ? मौला के घर ही से तो लाना है। मेलू, जार

तू भाग के जा और मौलू की ड्योढ़ी के भीतर आँगन के कोने में एक लम्बा बाँस धरा होगा...बस उठाकर तुरन्त वापस आना..."

मेलू ने थुथनी घुमाई और नाक की सीध में लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ चल दिया।

वे सब फिर आगे बढ़े। कुछ दूर जाकर गली बायें हाथ को घूम गई थी। मोड़ से कुछ कदम आगे दाहिने हाथ को एक अधूरा मकान था जिसकी नींव भरने के बाद न जाने उसे क्यों छोड़ दिया गया था। अब वहाँ बड़े-बड़े सूखे झाड़ और मनछटी (कपास की छड़ियाँ) के अम्बार अगले मकान की दीवार के साथ टिके हुए थे। जब किसी कुतिया को बच्चे जनने होते तो वह चीखती कराहती यहीं आकर शरण लेती। एक कोने में भड़भूँजे का चूल्हा था, जिसमें उस समय बालू भरी थी।

वहाँ रुककर उन्होंने उस मकान के पिछवाड़े का निरीक्षण किया जिसके अन्दर उन्हें सबसे पहले घुसना था।

छत से परे बिजली चमक-चमक कर आँखें दिखा रही थी। घनघोर घटाऐं अपने काले आंचल लहराती असीम सेना की भाँति आकाश के विस्तार में फैलने लगीं। आँधी के वेग में कमी तो न आई थी किन्तु हवा में पहली सी धूल बाक़ी न रही थी।

कपूरे के इशारे पर वे फिर रुक गये। उनकी दाढ़ियाँ फिर एक दूसरे के निकट आईं। उसने कहा—"सब लोग यहीं पर रुकें। मैं बग्गे को लेकर मकानों को अगली तरफ़ से देख लूँ जरा।"

वे दोनों कुछ ही कदम पर पहुँचकर उन सब की दृष्टि से ओझल हो गये।

साहँसी ने मकान की ओर देखा और फिर मन ही मन अनुमान लगाने लगा कि उस पर बाँस की सहायता से चढ़ना सम्भव भी है या नहीं। उनमें से एक बोला—"भऊ! मकान जरा ऊँचा मालूम होता है।"

"हाँ, है तो।"

"अगर तुम बाँस के जोर से फाँदकर उस पर न चढ़ सके तो इधर-उधर से ऊपर जाने का कोई रास्ता या सहारा भी तो नहीं दिखाई देता। फिर तो आगे वाले दरवाजे से ही जाना पड़ेगा।"

साहँसी चुपचाप दाँतों तले मूछ का एक सिरा चबाता रहा। फिर यों बोला मानो अपने आप ही को सम्बोधित कर कह रहा हो—"मैं आगे बढ़कर दीवार के नीचे से अन्दाज लगा सकता हूँ।"

यह कह वह आगे बढ़ा और दीवार के निकट पहुँच मनछटी के एक ढेर के पीछे गुम हो गया।

कुछ क्षण बाद बग्गा और कपूरा भी वापस आ गये। बग्गा बोला—"पहले तो कपूरे की बहन पर हाथ साफ़ करना होगा, इसके बाद पड़ोस के कुछ घर भी अच्छे हैं। उन पर भी जल्दी से हाथ फेर दिया जाय... अपना साहँसी यार किधर गया?'

"वह दीवार की ओर गया है, आता ही होगा। अँधेरे में उसे भी कुछ सूझ नहीं रहा है।"

कुछ क्षणों के पश्चात साहँसी आ गया।

उसे देखते ही बग्गे ने कहा—"मकान तो ऊँचा है भऊ!"

"हाँ भा!" साहँसी ने फिर एक बार मकान पर दृष्टि दौड़ाई और फिर तनिक व्यग्रता से हाथ मलने लगा। शायद उसके हाथ बाँस पकड़ने के लिये बेचैन हो रहे थे।

"फिर?" बग्गे ने सवाल किया।

साहँसी ने उसकी ओर देखे बिना उत्तर दिया—"कोशिश करने में क्या हानि है?"

बग्गा को उसके जवाब से सन्तोष नहीं हुआ किन्तु उस समय इसके सिवा और कोई उपाय भी तो नहीं था।

इतने में मेलू हाथ में लम्बा बाँस लिए इस प्रकार चलता हुआ आया मानो बड़ी दिलेरी का काम करके आ रहा हो !

साहँसी ने बढ़कर बाँस थाम लिया। पहले लचका-लचकाकर उसकी मजबूती का अनुमान किया और रास्ता टटोल-टटोलकर आगे बढ़ा और फिर उसने मकान की छत की ओर निगाह दौड़ाई। मटियाले आकाश पर काले बादल गंदले धब्बों के समान दीख रहे थे।

अब साहँसी ने अपनी कमर में एक लम्बा रस्सा लपेटा और ज़मीन पर हाथ मारकर दो ढेले कमर बन्द में ठूँस लिये और सिर घुमाकर मन्द स्वर में साथियों से कहा—"अच्छा अब मैं कोशिश करता हूँ। छत पर सही सलामत पहुँच गया तो ये दो ढेले तुम्हारी तरफ़ फेकूँगा।"

इसके बाद उसने लम्बे बाँस को सँभाला। उसे दोनों हाथों में तौला और फिर दो-चार बार पाँव के पंजों पर नाचकर तेजी से भाग निकला... सहसा उसके कदमों की आवाज बन्द हो गई।

सबने उसे पर फड़फड़ाते हुए बड़े चिमगादड़ की भाँति हवा में उठते देखा। अनुमान से लगता था कि वह छत पर पहुंच गया है।

यदि बिजली चमक जाती तो वे उसे देख लेते नहीं तो . तड़ाक से दो ढेले उनके पास आ गिरे। एक तो मेलू की टाँग पर लगा।

"ओए मयाब्या !" वह टाँग पकड़कर बैठ गया। लेकिन चोट बिलकुल मामूली थी। ढेला कच्ची मिट्टी का था।

अब बग्गे ने कुछ अन्तिम निर्देश देते हुए कहा—"देखो ! अब हमें यह सारा काम जल्दी से ख़तम करना है। इस गाँव में कुछ अच्छे लड़ाका जवान रहते हैं जो जान की बाजी लगा सकते हैं। इसलिए हमें चुपचाप फुर्ती से अपना उल्लू सीधा करके नौ दो ग्यारह हो जाना चाहिये, समझे ?"

"हाव भऊ !" सब ने एक स्वर में उत्तर दिया।

कपूरे ने मेलू के कन्धे पर हाथ रखकर धीमे स्वर में आदेश दिया कि वह सब जवानों को लेकर मकान के दरवाजे पर पहुँच जाय ।

वे लोग उधर चले गये तो कपूरा बग्गे को साथ ले पिछवाड़े वाली दीवार के पास पहुँचा । अभी उनके क़दम रुकने भी न पाये थे कि छत पर से रस्सा लम्बे नाग की तरह फनफनाता और लहराता हुआ नीचे गिरकर झूलने लगा ।

एक-एक करके दोनों रस्से की मदद से छत पर पहुँच गये ।

छत की मुडेर मुश्किल से चार छः अंगुल ऊँची होगी । तेज आँधी के जोर में उन्हें ऐसा लगा मानो उनके पाँव उखड़ जायेंगे और वह पलक झपकाते में उड़कर गाँव के बाहर जा गिरेंगे । इसलिए वह झुके-झुके आँगन से आने वाली सीढ़ी पर बनी हुई ममटी की ओर बढ़े । यह और खुशी की बात थी कि ममटी का दरवाज़ा अभी खुला था, नहीं तो उन्हें कूद फाँदकर नीचे जाना पड़ता । इससे यह प्रकट होता था कि घर के लोग अभी सोये नहीं थे । बात वास्तव में यह थी कि अभी सोने का कोई समय भी नहीं था ।

कपूरे के हाथ में राइफल थी, बग्गे के हाथ में चमकती हुई छवि और साहँसी हमेशा की तरह लम्बा-सा छुरा थामे था । उन्होंने एक बार फिर अपने-अपने चेहरों को पगड़ियों के शमलों में छिपाया । केवल आँखों और भवों को नंगा छोड़ दिया और फिर फूंक-फूंककर क़दम रखते हुए सीढ़ियाँ उतरने लगे ।

वे काफ़ी नीचे जा चुके थे कि सहसा मोड़ से टिमटिमाती हुई रोशनी दिखाई दी । वे तुरन्त समझ गये कि कोई आदमी हाथ में लालटेन या चिराग़ लिए सीढ़ियों पर चढ़ता चला आ रहा है ...वे ठिठककर रुक गये । रोशनी फैलती जा रही थी ।

अभी वे कुछ तय भी न कर पाये थे कि चिराग़ के पीछे दो जनाने पाँव दिखे और उनकी आँखें एक तेरह चौदह वर्ष की लड़की की

आँखों के मिलीं जो दिये को अपने दोनों हाथों के घेरे में लिए थी, जिसमें कि वह बुझ न जाय। उन्हें देखते ही लड़की का रंग उड़ गया। उसने यह बड़ी-सी जीभ बाहर निकालकर मुँह से एक जोरदार चीख़ निकालने को कोशिश की किन्तु मारे भय के उसकी आवाज जैसे कण्ठ ही में अटक गई। मिट्टी का दिया उसके हाथ से गिरकर टूट गया।

बग्गा ने फुर्ती से आगे बढ़कर उसे थाम लिया। वह बेहोश हो गई। उन्होंने उसके मुँह में उसी की चुनरी ठूँस-ठाँसकर उसके हाथ-पाँव बाँध वहीं कोने में डाल दिया।

आँगन में पहुँचे तो देखा, एक ओर ड्योढ़ी है और दूसरी ओर घर का पसार। लगता था कि जिस दरवाजे से बाहर निकलकर लड़की आई थी उसका कुण्डा उसने बाहर से चढ़ा दिया था जिसमें कि वायु के वेग के कारण दरवाजा न खुले। अन्दर रोशनी हो रही थी और घरवालों की बातें करने की आवाजें सुनाई दे रही थीं।

बग्गा और साहँसी दरवाजे के दोनों ओर अपने-अपने हथियार सँभालकर खड़े हो गये और कपूरा काफी साथियों को लिए गली का दरवाजा खोलने को ड्योढ़ी की ओर बढ़ा। ड्योढ़ी में मवेशी बँधे थे। एक बैल तो उसे इतना पसन्द आया कि उसके मन में एकदम यह लोभ समाया कि उसे भी वह अपने साथ लेता जाय किन्तु उस रात यह बिल-कुल असंभव था।

ड्योढ़ी का द्वार खोलकर उसने गली में झाँका तो कुछ नजर न आया। अतएव उसने बैल हाँकने के अन्दाज में हट-हट करके दो-तीन आवाजें निकालीं तो कुछ साये उसकी ओर बढ़े जैसे काली दीवारों ने उन्हें जन्म दे दिया हो।

कपूरे ने एक जवान को बन्दूक सहित घर के पिछवाड़े मनचटी के अम्बारों के पास खड़े रहने को भेज दिया और बाक़ी लोगों को अन्दर ले आया।

दो घड़ी बाद वे सब लोग दरवाजे के सामने खड़े थे। बग्गो ने छवी बढ़ाई और दरवाजे के कुण्डे में उड़सकर जब धक्का दिया तो कुण्डा बड़ी आवाज से खुलकर गिरा और तड़ातड़ बजने लगा। दरवाजे के दोनों तख्ते जोर-जोर से पंखा झलने लगे।

घर के लोग समझे कि लड़की ममटी का दरवाजा बन्द करके लौटी है। वे कुछ देर तक उसके अन्दर आने का इन्तजार करते रहे लेकिन जब कोई सूरत न दिखाई पड़ी तो एक पुरुष जल्दी से बाहर निकल आया। पहले वह दरवाजे के दोनों ओर खड़े बग्गू और साहँसी को नहीं देख पाया। जब उसने लड़की को आँगन में न पाकर गर्दन घुमाई तो बग्गू और साहँसी दीख पड़े। उसने घबरा कर पूछा—"आप कौन हैं?"

इसी बीच में बाक़ी आदमी भी ड्योढ़ी में घुस आये और दरवाजे में से उनकी भयानक आकृतियाँ दीखने लगीं। वे दोनों चुपचाप खड़े रहे। पीछे से कपूरे ने उसकी गुद्दी पर उलटे हाथ का ऐसा झापड़ दिया कि वह लड़खड़ाकर जमीन पर गिर पड़ा।

यह सब कुछ पलक झपकाते में हो गया। वे सब तुरन्त मकान के अन्दर घुस गये। लालटेन की रोशनी में उनके हथियार जगमगा उठे। जान के डर से घर के किसी आदमी ने शोर नहीं मचाया। उनका भी वही इलाज किया गया जो पहली लड़की का किया गया था।

कपूरा तनिक छिपा-छिपा सा रहा जिसमें कि उसे कोई पहचान न ले। वह बग्गे को भीतर वाले कमरों में ले गया और उनकी पूँजी की ओर इशारा किया। देखते ही देखते सब कुछ समेट लिया गया। फिर वे सब आँगन में आ गये। बग्गू ने एक निगाह में साथियों की संख्या जाँच ली और फिर वे दो हिस्सों में बँटकर पड़ोस के मकानों की ओर बढ़े जिनके सहन एक दूसरे के साथ मिले हुए थे।

इतने में बाहर से गोली चलने की आवाज सुनाई दी। उनके क़दम

रुक गये। कान खड़े हो गये। फिर धड़धड़ दो गोलियाँ चलने की आवाजें सुनाई दीं। इसके साथ आँधी के शोर में पुरुषों के ललकारने की आवाजें सुनाई पड़ी।

मौके की निज़ाक़त समझते हुए वे बाहर की ओर भागे।

जिस नौजवान निशानेबाज की ड्यूटी कपूरे ने बन्दूक सहित मकान के पिछवाड़े लगाई थी उसने हड़बड़ाहट में ये गोलियाँ चला दी थीं। हुआ यह कि आँधी के जोर से मनछुटी और झाड़ के अम्बार हिलने लगे और लुढ़कते हुए उसकी ओर बढ़े तो वह घबरा गया और उसने न जाने क्या समझकर एक के बाद एक तीन गोलियाँ चला दीं।

इसी बीच गाँव से विभिन्न भागों से खतरे की आवाजें आने लगीं। चर्खड़ियों वाले कुएँ की ओर से 'ऐ ली-ऐ ली' का शोर उठा जिसका मतलब यह था कि उनके साथी उन्हें खतरे से आभास कर रहे थे। अब उन्होंने मेलू को आगे लगाया और सरपट भागे।

चर्खड़ियों वाले कुएँ तक पहुँचे तो वहाँ अन्धाधुन्ध लाठियाँ चल रही थीं। गाँव के मनचले भी जल्दी में जैसा हथियार मिला लेकर मुका-बिले पर आ जुटे किन्तु अन्धकार और आँधी ने उन्हें कुछ भी करने न दिया।

उधर बग्गू के सधाये हुए साथी गाँव वालों के कन्धों से कन्धे भिड़ाते हुए बड़ी सफाई से इधर-उधर बिखरकर सही-सलामत गाँव से निकल गये।

इतने में कपूरे को अपनी काली घोड़ी दिखाई दी। वह तुरन्त फलाँग कर उसकी पीठ पर सवार हो गया।

उसका विचार था कि जब वह अपनी मुँहजोर घोड़ी को एड़ देगा तो वह गाँव की भीड़ को काई की तरह चीरती हुई निकल जायगी। लेकिन ठीक उसी समय बिजली चमकी तो गाँव वालों में से कुछ ने उसे पहचान

लिया और आँधी के भयानक शोर में "काला तित्तर—काला तित्तर" का शोर घुलमिल गया।

एड़ दिये जाने पर घोड़ी सिमटकर जो उछली तो गाँव के एक मनचले युवक ने उसकी लगाम पर झपट्टा मारा। इस पर घोड़ी हिनहिनाकर पिछले पाँव पर खड़ी हो गई। उसकी आँखें फट गईं, कान फड़फड़ाए और अयाल लहराये...सवार ने होंठ काटकर अपनी लम्बे हत्थेवाली कुल्हाड़ी ऊपर उठाई किन्तु घोड़ी के अगले पाँव जमीन पर लगने भी न पाये थे कि एक छवी चमकी और कपूरे के पेट की आतें उधेड़ती हुई उन्हें पेट से बाहर निकाल लाई।

वह बड़े मगर-मच्छ की तरह बल खाकर औंधे मुँह जमीन पर गिरा। पेट के खून का फ़व्वारा छूटा और क्षण भर में जमीन उसके गाढ़े खून से लाल हो गई......

फिर बारिश की मोटी-मोटी बूँदे गिरने लगीं।

वैवले–२८

शहर का वह हिस्सा, जिसे पहले सचमुच शहर का हिस्सा कहा जा सकता था, अब बुरी तरह बरबाद हो चुका था। टूटे फूटे मकान दूर से देखने वालों को बिलकुल निर्जन खंडहर दिखाई देते थे और अगर उन वीरान गलियों में पश्चिमी पंजाब से आये हुए शरणार्थियों की चहल पहल न होती तो शायद दिन के वक्त भी आदमी को वहाँ जाते डर लगता।

कुछ समय पहले यहाँ के असल निवासियों अर्थात मुसलमानों को भीषण संकटों का सामना करना पड़ा था। जो विपदा उन पर पड़ी थी उसकी कहानी इन खंडहरों की जबानी सुनी जा सकती थी। दंगों के बाद

जब कि असल निवासी प्रस्थान कर गये थे और अभी शरणार्थी आकर बसे नहीं थे, इस बस्ती की बड़ी बुरी दशा थी। मकान गिराये गये थे, जलाये गये थे, सारांश यह कि उनकी ईंट से ईंट बजा दीगई थी। मकानों के बिना दरवाजों की चौखटें मानों आश्चर्य से मुँह खोले कभी न लौटने वाले निवासियों की बाट जोह रही थीं। धूल भरे आकाश में गिद्ध मंडराते थे। खुजली के मारे हुए कुत्ते कोने खुदरे सूँघते फिरते थे और भूली भटकी गायें ईंटों के ढेरों में ठोकरें खाती फिरती थीं।

इस भयंकर बरबादी में यदि एक सम्प्रदाय के मकानों को अत्यधिक हानि पहुँची थी तो दूसरी ओर दूसरे सम्प्रदाय के इक्का-दुक्का मकान सही-सलामत खड़े थे। उन्हीं मकानों में एक सरदार बुद्ध सिंह का मकान भी था।

इतने अच्छे नाम वाले सरदार जी बड़े बेतुके डौल डौल वाले आदमी थे। नाटा क़द, कद्दू सा सिर, छोटी छोटी जिज्ञासा पूर्ण आँखें, मोटा शरीर, लम्बी लहराती हुई डाढ़ी—सुबह शाम पाठ करते, माला जपते। यों तो माला हर समय कलाई से लिपटी रहती थी परन्तु प्रातः काल जब वे ग्रंथ साहब का लम्बा पाठ करने लगते थे तब घर के अन्य लोगों की नींद उखड़ जाती थी। आप गुरुद्वारे में भी पाठ करवाते रहते थे। दूसरों को भी पाठ का उपदेश देते रहते थे।

दंगे के दिनों की कहानियाँ बड़े करुण स्वर में दोहराते थे। कहते—यह सारी आबादी मुसलमानों की थी। यह आबादी के सिरे पर हम लोगों के मकान थे। इसीलिए उन दिनों उन्हें अपना मकान छोड़ हिन्दू मुहल्ले में जाना पड़ा। शहर में उनके कई और मकान भी थे किन्तु वे सब किराये पर उठे थे अतएव उन्हें बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था।

इधर जब पाँसा पलटा तो उन्होंने डर के मारे भागते हुए मुसलमानों की हजारों की जायदादें कौड़ियों के मोल ख़रीद लीं और फिर मालदार

शरणार्थियों के हाथ अधिक से अधिक दामों पर बेच कर जी खोलकर मुनाफ़ा कमाया। उनके पाठ में और तेज़ी आगई और उनका चेहरा ज्ञान के प्रकाश से दमक उठा।

दूर तक फैले हुए खंडहरों के एक सिरे पर खड़े हुए कुछ सही-साबित मकान अजब हास्यास्पद दृश्य प्रस्तुत करते थे। उनमें सब से अच्छा मकान बुद्ध सिंह का था। दो मंज़िले मकान का कुछ भाग उन्होंने किराये पर उठा दिया था और ऊपर वाले तल्ले में वे स्वयं रहते थे। उनके घर के पास ही रेल का पुल था। रात दिन रेलगाड़ियाँ उधर के गुज़रती थीं। ऐसे अवसरों पर इन्जन की सीटियों और गाड़ी को गड़गड़ाहट का शोर इतना तीव्र होता था कि कान पड़ी आवाज़ नहीं सुनाई देती थी।

शरणार्थियों ने घबराहट में जो काम सामने आया शुरू कर दिया। लगातार कष्ट झेलने के कारण उनके हवास ठिकाने नहीं रहे थे। कुछ लोगों के सम्बंधी मर खप गये थे, कुछ अनाथ या बेसहारा रह गये थे। इस प्रकार के असंख्य कुटुम्बों में एक कुटुम्ब विसाखा सिंह का भी था।

विसाखा सिंह पश्चिमी पंजाब के जिला लायलपुर का एक साधारण किसान था। उसके दो लड़के थे और तीन लड़कियाँ। वह स्वयं काला-पन लिये हुए गेहुएं रंग का लम्बा तड़ंगा और मज़बूत आदमी था। उसके हाथ सचमुच हल की हत्थी थामने के लिये बने थे। उसका विवाह छोटी अवस्था में ही हो गया था अतएव वह अभी सैंतीस वर्ष का था और उसका बड़ा लड़का उन्नीस वर्ष का हो चुका था। उससे छोटा लड़का सत्तरह वर्ष का। लड़कियों में सब से बड़ी पन्द्रह वर्ष की थी। छोटी लड़कियाँ भी चार पाँच वर्ष तक जवान हुआ चाहती थीं।

पहले पहल अपने घरों से निकल कर उन्हें कैम्प में दबके रहना पड़ा। न कुछ खाने को न पीने को। न तन ढाँकने को कपड़ा और न

सिर छिपाने को कुटिया। फिर हर समय प्राणों का भय अलग रहता था।

जीवन का एक एक पल बिताना अत्यधिक कष्टप्रद सिद्ध हो रहा था। यह काफिला अजब अस्तव्यस्त दशा में पूर्वीय पंजाब की ओर रवाना हुआ। बच्चे, बूढ़े, स्त्रियाँ और पुरुष थके हुए क़दमों के साथ भूखे प्यासे थके हारे, प्राण हथेली पर लिये मंज़िल की ओर बढ़ रहे थे। रास्ते में दंगाइयों के समूह बढ़ बढ़ कर हमले करते थे। क़ाफ़िले में कई बहादुर आदमी भी थे जो मौका पड़ने पर बड़ी बेजिगरी से लड़ते थे। लेकिन भूख और प्यास के मारे हुओं का लड़ना भी क्या। कभी कभी अँधेरी रातों में रूखी सूखी खाकर लोग खेतों की मेंड़ों पर ही करवट बदलकर ऊँघने लगते। जगह जगह सुलगती हुई आग में से चिंगारियों की फुलझड़ियाँ छूटने लगतीं। कोई आँखों से अंधी बुढ़िया पोपले मुँह से काँपती हुई बेसुरी आवाज में शब्द गाने लगती तो एकाएक शोर मच जाता। दंगाई छापा मारते। वे बेखटके डेरे के अन्दर घुस आते। तारों के मंद प्रकाश में तेजी से बढ़ती और उचकती हुई छाया दिखलाई पड़तीं। भाग दौड़ मच जाती। जब हमलावर बची खुची गठरियाँ और पोटलियाँ छीन लेने की चेष्टा करते तो स्त्रियों के रोने चिल्लाने से आसमान गूँज उठता। लेकिन तारे चुप चाप आँखें झपका झपका कर तमाशा देखा करते। धार्मिक नारों, 'मारो मारो' का शोर और पहरेदार सिपाहियों की बंदूकों की तड़ातड़ की आवाजें धीरे धीरे मन्द पड़ जातीं। असहाय और अनाथ कराहती हुई स्त्रियाँ और घायल मनुष्यों के सुते हुए चेहरे बाकी रह जाते। यह क़ाफ़िला पक्के हुए फोड़े के समान था जिसे बार बार चर्के दिये जाते थे और जो सदैव रिस्ता रहता था।

बिसाखा सिंह ने स्वयं भी मौका पड़ने पर लड़ने-भिड़ने से जी नहीं चुराया। उसे और उसके दोनों लड़कों को भी अनेक घाव लग चुके थे। अन्त में जब वे भारत की सीमा में दाखिल हुए तब उनके दम में दम

आया। वहाँ उन्हें दूध और जलेबियाँ खाने को मिलीं। पूड़ी-कचौड़ियाँ भी मिलीं। उस समय उन्हें इस बात की अत्यधिक प्रसन्नता थी कि अब वे आराम की नींद सो सकेंगे। अब उनका कोई दुश्मन रात में छापा नहीं मारेगा। अब उनकी बहू-बेटियों की लाज कोई नहीं लूटेगा। अब उनके जान-माल की पूरी-पूरी रक्षा की जायगी।

भारत की सीमा के अन्दर प्रवेश करते ही काफ़िला मनके के दानों की भाँति बिखरने लगा। कुछ लोग रास्ते में जो शहर पड़ते वहाँ तक जाते। भागे हुए मुसलमानों के मकानों पर क़ब्जे होने लगे। बिसाखा सिंह ने भी बुद्धि सिंह के पड़ोस में एक टूटे फूटे से मकान में डेरा जमा दिया। यह मकान वास्तव में ऐसी बुरी दशा में था कि उस समय तक किसी को उस पर क़ब्जा जमाने का ध्यान तक नहीं आया था। क्योंकि और कोई मकान खाली नहीं था इसलिए बिसाखा सिंह ने उसे गनीमत समझा।

यह विचित्र प्रकार की बस्ती थी। लुटे हुए बदनसीब लोगों के छोड़े हुए मकानों में तबाह और बरबाद होकर भागे हुये बदनसीब लोग आबाद हो रहे थे। संसार के इतिहास में मनुष्यों के दो दलों ने एक दूसरे से इतना भयानक मज़ाक़ कभी नहीं किया होगा।

मानव-शरीर की हड्डियों का ढाँचा भयानक और शिक्षाप्रद चीज है लेकिन जली-फुँकी और उजड़ी बस्ती का दृश्य भी कुछ कम भयानक और शिक्षाप्रद नहीं।

ऊँची-नीची और ऊबड़-खाबड़ गन्दी गलियों में उदास चेहरों वाले दुर्बल और लाचार मनुष्य आँखों में दुःख और निराशा लिए इधर-उधर घूमा करते थे। यह बस्ती दिन के किसी क्षण में भी कोई सुखद या मनोहर दृश्य उपस्थित नहीं करती थी। रात के स्वप्निल प्रकाश में वह एक लम्बे-चौड़े क़ब्रिस्तान के समान दीखती थी। सुबह के समय जब सूर्य का तीखा प्रकाश अन्धकार की चादर को फाड़ देता तब यह बस्ती मानो

अपनी तबाही पर रोने लगती थी। सारे-सारे दिन बहके-बहके लोग इधर उधर घूमा करते। कुत्ते भूँकते, मरियल बिल्लियाँ हड्डियाँ चिचोड़तीं और मक्खियाँ भनभनाया करतीं। शाम के समय तन्दूर और चूल्हे जल जाते। पहले तो धुएँ की पतली-पतली लकीरें ऊपर को उठने लगतीं और फिर धुएँ के खम्भे बन-बनकर बोझिल बादलों के समान आकाश के इस सिरे से उस सिरे तक फैल जाते। इस फैली-फैली सियाही के नीचे वह बस्ती और भी तुच्छ तथा घृणित दीखने लगती।

पहले-पहल बिसाखा सिंह ने वाह गुरू को लाख-लाख धन्यवाद दिया। आखिर यह अकाल पुरुख की कृपा ही तो थी कि वह अपने सारे कुटुम्ब सहित सारी कठिनाइयों को सकुशल पार कर आया था। धीरे-धीरे जीविका की चिन्ता सताने लगी। कुटुम्ब का पेट पालने का प्रश्न सबके सामने उपस्थित हो गया। वैसे तो प्रत्येक व्यक्ति के लिए जमा-जमाया काम छूट जाने के बाद नये सिरे से काम शुरू करना बहुत ही कठिन समस्या थी किन्तु बिसाखा सिंह जैसे लोगों के लिए, जो पहले खेती-बाड़ी करते थे और जो अन्य कोई भी कला नहीं जानते थे, यह समस्या न सुलझ सकने वाली उलझन बनकर रह गई थी। और फिर बिना पूंजी के तो कुछ भी नहीं हो सकता था। अन्त में सिवा मज़दूरी के दूसरा कोई उपाय नहीं रह गया। फिर भी घर का ख़र्च पूरा नहीं पड़ता था। जान-पहचान वालों के सामने यद्यपि इस प्रकार का काम करने में वह अपनी बड़ी हेठी समझता था क्योंकि पहले वह उसके सामने अच्छा-खासा सम्मानित जीवन बिताता था। सारांश यह कि इस प्रकार जीवन की गाड़ी चर्र-मर्र करती हुई घिसटती चली जा रही थी।

बस्ती में पहुँचते ही गुरुद्वारे में सर्दार बुद्ध सिंह से उसकी मुलाकात हुई। यों ही बुद्ध सिंह को उसकी बातों में दिलचस्पी पैदा हो गई। साँझ के समय बिसाखा सिंह उनके यहाँ चला जाता और उन्हें उन विपदाओं की कहानियाँ सुनाता जो रास्ते में उस पर पड़ी थीं। बिसाखा सिंह के मन

में एक हल्की-सी आशा थी कि सर्दार बुद्ध सिंह से उसे कुछ न कुछ लाभ अवश्य पहुँचेगा। इसी लिए उसने उनके यहाँ आना-जाना शुरू कर दिया।

विसाखा सिंह के दिल में बुद्ध सिंह के लिए बड़ा आदर था। एक तो बुद्ध सिंह सूरत से ही बड़ा गुरुमुख दीखता था। उसका वह चौड़ा माथा, चमकती आँखें, लम्बी दाढ़ी जिसके अधिकांश बाल सफेद हो चुके थे। प्रेम रस में डूबी हुई उसकी वह मीठी-मीठी बातें और फिर वह सुबह शाम पाठ करता था। देखने में लगता था कि उसे दुनिया की झंझटों से कोई मतलब नहीं है, वह इस माया-जाल से दूर भागता है। विसाखा सिंह की विपदाओं का हाल वह बड़े ध्यान से सुनता। लगता था कि उन पर किये गये अत्याचारों का हाल सुन-सुनकर हृदय मोम की भाँति पिघला जा रहा है। इस पर विसाखा सिंह का दिल भर आता और वह रुँधे हुए स्वर में अपने लहलहाते हुए खेतों की चर्चा करता जहाँ हर साल लाखों सुनहरी बालियाँ हवा में झूमा करती थीं। वह गेहूँ के उन ढेरों की चर्चा करता जो उसके घर के अन्दर कोठियों में ठसाठस भरे रहते। अपने बैलों, अपनी भूरी और काली भैंसों, अपने मकान, सारांश यह कि हर चीज की कहानी सुनाता। बुद्ध सिंह उसकी बातों से बड़ा प्रभावित दिखता था। वह आदमी जिसके बारे में कहा जाता था कि उसके पास लाखों रुपया नकद मौजूद है, मकान है, कारखाने हैं विसाखा सिंह की बातें सुनने के बाद बड़ी गंभीर मुद्रा बनाकर सिर हिलाता और कहता—"विसाखा सिंह जी ! पाठ किया करो।"

विसाखा सिंह ने खूब पाठ करना शुरू कर दिया। स्वयं भी किये और पत्नी तथा बच्चों से भी कराये किन्तु जब उनका कोई फल न निकलता तो विसाखा सिंह कहता—"सर्दार साहब जी ! देखिए जवान लड़कियों का भी कितना भार होता है ! सन्तो बड़ी हो गई है। ऊपर से

कलयुग का ख्याल कजिए। मेरे पास तीन-चार सौ रुपया भी हो तो मैं किसी न किसी तरह बड़ी लड़की के भार से मुक्त हो जाऊँ।"

"वाह गुरू! वाह गुरू!!" बुद्ध सिंह जवाब देता—"बिसाखा सिंह जी! नाम जपा करो नाम। नाम में बड़ी शक्ति है।"

बिसाखा सिंह ने नाम जपना शुरू कर दिया। खूब जी भर कर नाम जपा। यहाँ तक कि एक माला भी खरीद डाली। हर समय उंग-लियों में मनके घूमते रहते थे। एक पहर रात बाक़ी रहती तभी वह जाग उठता, स्नान करता और फिर एक टाँग पर खड़ा होकर माला जपने लगता।...सारे दिन काम की तलाश में मारा मारा फिरता। बेटे अलग जीविका की खोज में परेशान थे लेकिन फल कुछ न निकलता।

बिसाखा सिंह कहता—"महाराज जी! यदि मेरे पास कहीं से पाँच सौ रुपया भी आ जाय तो कोई छोटी मोटी दूकान ही खोल डालूँ।"

जवाब मिलता—"बिसाखा सिंह जी! गुरुद्वारे जाया करो। सारे परिवार को ले जाया करो। गुरु के दर्बार में क्या नहीं है? जो माँगेगा सो मिलेगा गुरु के घर में किसी चीज की कमी नहीं है। खालसा जी! लेकिन श्रद्धा होनी चाहिये? बिना श्रद्धा के कुछ भी नहीं प्राप्त हो सकता। अजी बाबा अभीख सिंह जी कह गये हैं कि श्रद्धा का फल अवश्य मिलता है। चाहे दो, चार, दस, बीस या पचास वर्ष के बाद ही मिले...लेकिन श्रद्धा का फल मिलता अवश्य है।

अतएव अब गुरुद्वारे के चक्कर लगाने लगे। उसकी पत्नी उसकी इन बातों से परेशान हो गई। एक दिन बिसाखा सिंह ने आँखें मूँद कर बड़े प्रेम से कहा—"सन्तो की माँ, श्रद्धा का फल अवश्य मिलता है। चाहे दो, चार, दस, बीस या पचास वर्ष के बाद ही मिले।"

यह सुनकर उस दुखी नारी ने यकायक अपनी मैली-मैली आँखें ऊपर उठाई। पहले कुछ क्षणों तक तो उसके मुँह से एक शब्द तक नहीं निकल सका फिर बड़ी कठिनाई से रुक-रुककर रूँधे हुए स्वर में बोली—

"दस, बीस, पचास वर्ष ?" और फिर उसकी काँपती हुई आवाज़ बन्द हो गई। सिर में जुम्बिश हुई और उसके होंठ काँप कर और नथुने फड़क कर रह गये।

इसके बाद कुछ कहने सुनने की आवश्यकता ही नहीं रही थी। क्या सन्तो और उसकी बहनें चालीस-पचास वर्ष तक श्रद्धा के फल का इन्तजार कर सकती थीं। क्या उसके नौजावन लड़के श्रद्धा के फल के इन्तज़ार से बूढ़े न हो जायँगे ? क्या दुनियाँ के किसी मनुष्य को इतना धैर्य भी है कि वह दस, बीस, चालीस

बिसाखा सिंह के दिमाग में खलबली सी मच गई।

उस रात दिये के मन्द प्रकाश में वह टाँगें समेटे दोनों घुटनों को बाहों में दबाये दीवार से पीठ लगाये अपने विचारों में देर तक खोया रहा। उसकी घनी भवों के नीचे काली पुतलियाँ बड़ी तेजी से इधर-उधर नाच रही थीं। दिये की थरथराती लौ में घर के लोग चलती हुई परछाइयों के समान दीख रहे थे। दृष्टि सीमा तक रात के धुंधले वायुमंडल में टूटे फूटे घरों के सिलसिले अजीब भयानक दृष्टि प्रस्तुत कर रहे थे। जिस घर में वह रहता था उसका अधिकांश भाग गिर चुका था। शायद दंगाइयों ने ही उसे आग लगाई होगी। दीवारों और छत की कड़ियाँ कुछ जल जाने के कारण और कुछ धुआँ लगने की वजह से बिलकुल काली पड़ गई थी। कड़ियाँ तो इतनी कमजोर हो गई थीं कि निवासियों को हर समय उनके गिर जाने की आशंका रहती। उस दिन आटा न होने के कारण खिचड़ी पकाई गई थी और घर के सब लोग उसी पर सन्तोष करने के लिये मजबूर थे। उसकी तीन लड़कियाँ— वह उन्हें एकटक खोई खोई दृष्टि से देखने लगा। मानो उसने उन्हें पहले कभी न देखा हो—यह आकृतियाँ कैसी हैं, कौन है, कहाँ से आई हैं और सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह था कि वे जायँगी कहाँ ? उसके दोनों बेटे नंगे सिर बैठे खिचड़ी खा रहे थे। बार बार कौर के लिए मुँह

फाड़ते थे। उनके जूड़ों में से निकलकर ऊपर को लहराते हुए बालों के गुच्छे मुर्गे की कलंगी की भाँति दीख रहे थे। वे लगातार मुँह चलाये जा रहे थे। बिसाखा सिंह बिलकुल अचेत-सा हो रहा था। मानो उसका उस वातावरण से कोई सम्बन्ध न हो। जैसे वह सब से ऊपर और अलग बैठा इस दुनिया के खेल देख रहा हो। लेकिन वह अधिक देर तक इस तन्द्रिल अवस्था में लीन न रह सका। उसे जल्द ही इस बात का अनुभव हो गया कि यह सब कुछ स्वप्न नहीं था और न वह उनसे अलग था। कितनी विचित्र बात थी। कोसों तक फैली हुई धरती पर गेहूँ के सुनहरे गुच्छों से लदे हुए पौधे खड़े थे। विशाल आकाश के नीचे वाह गुरू अकाल पुरुख की विशाल धरती मौजूद थी किन्तु उसके भक्तों को न खाने को अनाज मिलता था और न सिर छिपाने को जगह मिल पाती थी। आश्चर्य! बुद्धू सिंह के पास इतना रुपया है, मकान हैं, कारखाने हैं, बेफिक्री है, आनन्द है...

दूसरे दिन संध्या समय बिसाखा सिंह बस्ती में बेनकेल घूमता फिर रहा था। उसके मन में अजीब उलझनें पैदा हो रही थीं। घरेलू परेशानियाँ दिन पर दिन बढ़ती जा रही थीं। उनका कोई हल दिखाई नहीं देता था। पहले उसे कभी इतने सोच विचार और चिन्ता की आवश्यकता ही न पड़ी। उसे याद था कि वे दो भाई थे और एक बहन। उनके बाप को उन सब से बड़ा प्रेम था। लड़कपन और युवावस्था उसने बड़ी बेफिक्री से बिताया था। खेल कूद गीत और अलगोजों तथा प्रेम और मुहब्बत के सिवा उसने और किसी चीज के सम्बन्ध में सोचा ही न था।

जब वह जवान हो गया तो निश्चिन्तता और स्वच्छन्दता के कारण जब और कुछ न सूझा तो उसने चोरों और डाकुओं से याराना गाँठा। दो तीन वर्ष इसी प्रकार के कामों में बीत गये। जब बाप ने देखा कि बेटा सीधे रास्ते से भटककर अपनी जिन्दगी खराब करने पर तुला है तो

उसने उसका विवाह कर दिया। दाम्पत्य-जीवन के बन्धन कुछ ऐसे मजबूत सिद्ध हुए कि वह जिम्मेदार गृहस्थों की भाँति जीवन व्यतीत करने लगा।

विवाह के पश्चात बाल-बच्चे भी हुए। जीवन के कठिन उतार चढ़ाव से होकर भी गुजरना पड़ा, लेकिन उसे आज तक ऐसा कटु अनुभव नहीं हुआ था कि मनुष्य पेट की रोटी और तन के कपड़े के लिये ईमानदारी से काम करना चाहे तो उसे काम ही न मिले। वर्तमान आर्थिक पेचीदगियाँ उसकी समझ में बिलकुल नहीं आती थीं। उसे ये सब चीज़ें एकदम अस्वाभाविक दीखती थीं। किन्तु उसका दिमाग़ इन समस्याओं को हल करने में असमर्थ था।

वह मुहल्ले-मुहल्ले घूमता फिरा। गन्दी-गन्दी गलियाँ जहाँ रुके हुए पानी की नालियों से ऐसी तीव्र दुर्गन्ध उड़ती थी कि दिमाग़ फटा जाता था। जगह जगह गली सड़ी सब्जियों, प्याज के छिलकों और कूड़े करकट के ढेर दिखते थे। ऊँची-नीची गलियों में जगह-जगह टूटे फूटे मकानों की ईंटें, मिट्टी, चूना और रोड़ी फैली हुई थी। मटियाले रंग की भद्दी और गन्दी दीवारें तबीयत को और अधिक परेशान कर देती थीं। फटे पुराने चीथड़े लटकाए छोटे-बड़े बच्चे चीखते और चिल्लाते हुए एक दूसरे के पीछे और आगे भाग रहे थे। अधिकांश मकान ऐसे थे, जिनके चार(तक जल चुके थे। उनके अन्दर आँगन के दृश्य साफ़ दिखाई देते थे। ढीली रस्सियों वाली चारपाइयाँ, उन पर बैठी हुई मैले कुचैले दुपट्टों के आँचल उड़ाती स्त्रियाँ और उनके भूख से बिलखते बच्चे जो चीख चीख कर माँओं की छातियों को टटोलते थे। परन्तु उन छातियों में अब दूध कहाँ रह गया था ? कहीं कहीं हलकी आँच पर तीन तीन दिनों की बासी रोटियाँ उबाली जा रही थीं।

घूम फिर कर विसाखा सिंह बुद्धू सिंह के मकान के आगे पहुंच कर रुक गया।

साँझ के समय बुद्धसिंह के दर्शन करना उसका नित्यक्रम बन गया था। बुद्धसिंह को, जिसे घर में बड़े सर्दार जी के नाम से पुकारा जाता था और गुरुबानी की बातें करने और व्याख्यान देने का बड़ा चस्का था अतएव वह इस प्रकार के लोगों से बड़े तपाक से मिलता था जो उसकी आध्यात्मिकता के कायल होकर उसकी बातें ध्यानपूर्वक सुनना अपना कर्त्तव्य समझते थे। वह ग्रन्थ साहब में से श्लोक पढ़ता और ज्ञान ध्यान की बातें सुनाया करता था।

बिसाखा सिंह ने ड्योढ़ी में से ऊपर को जाती हुई खुली और साफ सुथरी सीढ़ियों की ओर देखा, जो अभी-अभी धोई गई थीं। सीढ़ियों के ऊपर वाले दरवाजे में से क्षितिज में चमकते सूर्य की तेज रोशनी दीख रही थी। प्रकाश एक प्रकार से सागर था जो निचली सीढ़ियों तक लहरा रहा था।

यह दृश्य देख उसकी आँखें चौंधिया गई।

नौकर से मालूम हुआ कि बड़े सर्दार जी घर ही में हैं। वह धीरे धीरे सीढ़ियों पर चढ़ने लगा। ऊपर के दरवाजे के दाईं ओर पूरा कुटुम्ब रहता था और बाईं ओर का, जिसमें दो कमरे और एक आँगन था, उसमें केवल बड़े सर्दार साहब रहते थे। बड़े हिस्से से छोटे हिस्से तक एक चौड़ा मार्ग था जिसके दोनों ओर फूलों के गमले रखे थे।

बिसाखा सिंह ऊपर पहुँचा तो उस समय सर्दार साहब आँगन में चबूतरे पर आसन बिछाये बैठे थे। पासही चौकी पर पानी का लोटा और अंगोछा धरा था जिससे प्रकट होता था कि वे अभी-अभी पाठ करके उठे हैं। सूर्य क्षितिज तक पहुँच चुका था और बदली का एक टुकड़ा उसे अपने आँचल में छिपा लेने का प्रयास कर रहा था।

वह आगे बढ़ा तो सर्दार साहब ने पाँव की आहट पाकर पीछे घूमकर देखा। उसने सत सिरी अकाल का नारा लगाया। सर्दार साहब की मूछें

होठों पर बड़ी मनोहर मुस्कान उत्पन्न हुई, "आइये-आइये, बिसाखा सिंह जी ! कहिये, क्या हाल है !"

"कृपा है ! अपनी कहिए ।"

बड़े सर्दार साहब ने सिर पर लिपटी हुई छोटी पगड़ी पर हाथ फेरते हुए कहा—"अभी-अभी पाठ खतम किया है।...जरा सामने के दृश्य का आनन्द ले रहा था ।"

दृश्य !

बिसाखा सिंह ने गर्दन उठाकर देखा । उसे कोई ऐसा दृश्य न दिखा, जिसका वह भी आनन्द ले सकता । धूमिल वायुमण्डल में ध्वस्त जले फुँके मकानों के सिलसले और उनकी अँधेरी गन्दी गलियाँ में निरीह कीड़ों के समान रेंगनेवाले दुखी मनुष्यों में से कोई भी ऐसा दृश्य नहीं प्रस्तुत कर रहा था जिसका आनन्द लिया जा सके...सचमुच, बड़ों की बातें भी बड़ी होती हैं ।

वह और निकट पहुँचा तो सर्दार साहब ने बड़ी ही मिहरबानी से चौकी की ओर इशारा करते हुए कहा—"लोटा और अंगौछा मुँडेर पर रखकर चौकी पर बैठ जाइये ।"

बिसाखा सिंह ने आज्ञा का पालन किया !

उसने अपने धूलों से अटे हुए पुराने जूतों की ओर छिपी दृष्टि से देखा और मैले टखनों की तहबन्द के कोनों से ढाँपते हुए पाँव समेट लिये ।

"वाह गुरू ! वाह गुरू !!" सर्दार साहब की घनी मूछों में से आवाज निकली, "देखिये सर्दार साहब ! भगवान की लीला भी कैसी न्यारी है ।...मैं दिन रात सोचा करता हूँ कि आख़िर यह जग माया ही तो है । ये मकान, यह जमीन, यह भोग-विलास के सब सामान एक दिन धरे के धरे रह जायेंगे । धन्य हैं वे लोग जो रूखी-सूखी खाकर भी वाह गुरू के नाम का सुमिरन करते हैं । स्वर्ग भी तो आकास पुरुख ने ऐसे ही लोगों के लिये

बनाया है। हम लोग तो गुनहगार हैं, पापी हैं। हे वाह गुरू! हे वाह गुरू !!..."

इसके बाद उन्होंने एक गुरूभक्ति की कहानी सुनाई। एक साधू था। रामनाम का प्यासा। उसका जी चाहा कि खीर खाय। बुद्धि ने कहा, मूर्ख! तू साधू है, सन्यासी है, तुझे इन चीजों से क्या मतलब! मन नहीं माना तो उसने अपने घर जाकर खीर खाई। इतनी खाई, इतनी खाई कि मन बस-बस पुकार उठा किन्तु अब बस कहाँ। साधु तो मन को सीख देना चाहता था ...।

यह कथा सुनकर बड़े सर्दार साहब ने मिस्कीन सूरत बनाई और आँखें मटकाकर आकाश की ओर देखा, जो उस समय रक्त के समान लाल हो रहा था।

पहले जब बिसाखा सिंह उनकी यह बातें सुनता तो श्रद्धा से गदगद हो जाता था किन्तु आज यह सब बातें उसे बड़ी अजीब-सी मालूम हो रही थीं और फिर सर्दार साहब के मुँह से वह और भी अनोखी लगती थीं। बिसाखा सिंह पर यह भेद तो तब खुला था कि खाली पेट लम्बे पाठ करना तो एक ओर रहा, मनुष्य के मुँह से एक शब्द 'वाह गुरू' तक निकलना असंभव है। उसे ख्याल आया कि इस आदमी के वातावरण के उजलेपन में हजारों गरीबों की तमन्नाओं के खून की लाली बड़ी कुशलता से छिपा दी गई।

बड़े सर्दार साहब की बातों का सिलसिला जारी था।

धुएँ के खम्भे बस्ती से ऊपर उठने शुरू हो गये थे। वे एक साथ मिलकर बोझिल बादलों का रूप धारण कर रहे थे। मकान के बड़े हिस्से की ओर से सफेद और उजली दीवारों के सिलसिलों में से हँसते, खेलते, बोलते-चहकते बच्चों और औरतों के रुपहले स्वर गूँज रहे थे।

यकायक सर्दार साहब बोले—"आइए बिसाखा सिंह जी अन्दर चलें। सर्दी बढ़ती जा रही है।"

सर्दार जी कमरे की ओर बढ़े। उनके पीछे-पीछे चलते हुए बिसाखा सिंह ने घूमकर देखा कि क्षितिज पर अस्त होते हुए सूर्य के सिर पर बदलियों के कुछ टुकड़े मचल रहे और खून से सनी हुई संगीन की तरह सूरज की एक लम्बी किरण मटयाले आकाश की छाती के पार हो गई है।

दो कमरों में से एक में गुरुग्रन्थ साहब का प्रकाश किया गया था। उस कमरे में मौत की-सी खामोशी छाई थी। गुरु ग्रन्थ साहब ऊँचे चबूतरों पर रंगीन रूमालों में लिपटे हुये थे। उनके आगे दरी पर बिछे हुए रूमाल के दामन में कुछ रंगीन-फूल दिखाई दे रहे थे। मक्खियाँ झलने की चवरी के सफेद बाल घोड़े की अयाल की तरह एक ओर को लटके थे। दायें-बायें छोटे-छोटे फूलदान और उनमें बासी घास में कुछ फूल उड़से दीख रहे थे। बिजली अभी वहाँ नहीं आई थी, इसलिए एक छोटा सा सुन्दर लैम्प चौकी पर रक्खा था।

बड़े सरदार साहब का कमरा भी बड़ा था। फर्श पर दरी और दरी पर दो छोटे-छोटे पुराने गालीचे बिछे थे। सरदार साहब उजले बिस्तर पर बैठ गये। सिरहाने से पास रखी तिपाई पर एक बहुत बड़ा और सुन्दर तेल का लैम्प जल रहा था।

बिसाखा सिंह के लिए वही परिचित वातावरण था। एक ओर दीवार पर गुरु नानक साहब का बड़ा-सा चित्र था जिसमें वे नाम जपते हुए दिखाये गये थे। आँखें भक्ति रस में डूबी हुई, हाथ में माला। 'नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन-रैन'। उन्होंने लोगों की गाढ़ी कमाई का रुपया नहीं खाया था बल्कि सच्चा सौदा किया था जिस पर बाप ने उन्हें बुरी तरह पीटा था। धार्मिक घटनाओं से सम्बन्धित और भी कई चित्र लटके थे। एक ओर दीवार के साथ ड्रेसिंग टेबुल रखी थी, जिस

पर कंघे, ब्रश तेल की शीशियाँ बेतरतीबी से रखी हुई थीं। एक ओर फर्श पर कुछ पीले रंग की कौड़ियाँ बिखरी पड़ी थीं। शायद बच्चे उन्हें वहाँ भूल गये थे।

सर्दार जी ने गावतकिया बगल में दबाया और पास की आलमारी में से हरे रंग की जिल्द वाली एक मोटी-सी किताब निकाली। उसमें अनेक भक्तों की कविताएं टीका सहित छपी थीं। सर्दार जी ने बड़े प्रेम से कविताएं सुनानी शुरू कीं। बिसाखा सिंह कुर्सी पर भौंड़े अन्दाज में बैठा देखने में सुन रहा था परन्तु वास्तव में उसका ध्यान उन चीजों की ओर नहीं था। कभी-कभी स्वयं सर्दार साहब भी पड़ोस के कुम्हार के घोड़ों की हिनहिनाहट में पंक्ति भूलकर कहीं के कहीं जा पड़ते।

अन्त में यह कार्यक्रम समाप्त हो गया तो सर्दार साहब ने किताब बन्द करके तिपाई पर रख दी। आकाश पर इक्का दुक्का तारे झिलमिलाने लगे थे।

सहसा सर्दार साहब बोले—"आज मैंने एक पिस्तौल खरीदा है..."

"पिस्तौल ?" बिसाखा सिंह का मुँह खुले का खुला रह गया।

"हाँ।" यह कहकर सरदार साहब आलमारी की ओर बढ़े।

"वह क्यों ?" बिसाखा सिंह ने आश्चर्य में पूछा।

सरदार साहब तनिक रुके फिर एक चपटा डिब्बा निकालकर लाये, "देखिए न आज कल समय बड़ा खराब है। दुनिया में किसी का कोई धरम-ईमान नहीं रहा। हम यहाँ रहते तो हैं लेकिन हमेशा डर लगा रहता है कि कहीं इधर-उधर के उचक्कों में से कोई घर में घुस आये तो क्या हो ! वाह गुरू ! वाह गुरू !! आजकल तो लोग ख़ामखाह हाथा-पाई पर उतर आते हैं।"

यह कहकर उन्होंने पिस्तौल की झलक दिखाई। बिसाखा सिंह ने देशी बनावट के पिस्तौल तो देखे थे किन्तु इतना अच्छा पिस्तौल देखने में नहीं आया था।

सरदार साहब कहने लगे—"यह वैब्ले कम्पनी का बना हुआ है। बहुत अच्छी कम्पनी है। स्टैण्डर्ड चीज है।...आटोमेटिक है।... अड़तीस बोर है।"

बिसाखा सिंह चुपचाप पिस्तौल की ओर देख रहा था।

"आप जानते ही हैं आजकल जमाना ख़राब है। कभी वक्त बे वक्त इधर-उधर आना जाना पड़ता है। रात को भी इसे तकिये के नीचे रखकर सोया जाय तो क़ाफ़ी निश्चिंतता का अनुभव होता है "

बिसाखा सिंह ने गर्दन तनिक आगे बढ़ाकर पूछा—"क्यों जी, इसकी क्या क़ीमत होगी?"

सरदार साहब ने लापरवाही से कहा—"यह तो सस्ता ही मिल गया। अजी आजकल यह चीज बिलकुल नायाब हो गई है। मुझे तो चौदह सौ रुपये में मिल गया है।"

"चौदह सौ?...यानी एक हजार चार सौ में!..."

यह कहते-कहते बिसाखा सिंह का गला सूख गया और उसकी आवाज भी फसँकर रह गई।

"यह देखिये...इधर से कारतूसों की मैगजीन अन्दर दाखिल की जाती है। आठ कारतूस होते हैं एक मैगजीन में। इसे इधर को हटाया और उसको उस तरफ़ दबाया...बस, अब तैयार है...एक के बाद एक, आठ गोलियाँ चल सकती हैं।"

बिसाखा सिंह ने देखने के लिए हाथ आगे बढ़ाया। सरदार साहब ने पिस्तौल उसके हाथ में थमाते हुए कहा—"ध्यान रहे। भरा हुआ है। घोड़ा दबाने की कसर है...उँगली लिबलिबी से दूर ही रखो...'

उस लोहे के ठण्डे अस्त्र को पकड़ते समय पहले तो बिसाखा सिंह का हाथ कँपकपाँया किन्तु फिर उसने उसे मजबूती से पकड़ लिया। उसे इधर-उधर घुमाकर देखा। फिर हत्था मुट्ठी में लेकर उंगली लिबलिबी पर रख दी।

सरदार साहब ने एकदम हाथ आगे बढ़ाया—"अरे, चल न जाय !"

बिसाखा सिंह ने पिस्तौलवाला हाथ तुरन्त पीछे हटा लिया और फिर उसने धीरे-धीरे सिर ऊपर उठाया। उसके होंठों पर निराश-सी मुस्कराहट उत्पन्न होकर धीरे-धीरे लुप्त हो गई उसकी आँखें राख की तरह काली और नीरस दिख रही थीं।

सरदार साहब पीछे हट गये। उनके सिर पर छोटी मलमल की पीली सी पगड़ी लिपटी हुई थी। दाढ़ी लटक रही थी। आँखों से समझ में न आनेवाले भाव झलक रहे थे। उन्होंने सूखे होठों पर जीभ फेरते हुए कहा—"चुप क्यों हो ! क्या तुम सोच रहे हो कि यदि इस समय तुम्हारे दुश्मन तुम्हारे सामने हों तो तुम उन्हें चनों की तरह भून डालो !"

"कौन दुश्मन !" बिसाखा सिंह ने नीरस स्वर में पूछा और फिर वह समझ गया कि सरदार साहब के इस संकेत का क्या मतलब है।

वह उठकर कुर्सी से अलग खड़ा हो गया। उसने भारी स्वर में कहना शुरू किया -"सुबह से शाम तक माथे से एड़ी तक पसीना बहाने वाला कोई भी व्यक्ति मेरा दुश्मन नहीं हो सकता। अब धर्म केवल दो रह गये हैं। एक दूसरों का खून चूसने और उन्हें लूटने वालों का और दूसरा अपना खून देने वालों और लुटने वालों का। इसके अलावा तीसरा कोई धर्म नहीं रहा। आप समझे...! आप न जाने कौन से ज्ञान-ध्यान की बातें किया करते हैं।...वह बातें मेरी समझ में बिलकुल नहीं आतीं...शायद इसलिए कि मैं भूखा हूँ, मेरे बच्चे भूखे हैं, मेरी स्त्री भूखी है...मैं जीवन की छोटी से छोटी आवश्यकता की पूर्ति के लिए तरसता हूँ...।"

फिर वह एक दम चुप हो गया। उसने दोबारा चौदह सौ रुपये वाले पिस्तौल की ओर देखा और निगाहें सरदार जी की निगाहों से मिलाईं।

सरदार जी हड़बड़ाकर चारपाई से उठ बैठे। तिपाई को धक्का लगा

तो लैम्प नीचे गिर पड़ा। तेल बह निकला और ग़ालीचे को आग लग गई।

बड़े सर्दार साहब के लिए बाहर जाने का रास्ता बिलकुल बन्द था। रास्ते में लम्बा-तड़ंगा बिसाखा सिंह खड़ा था। उसके चौड़े कन्धे, मजबूत टाँगे, मछलियों वाले भरपूर बाजू, तनी हुई गर्दन, चौड़े-चकले हाथ...ऐसा प्रतीत होता था मानो उसके शरीर में नसों के बजाय फौलाद के तार खींच दिये गये हैं...मजबूत, अभिमानी, अटल—बड़े सरदार साहब दीवार से चिपके खड़े थे। रंग पीला पड़ चुका था। साँस तेजी से चल रही थी। पुलपुला पेट नीचे-ऊपर हो रहा था। माथे पर पसीने की बूँदें फूट पड़ी थीं। वह इतने भयभीत हो चुके थे कि सूखे कण्ठ से कोई आवाज तक नहीं निकल पाती थी। वे मूर्तिवत पथराई हुई आँखों से उजड्ड किसान की ओर देख रहे थे।...

सहसा एक शोर सा मच गया। कुम्हारों के घोड़े जोर जोर से हिनहिनाने लगे। इधर से रेलगाड़ी गड़गड़ाहट का शोर मचाती पुल पर से गुजर रही थी और उधर इंजन अपने फुँके हुए सीने से भयानक चीखों की आवाजें वायुमण्डल में बिखेर रहा था...

ग़ालीचे में लगी हुई आग क्षण प्रति क्षण बढ़ती जा रही थी...

पहला पत्थर

तब शास्त्री और फ़रीसी एक स्त्री को लाए जो व्यभिचार के अपराध
में पकड़ी गई थी और उसको बीच में खड़ी करके कहा:—
ऐ गुरु, यह स्त्री व्यभिचार करती हुई पकड़ी गई है।
मूसा के कानून के अनुसार ऐसी स्त्री का, पत्थरों से मार कर अंत
कर देना उचित है सो तू इस स्त्री के बारे में क्या कहता है!
जब वे उससे पूछते रहे तो .
उसने सीधे होकर उनसे कहा:—
'तुममें से जिसने कोई पाप न किया हो पहले वह इसे पत्थर मारे।'

(यूहन्ना रसूल आयत ३,४,५,७)

रंदा हाथ से रखकर बाज सिंह ने चौकन्ने तीतर की भाँति गर्दन दरवाजे से बाहर निकाली और एक नज़र शाही अस्तबल पर डाली... कोई खास चीज़ दिखाई नहीं पड़ी। यद्यपि उसे सन्देह यही हुआ था कि घुक्की ही बड़े दरवाजे में खड़ी किसी को आवाज़ दे रही थी उसने सोचा था कि रात के अन्धकार में घुक्की के दर्शन ही हो जायेंगे। परन्तु अफ़सोस कि सामने शाही अस्तबल के इधर घुक्की तो क्या कोई भी आकृति दिखाई नहीं पड़ती थी। शाही अस्तबल वास्तव में कोई अस्तबल नहीं था। बल्कि यह सर्दार वधावा सिंह की शानदार हवेली थी, जिसे बाज सिंह उर्फ़ बाज और उसके चेले-चाँटे शाही अस्तबल के नाम से पुकारते थे। क्योंकि हवेली की सबसे बड़ी खूबी थी—उसकी विशालता। हवेली बहुत बड़े सन्दूक के समान थी। छत इतनी लम्बी चौड़ी कि पूरी बारात के लिए चारपाइयाँ बिछ सकती थीं। कमरे पूरे हाल कमरे थे। दरवाजे आठ-आठ फ़ीट ऊँचे थे। उन हाल कमरों में भीमकाय सर्दार वधावा सिंह फीलपाँव के कारण घायल शेर की भाँति ऐंठ-ऐंठ कर चला करते थे। हवेली के एक भाग में लेबिल प्रिण्टिंग प्रेस था। इसके अतिरिक्त नानक फ़र्नीचर मार्ट भी उन्हीं की मिल्कियत थी। हवेली से इधर फर्नीचर का कारखाना अलग बना हुआ था। और बाजसिंह अपनी हाथ की सफ़ाई और हरमजदगी की चुस्ती के कारण सब कर्मचारियों का (चाहे वे प्रेस के हों या कारखाने के) उस्ताद समझा जाता था।

हवेली की बग़ल में बाजार की ओर कुछ साधारण ढंग की दुकानें और उनके पिछवाड़े मकान भी सर्दार साहब ने बनवा डाले थे। आखिर उनके पूर्वज जालन्धर ही में रहते आये थे, इसलिए इतनी-सी जायदाद का बन जाना कोई असाधारण बात नहीं थी। सन् १९४७ के आरम्भ में जब पश्चिमी पंजाब में मुसलमान भाइयों ने अपने 'कराड़' और सिक्ख भाइयों का नाका बन्द कर दिया तो शरणार्थियों की एक बड़ी संख्या पूर्वी पंजाब में आ गई। उनमें घुक्की का पिता मुल सिंह भी था।

बधावा सिंह ने बिलकुल बग़लवाली दूकान और मकान उसे किराये पर दे डाला और वह वहाँ पंसारी की दूकान करने लगा। उसकी पत्नी को मुसलमान भाइयों ने मार डाला था, लेकिन उसका अपनी तीन लड़कियों सहित सही-सलामत निकल आना एक चमत्कार से कम नहीं था। उनमें सबसे बड़ी लड़की का नाम घुक्की था।

घुक्की न केवल सुन्दर थी, बल्कि बड़ी बाँकी भी थी, और मौका पाकर सबसे पहले बाज सिंह ने उसकी 'चुम्मी' ली। चुम्बन लेने के सिल-सिले में 'खुल जा समसम' का मंत्र तो बाज ने पढ़ा लेकिन फिर बाकी लोगों का रास्ता भी साफ हो गया। इसमें अमीर-गरीब का कोई भेद नहीं था। सर्दार साहब के बेटे, उन बेटों के यार-दोस्त सब एकाध चुम्बन की ताक में रहते थे। यह बात नहीं थी कि उनमें से हर एक का दाँव लग ही जाता था। कुछ तो दूर ही से चटखारे लेने वालों में से थे क्योंकि घुक्की लेबिल काटने वाले चरन के कथनानुसार बड़ी चलती-पुर्जा थी। पुट्ठे पर हाथ नहीं रखने देती थी किसी को। और तो और स्वयं बाज सिंह जो बड़ा ढीठ और साहसी आदमी समझा जाता था, 'चुम्मी' से आगे न बढ़ पाया था, तो भला दूसरों को घुक्की कहाँ पास फटकने देती!

निराश होकर बाजसिंह होठों पर जबान फेरते हुए कारखाने के दरवाजे में ही खड़ा रह गया। उसके हाथ कुहनियों तक लकड़ी के बुरादे से सने थे। पैतालिस वर्ष की अवस्था में भी उसका इकहरा शरीर मज-बूत था। सूरत 'घिनावनी' होने से बाल-बाल बची थी। मूछों के बाल झड़बेरी के काँटों के समान कड़े हो गये थे। एक आँख में फूला था। होंठ मोटे-मोटे और ऊँट की कोहान-सी नाक के नथुनों में से भी बाल बाहर निकल आया करते थे, जिन्हें वह चिमटी से खींच लिया करता था।

वहाँ खड़े-खड़े बाज ने देखा कि जिस हलचल का उसे अनुभव हुआ था वह बेमतलब नहीं थी क्योंकि हवेली के एक के बाद दूसरे चार दर-

वाजों से आगे पक्की सड़क वाले बरामदे में बिजली की रोशनी हो रही थी। लकड़ी के छोटे से फाटक में से कुछ सामान अन्दर लाया जा रहा था जिससे प्रकट था कि कोई नया मेहमान आया है। वैसे तो सर्दार साहब के यहाँ पहले ही मेहमान आया-जाया करते थे, लेकिन पश्चिमी पंजाब में दङ्गे होने के कारण तो मेहमानों की खूब रेल-पेल हो गई थी।

कुछ समय पहले उनके एक हिन्दू दोस्त रिटायर्ड पुलिस अफ़सर अपने बाल-बच्चों सहित आ गये। उनका आपस में बड़ा गहरा मेल-जोल था। उनके साथ एक नवयुवक भी था, जिसका नाम चमन था। उनकी गर्दन मोर के समान थी और आँखें सुर्मई थी। वह भी घुक्की को दिल चस्पी से देखा करता था और बाज के चेले-चाटों का ख्याल था कि घुक्की भी उस पर मरती है। बाज के मन में ईर्ष्या नहीं उत्पन्न हुई। वह इन चीजों से बहुत ऊँचा था। वह कहता—"अरे हमारा क्या, हमने आते ही घुक्की की चुम्मी लेकर उसे कानी कर डाला। अब चाहे टुण्डा लाट भी चुम्मी लिया करे, हमारे...से। और वह अपनी अच्छी और फूली पड़ी आँखों से सबके चेहरों का निरीक्षण करता।

दूसरे मकान में चले जाने के बाद भी चमन का आना जाना जारी था। बाज ने घुक्की से अधिक उसकी छोटी बहन निक्की को अपने आकर्षण का केन्द्र बना लिया था।

दरवाजे में खड़े-खड़े पहले तो उसके मन में आया कि जाकर नये मेहमानों को देखे, शायद कोई लौंडिया भी हो। लेकिन आज कल काम बहुत आया हुआ था जिसे जल्दी से जल्दी खत्म करना जरूरी था।

"हटाओ!" उसने मन ही मन कहा—"सुबह सब कुछ सामने आ जायगा।"

× × ×

आँख खुली तो बाज ने जलता-फुँकता सूरज अपने माथे पर नाचता पाया।

इधर यह हड़बड़ा कर उठा, उधर बड़ी सर्दारिनी भूरी भैंस की भाँति कद्-कद् भर छातियाँ थलथलाती, सीना जोरी दिखाती, आग जलाने के लिए बुरादा लेने को उसकी ओर बढ़ी।

बड़ी सर्दारिनी के शरीर का प्रत्येक अङ्ग अपनी चरम सीमा को पहुंच चुका था। यानी जो चीज जितनी मोटी, जितनी ढीली, जितनी फैली जितनी भद्दी हो सकती थी, हो चुकी थी। चलती तो ऐसा प्रतीत होता मानो तन्दूर ढाँकने के चापड़ को टांग लग गई हो।

ऐसी डील-डौल को सर्दारिनी भी बधावा सिंह के लिए क़ाफ़ी सिद्ध नहीं हुई। अतएव उसे एक छोटी सर्दारिनी भी कहीं से उड़ा लानी पड़ी।

जब भी मौका मिलता, बड़ी सर्दारिनी आवश्यकता से कहीं अधिक बाज के पास आकर खड़ी रहती क्योंकि बाज बड़ी ही मिस्कीन सूरत बना कर कई बार कह चुका था—"पर बड्डी सर्दारिनी, आप अड़तालीस बरस की तो नहीं दिखाई देती जी......जी, आप तो मुश्किल से तीस साल की दिखाई देती हैं जी।"

इस पर बड़ी सर्दारिनी मन ही मन में चहक उठती और अपना चौड़ा मुँह और भी फैलाकर कहती—"हट वे पर्रा, कौन कहता है कि मैं अड़तालीस बरस की हूँ!"

इसके बाद वह दरवाजे से कन्धा भिड़ाकर वहीं ज़मी खड़ी रहती। एक टाँग सीधी रखतीं, दूसरी को हौले-हौले हिलाती रहती और अपने ढलके हुए पपोटों तले दबी हुई पुतलियों से बाज की ओर स्वप्निल दृष्टि से देखती रहती।

बाज मन ही मन सोचता कि घुग्गी की कमर तो इसकी न्डलीपि से कहीं अधिक पतली होगी।

आखिर जब सर्दारिनी टूटे हुए छाज में बुरादा भरकर लौटी तो उसका पिछवाड़ा देखकर बाज सिंह के मुँह से एक बार फिर आप ही आप निकल गया—"बल्ले-बल्ले...क्यों ओए बौंगिया ! अगर सर्दार जी बिना ज़ंजीर के हाथी हैं तो सर्दारिनी भी वह चट्टान है जो जितनी जमीन से बाहर निकली होती है उससे चार गुना जमीन के नीचे गड़ी होती है !" यह कहकर उसने फुलाह की दातून मुँह में डाली तो उसकी चुरमुराहट से उसका कुरूप चेहरा और भी भद्दा हो गया।

बौंगे ने जबान में कहा—"अबे तू सर्दार जी को क्या समझता है ! अगर सर्दारिनी चार गुना जमीन में गाड़ी है तो वे दसगुना जमीन के अन्दर हैं...।"

बाज़ सिंह ने बैठे-बैठे बौंगे को लात रसीद करते हुए कहा—"ओए चल, ओए मऊँ द्या मुतराड़ा।"

फिर उसे घुक्की की कमर याद आई तो बोला—"पर बौंगिया ! घुक्की की कमर तो सर्दारिनी की पिन्डुली से भी कम पतली होगी।...यार !"

"तो फिर क्या !"

"...न, न, सोचो भला...इत्ती पतली कमर !...बहुत पतली है कमर...कितनी मुश्किल पड़ेगी बेचारी को..."

"ओ भई !" बौंगे ने कहा—"औरत की कमर में बड़ी ताकत होती है।"

"हच्चा !" बाज ने गाल के अन्दर जबान घुमाई।

"आहो भई...मर्द की सारी ताकत छाती में और औरत की सारी ताकत कमर में होती है। अबे नहीं तो तड़क न जाय सकोरे की तरह।"

इसी बीच में चमन भी उधर आ निकला। वह हर समय चहकता रहता था। बाछों में से हँसी तो इस प्रकार फूटी पड़ती थी मानो रेवड़ियाँ

खा रहा हो। चलता तो लहराता और बल खाता हुआ। बदन इकहरा, रूखें अभी जम रही थीं।

बाँगे ने कहा—"ले भई, कन्हैया जी तो आ गये।"

"गोपी भी आती ही होगी।" बाज ने छिदरे दाँतों का प्रदर्शन किया और मुँह से टपकती राल को पहले रोकने की चेष्टा की फिर मुँह ढीला छोड़ दिया।

बाँगे ने पहले तो चमन की ओर दिलफेंक अंदाज से देखा और फिर एक आँख बन्द करके दूसरी आँख बाज की बिना फूलीवाली आँख से मिलाई और घी में डूबी हुई आवाज में बोला—"यार, यह लौंडा भी गोपी से कम नमकीन नहीं है।"

बाज ने एक और लात रसीद की, "बड़ा ठिरकी है वे तू।"

बाँगे ने भाव बताकर कहना शुरू किया—"भगत कबीर भी तो कह गये है..."

इस पर बाज ने एक और लात रसीद की, "ओए लुच्चा मुण्डा..."

कुछ देर के बन्द छोटी सर्दाररिनी भी कूल्हे मटकाती, धम-धम करती दरवाजे से निकलकर आँगन में आ पहुँची।

वह कहने को छोटी सर्दारिनी थी लेकिन डील-डौल में यदि बड़ी बीस थी तो छोटी उन्नीस। ऐसा लगता था मानो धुनिये ने दो रजाइयों की रुई धुनककर हवा में उड़ा दी हो। अलबत्ता, उसके नख-शिख तनिक तीखे थे। रङ्ग निखरा हुआ, चेहरा चिकना-चपड़ा, अगले दोनों दाँतों में सोने की कीलें।

कहते हैं कि वह बड़े सर्दार जी की व्याहता नहीं थी। बाज के कथनानुसार कुछ 'जोर-जबर' मामला था। मोटापे के बावजूद छोटी सर्दारिनी की बोटी-बोटी थिरकती थी। बड़ी सर्दारिनी को परिस्थितियों ने तनिक दार्शनिक बना दिया था और परिस्थितियां ने ही छोटी सर्दारिनी को 'चल-चल चमेली बाग में तुम्हें मेवा...' बना दिया था। यही कारण

था कि बड़ी सर्दारिनी के सामने लड़कियों से हँसी ठिठोल करने के लोग-बाग कतराते थे और छोटी सर्दारिनी के सामने निःसंकोच छेड़-छाड़ जारी रहती थी। और कभी-कभी उसके कूल्हे में भी चुटकी भर ली जाती, जिस पर वह कुमारी कन्या की भाँति कुलबुलाती, बल खाती और खिल-खिलाती थी।

बड़ी सर्दारिनी केवल सर्दारिनी और छोटी सर्दारिनी मासी कहलाती थी। बहुत कम लोगों को ज्ञात था कि बड़ी सर्दारिनी के भीमकाय शरीर भी गुदगुदी होती है। मासी तो सबकी महफ़िलों की जान थी। यद्यपि उसकी अवस्था चालीस पार कर चुकी थी फिर भी सर्दार जी उस पर कड़ी निगरानी रखते थे क्योंकि मासी बैठती तो झमक्कड़े के साथ और चलती तो झमक्कड़े के साथ। उसे ऐसी महफ़िलों में आँखें लड़ाने, चुटकियाँ लेने, हाय-वाय करने के अवसर बड़ी आसानी से प्राप्त हो जाते थे। कभी कभी मासी एकाध बदतमीज पर कुछ बिगड़ भी जाती थी ताकि कहने को हो जाय कि वह नौजवानों पर कड़ी निगाह रखती है। ऐसे अवसरों पर जब कि वे रूठ जाती थीं, सब लड़के लड़कियाँ उन्हें मनाने लगते। उनके शरीर पर हाथ फेरे जाते, उनसे लिपट-लिपटकर खुशामदें की जातीं और अन्त में वे मन जातीं।

अतएव अब जो मासी सहन में दाखिल हुई तो मानो प्रभात-समीर की भाँति आई और अपने साथ न केवल फूलों की सुगन्ध लाई बल्कि अपना ओट में बेला, चमेली, गुलाब इत्यादि भी ले आई। शुकी, निक्की, साँवली तथा अन्य लड़कियाँ उनके पीछे छिपी-छिपी आ रही थीं। इसका उद्देश्य केवल उपस्थित जनों को आश्चर्य के साथ-साथ आनन्द भी प्रदान करना था। वही बात हुई कि सहसा "ओए" के शोर से वायुमण्डल गूँज उठा और कच्चे-कुँवारे ठहाकों के अविरल संगीत से सारा सहन रसमसा गया।

इन सब से दूर सड़क वाले कमरे में किसी जटाधारी सन्यासी के

समान पाठ करते हुए बड़े सर्दार के कान भी इन आवजों से थरथराये, माथे की लकीरें गहरी हो गईं और उन्होंने जल्दी से बड़े-बड़े दाँतों पर दोनों होंठ फैलाकर बेचैनी से पहलू बदला और कहा—

"वाह गुरू नाम जहाज है जो चढ़े सो उतरे पार।"

× × ×

दातून की आखिरी मंजिल पर पहुँचकर बाज ने कनस्तर उठाया और बड़े आँगन के एक कोने में पानी के नल के पास पहुंचा।

अब वातावरण शान्त था। कुछ लोग तो मासी को घेरे में लिए थे, शेष अपने ध्यान में मग्न थे।

नल के नीचे कनस्तर रखकर बाज ने हत्थे को दो-तीन बार ही चलाया होगा कि सामने से निक्की जल्दी-जल्दी पग बढ़ाती हुई उसकी ओर आई आते ही बोली—"कनस्तर हटाओ तो।"

बाज की खुशी का भला क्या ठिकाना था। दातून चबाते-चबाते उसका मुँह रुक गया। आँखों के कोने शरारत के कारण सिमट गये।

"नीकुड़िये, की गल ए?"

"ऐ देख, गल-वल कुछ नहीं, कनस्तर हटा झटपट।"

बाज ने दाँत पीसकर हाथ फेंका लेकिन निक्की जैसे पहले से तैयार थी। झप से पीछे हटकर बदन चुरा गई। और तनिक नखरे के साथ चिल्लाकर बोली—"हम क्या कह रहे हैं, कनस्तर हटाओ न।"

"अरी कनस्तर से क्या वैर है...हमारी हर चीज से बिदकती हो?"

"पानी पियेंगे।"

बाज ने कनस्तर हटा दिया और बोला—"लो जानी, पिओ और जियो। जियो और पियो।"

निक्की ने नल के पीछे हाथ रख दिया और तनिक इन्तजार के बाद इन्जन की सीटी की-सी आवाज में बोली—"ऐ है...हत्थी हिलाओ।"

बाज ने कहा—"तुम्हीं हिलाओ न हत्थी..."

"देखो, तंग मत करो।"

"अरी नाम निक्की है तो इसका यह मतलब तो नहीं कि तू सचमुच निक्की है..."

"छोटी नहीं तो क्या बड़ी हूँ!"

अब बाज ने बड़ी ही उदार हँसी हँसकर हत्थी हिलाना शुरू कर दिया।

पानी पीकर निक्की भागने लगी तो बाज ने तुरन्त कलाई थामकर धीरे-से मरोड़ दिया।

"उई!"

"क्या है?"

"मेरी कलाई टूट जायगी।"

"यहाँ जो दिल टूटा पड़ा है।"

"छोड़ न, कोई देख लेगा।"

"अरी कभी हमसे भी दो बात कर लिया कर।"

"कह रही हूँ न, कोई देख लेगा।"

"तो फिर आयगी हमारे पास?"

"मैं नहीं जानती।"

एक और मरोड़। निक्की को वास्तव में बड़ी तकलीफ हो रही थी। जान छुड़ाने के लिए बोली—"अच्छा-अच्छा, आऊँगी।"

"पक्का वादा?"

"हाँ!"

"मार हाथ पर हाथ।"

हाथ पर हाथ मारा गया।

"अच्छा देख, अब तेरी कलाई छोड़े देता हूँ कि भागेगी नहीं..."

"अच्छा नहीं भागूँगी, छोड़ न, कोई देख लेगा।"

"बस दो मिनट बात कर ले हमसे। और याद रख, अगर हमें धोखा दिया तो बाँस पर लटका दूँगा।"

हाथ छूटने पर निक्की शिकायत भरे अदांज में नाक चढ़ाये और माथे पर बल डाले अनमने ढङ्ग से रुक गई और ठुमककर बोली—"कह अब।"

"पत्थर मारती है कि बात करती है?"

"अब जो समझो, जल्दी से बात कर डालो। इतना वक्त नहीं।"

"किसी से मिलने जाना है?"

"कोई सुन लेगा...तुम बड़े..."

"बड़े क्या?"

"बदमाश हो!"

"हाय शरीफ़जादी...कभी-कभी बदमाश से भी बात कर लिया कर...अच्छा निक्की, यह बता कि तेरी उमर कितनी है?"

"सोलह बरस।"

"कैसी अच्छी उमर है!"

"होगी! बस अब जाँय हम?"

"भला शुक्की की उमर क्या है।"

"मुझसे डेढ़-दो बरस बड़ी है।"

"और साँवली...?"

"चौदह की होगी।"

"लेकिन तू तो चौदह की भी नहीं दिखती।"

"दिखती कैसे नहीं?"

"देखने से तो कुछ पता नहीं चलता।"

"हट।"

"आजकल मस्ती झाड़ रही हो। पहले तो शुक्की ही थी अब तुमने

भी पर निकाल लिए हैं...तुममें क्या, अब तो साँवली भी रंग दिखा रही है।"

"ऐ देख! साँवली को कुछ मत कहियो। वह बिचारी अंधी है। उससे बुरी-भली बातें मत करना।"

"अरी निक्की, जवानी बोले बिना ही बात करती है। किसी के बुलाने और न बुलाने से क्या होता है...उसको अंधी कहती हो और आप मज़ा उड़ाती हो...लो, वह रही साँवली। चुपचाप दरवाजे में बैठी है।"

सहन के पहले कोने में दहलीज़ पर अन्धी साँवली चुपचाप बैठी थी।

निक्की ने बाज के इशारे पर उधर देखा तो बाज ने पूछा—"साँवली जन्म की अन्धी है क्या?"

"नहीं।"

"तो कैसे हुई अन्धी?"

"देखो, बेकार-बेकार बातें करते हो। हम जा रहे हैं।"

"ठहर न...बता दे" बाज ने कहा जो केवल निक्की को पास खड़ी रखने के लिए ही बेकार बातें किये जा रहा था।

"भई हम कुछ नहीं जानते। बापू कहता है, वह बचपन में अन्धी हो गई थी। अब मैं क्या जानूँ। लो हम चले।"

"अरे हाँय...दरवाज़े में वह कौन खड़ा है?"

निक्की चलते-चलते रुक गई, "मैं नहीं जानती।"

इस पर बाज बाछों को खूब खींच कर हँसा—"तुझे मालूम नहीं... मुहल्ले में सभी तो तेरे यार हैं।"

"देख, हमसे बकवास मत कर...हम उसे क्या जाने? रात ही तो आया है।"

"अरे रातवाला...अच्छा-अच्छा, याद आया। मैं जग रहा था। अरे मैंने उस समय अन्दर से सिर निकाला, मैं समझा.. मैं समझा...कि निक्की है। लेकिन निक्की तुम..."

निकी ने झुँझलाकर कहा—"लो हम चले।"

इस पर बाज ने ज़ोर से नाक साफ़ की और नल की हत्थी हिलाने लगा।

× × ×

लड्डु सरपट भागता हुआ आया और कारखाने के दरवाज़े के दोनों तख्तों को इस जोर और धमाके के साथ हटाया कि बाज सिंह और उसके साथियों के काम में जुटे हुये हाथ रुक गये।

वे तनिक चकित होकर उसका मुँह ताकने लगे कि आखिर लड्डु खेमिलों की गड्डियाँ बाँधनी छोड़ कर बेवक्त यहाँ कैसे आ टपका।

अन्दर पहुँचकर स्वयं लड्डु को भी इस बात का अनुभव हुआ कि इतने धमाके से अपने आगमन का औचित्य सिद्ध करने के लिये जो सामग्री आस-पास है वह प्रर्याप्त भी है या नहीं। फिर भी उसने गर्दन घुमाकर हाँफते हुये सबकी ओर देखा और बोला—"यार! आज बड़े मजे की बात देखने में आई।"

मजे की बात!!...उस समय ग्यारह बजने वाले थे। कारीगर सात बजे से लगातार काम कर रहे थे इसलिए वे मजे की बात सुनने के मूड में भी थे। उधर बाज सिंह ने सुबह बासी मट्ठे से सिर धोया था। उसके बालों से अभी सड़ी लस्सी की बिसाँध दूर नहीं हुई थी यद्यपि बाल सूख गये थे। उसने भी मौका गनीमत जाना कि मजे की बात सुनने के साथ साथ वह अपने बालों में कंघा भी कर लेगा।

अतएव उसने अपना फावड़ा सा कंघा उठाया और उसे दाढ़ी से उड़स कर बोला—"अबे लड्डु! मऊँ के मुतराड़...जब से तू पैदा हुआ है तू ने आज तक कभी कोई मजेदार बात नहीं कही। आज मेंढकी को भी जुकाम वाली कहावत तुझ पर लागू होती है...अच्छा बोल बेटे बिजौरे।"

वातावरण अनुकूल पाकर शेष कारीगर भी जाँघे खुजलाते हुए लड्डु के निकट आ गये। उनमें से मौनो (मुँडे हुये सिर वालों) ने बीड़ियाँ जलाकर दाँतों में दबा थी।

इस उत्साह से स्वागत होने पर लड्डु की जान में जान आई। उसने घिघियाकर एक बीड़ी माँगी जो तनिक नाक भौं चढ़ाने के बाद दे दी गई।

यह देर उपस्थित जनों के लिए असह्य होती जा रही थी। बाज ने दो लत्ती रसीद करने के अंदाज़ में पाँव ऊपर उठाते हुए कहा—"ओए भेन के बैंगन, जल्दी से उगल डाल साले हम तेरे बाप के नौकर तो नहीं हैं कि बैठे मुह तकते रहें तेरा..."

"यार आज बड़े मज़े की बात हुई।" लड्डु ने इस तरह बात शुरू की मानो उबलते हुए पानी की केतली का ढकना भक से उड़ जाय, "आज सुबह जब बाज निक्की से...जब निक्की से..."

बाज ने झुका हुआ सिर ऊपर उठाया और बोला—"ओए तेरी बेन को चोर उठाकर ले जाय...यह हमारी ही बात मिली सुनाने को?"

"नई नई जी।" लड्डु ने शुद्ध पंजाबी स्वर में हलक से घिघियाकर आवाज़ निकली—"पादशाहो! आपकी बात नहीं है...वह तो बात घुक्की की है।"

एक कारीगर ने संकेत करके साथियों से कहा—"यह चोंगा भी है। घुक्की पर ठरक झाड़ने वालों में यह भी शामिल है। हाँ, तो बेटा, क्या बात है घुक्की की! हम भी तो सुने।"

"ओए जब मासी मास्टर तारा सिंह की अखबार में लगी हुई सूरत सबको दिखा रही थी तो घुक्की और चमन की नजरें मिलीं...मैं देख रहा था चुपके से।"

"तू तो देखा ही करता है घुक्की को। पर साले चमन ने जित्ती चुम्मियाँ ली हैं घुक्की की उतनी ही ठोकरें खाई हैं तूने घुक्की की।"

इस पर लड्डू ने रूठने के अन्दाज में मुँह विसूरा तो किसी ने हम-दर्दी जताई—"भई ऐसा मत कहो बेचारे को। इसके लिए उन ठोकरों में चुम्मियों से ज्यादा मजा था...हाँ, तो लड्डु बोल फिर क्या हुआ ?"

"बस फिर क्या था, आँखों में इशारे हुये, होंठ हिले और फिर वु की बड़ी मासूमी से उठकर ठुमक-ठुमक चल दी।"

"कहाँ को, कोठे पर ?"

"अबे नहीं...उस समय तो वह अपने घर को गई लेकिन थोड़ी देर बाद चमन ने कहा कि वह जरा टट्टी जाता है और फिर सर्दारे (सर्दार जी का बड़ा लड़का) ने खास अन्दाज में ताककर कहा कि भई ज़ल्दी आना। तुम न जाने घण्टा-घण्टा भर टट्टी में बन्द क्या किया करते हो। इसपर चमन बड़े मोठे अन्दाज में मुसकराता हुआ पिछले कमरे में चला गया, जहाँ से छत को सीढ़ियाँ जाती हैं।"

एक दो ने जँभाइयाँ लेकर कहा—"अबे लड्डू के बिस्से ! ये सब पुरानी बातें हैं, रोज़ का किस्सा..."

"अबे सुन तो"...लड्डू ने डाँटा, "सबकी आँख बचाकर मैं भी चमन के पीछे हो लिया। और भई जब ऊपर पहुँचा तो देखा कि सीढ़ियों का दरवाजा बन्द है...बस भई यह देखकर मेरी फूँक निकल गई।"

बाज हँसा, "साले तेरी फूंक तो खूब अच्छी तरह निकलनी चाहिए। फूलकर गुब्बारा हो रहा है।"

लड्डू ने सुनी-अनसुनी करते हुए बयान जारी रखा—"पहले तो मैं समझा कि वे दरवाजे के पास ही खड़े होंगे लेकिन कोई आवाज सुनाई न देती थी। दरार में से झाँका तो छत पर भी कोई सूरत नज़र नहीं आती थी। फिर मैंने सोचा कि वे ज़रूर बरसाती के अन्दर बैठे होंगे।"

"बड़ी जसूसी दिखाई तुमने।"

इस पर लड्डू ने बीड़ी का गहरा कश लिया, "बस भई फिर तो मैंने

नीचे ऊपर से हाथ डाल चटखनी सरका दी। यह देखो, मेरी बाँह पर खून जम गया है..."

"आगे बोल।"

"मैं छत पर से होता हुआ बरसाती की तरफ़ बढ़ा और ईंटों की जाली में से भाँककर देखा तो...तो वे दोनों चारपाई पर बैठे थे।"

एक नया कारीगर बोला—"लेकिन घुक्की वहाँ कैसे आई?"

लड्डू को उसकी मूर्खता पर बड़ा तरस आया, "यार तुम भी बस... छत से छत मिली हुई है। घुक्की की छत जरा नीची है। उधर से इधर आना कौन मुश्किल है। अरे यार लोग तो पहले ही ताड़ गये थे कि यह अपने घर से होकर इस छत पर चली आयगी।"

"भई तू बड़ा अकिलमन्द है...अब आगे चल।"

"बस आगे क्या पूछते हो। बड़े मजे में थे दोनों। घुक्की का चेहरा तो आग-भभूका हो रहा था। इतनी प्यारी लग रही थी कि बस ...।"

"वाह बेटा वाह!" बाज बोला—"अब तो बात पक्की हो गई कि मामला यहीं तक नहीं है...अच्छा फिर?"

"बड़े प्रेम की बातें हो रही थीं। चमन ने घुक्की के बाल उसके मुँह के हटाकर उसे खूब प्यार किया।"

"अबे यह तो हुआ ही होगा। यह तो बता कि बातें क्या हो रही थीं उनमें? जरा यह तो मालूम हो कि क्या इरादे उनके?"

"फिर एक दम ही घुक्की ने बड़े प्यार से उसके गले में बाँहें डाल दीं और उसकी नजरों से नजरें मिलाकर बोली—" 'चमन, तुम सचमुच मुझसे प्यार करते हो?'

"चमन ने मोर की तरह गर्दन हिलाई और जवाब दिया—'सचमुच।'

" 'मुझे यक़ीन नहीं आता।'

" 'जालिम!'

" 'जालिम तुम हो।'

" 'अरी हम तो जान निसार करते हैं। अब तुझे कैसे विश्वास दिलाऊँ ?'

"घुक्की ने सिर झुका लिया और गहरी सोच में डूब गई। इस पर चमन बोला—'कहो तो आसमान के तारे तोड़ लाऊँ। कहो तो अपनी छाती चीर कर...'

"घुक्की ने उसके होंठों पर उँगली रख दी और फिर ऐसे बोली मानों सपने में बोल रही हो—'तुम तारे मत तोड़ो, अपनी छाती मत चीरो...मुझे अपनी दासी बना लो।'

" 'दासी ? दासी ! अरे तुम तो रानी हो मेरी।'

"घुक्की कुछ देर चुप रही फिर बोली—'तुम मेरा मतलब नहीं समझे, मुझसे शादी कर लो।'

"उस समय चमन ने एकदम मुँह पीछे हटा लिया। जैसे घुक्की खूबसूरत लड़की नहीं नागिन है और उसकी तरफ़ बड़ी अजीब नजरों से देखने लगा। लेकिन उस समय घुक्की का सिर झुका हुआ था। साली अपने ख्याल में मगन बोली—'मैं गरीब की लड़की हूँ। हर कोई मुझे भूखी नजरों से देखता है। हर कोई मुझे खा जाना चाहता है। मुझे एक कदम चलना मुश्किल है...फिर भी मैं अपनी इज्जत बहुत बचाती रही। लेकिन तुम हो जिसके आगे मेरा कोई बस नहीं चला।'

"यह कहते-कहते उसकी आँखों से टप्-टप् आँसू गिरने लगे। इसपर चमन ने उसका हाथ पकड़ लिया। बोला—'अरी वाह, रोती काहे को हो। बेफिकर रहो। तुम्हें कुछ नहीं होगा। मुहब्बत में ऐसी बातें दिन रात होती रहती हैं। तुम बड़ी वहमी हो।'

" 'लेकिन मैं तुम्हारी हो चुकी हूँ। सदा के लिए तुम्हारी...'

"यह कहकर उसने अपने पीले रंग के कुर्ते से आँखें पोछीं। लेकिन आँसू नहीं थमते थे। हिचकियाँ भरती हुई बोली—'चमन, मैं उमर भर

तुम्हारे पाँव धो-धोकर पियूँगी। तुम्हारी नौकरानी बनकर रहूँगी। तुम्हारी आँख के इशारे पर नाचूँगी। बाबा को मेरी बड़ी फिकर लगी है। माँ मर गई है। मैं सबसे बड़ी हूँ। मुझे छोटी बहनों का भी ख्याल करना है। मैं तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ। मुझे छोड़ना मत।

"चमन बोला—'हाय-हाय ! तुम्हें छोड़ता कौन है ? पगली हुई हो ?'

"इसपर घुक्की ने नजर उठाकर चमन की ओर देखा और फिर सिर झुकाकर बोली—'नहीं, वादा करो कि मुझसे शादी कर लोगे...मैं बड़ी मुँहफट हूँ। लेकिन मेरा कोई नहीं है। बेशरमी माफ करो। मुझे अपनी बना लो, मैं खूब पढ़-लिख लूँगी। जैसा तुम कहोगे वैसे ही करूँगी...कहो, मुझसे ब्याह करोगे ?'

"यह कहकर उसने चमन की ओर देखने के लिए सिर ऊपर उठाया लेकिन चमन ने जल्दी से उसका सिर दबाकर उसे छाती से लगा लिया। शायद वह नहीं चाहता था कि घुकी उसकी आँखों से उसके दिल का हाल जान ले। फिर बनावटी आवाज में कहने लगा—'हाँ-हाँ, मैं तुझ से ही ब्याह रचाऊँगा। अरी तुझमें किस बात की कमी है...तुम कितनी सुन्दर हो ! हजारों में, बल्कि लाखों में एक हो...लो अब मैं चला। तुम भी घर को जाओ, नहीं तो नीचे वाले सब शक करेंगे..."

"यह सुनकर मैं बगटुट भागा।"

× × ×

दोपहर के समय गर्मी इतनी भीषण हो उठती थी कि क्या कारखाने के कारीगर और क्या प्रेस के, सभी काम छोड़कर अलग बैठ जाते। दिन का यह भाग सबसे प्यारा होता था। हवेली बहुत बड़ी थी। छोटे बड़े कमरे और उनमें ऊँची ऊँची अलमारियाँ, पलंग, संदूक—मानो आँख मिचौनी खेलने की सारी सामग्री एकत्रित थी।

बाजसिंह तंदूर से रोटी खाकर वापस आया तो सीधा अन्दर वाले

बड़े कमरों की ओर चला गया, जहाँ बड़े सरदार जी के अतिरिक्त सभी लोग मौजूद होते थे। आज उसे रोटी खाने का मज़ा नहीं आया! दाल में कंकड़ और राशन के आटे में रेत। तन्दूर वालों की ऐसी तैसी करके भूखा ही लौट आया था।

कमरे में प्रवेश करते ही उसकी निगाह सबसे पहले बड़ी सरदारिनी पर पड़ी जो सब से अलग बैठी थी। आश्चर्य! आज वे पान चबा रही थीं। छोटी सरदारिनी तो खैर, रोज भोजन के पश्चात एक बीड़ा पान कल्ले में दबा लिया करती थी न जाने कहाँ से लत लगी थी उसे। लेकिन बड़ी सरदारिनी को पान खाते हुए उसने पहली बार ही देखा था। उसके होंठ और बाछें लाली से सनी हुई थीं। नज़रें चार होते ही बड़ी सरदारिनी ऐसे व्यापक रूप से मुस्कराई कि एक बार तो बाज सिंह बिदक गया लेकिन फिर वहीं फर्श पर बैठ गया और अपने टखनों तथा पिंडुलियों पर से लकड़ी का बुरादा झाड़ने लगा।

बड़ी सरदारिनी ने चौकी ढकेलते हुए कहा—"हाय हाय, जमीन पर काहे बैठते हो। चौकी पर बैठो।"

"नहीं बड़ी सरदारिनी! ईंटें ठंडी लग रही हैं। मजा आ रहा है। अच्छा करो हो जो दोपहर से पहले पानी फिकवा दो हो फर्श पर...सच है बड़ी सरदारिनी, बड़ी दूर की सूझती है तुमको।"

यह सुनकर बड़ी सरदारिनी ने चाहा कि मारे खुशी के फूली न समाये। लेकिन और फूलने की गुंजायश ही कहाँ थी अतएव उसने पहले तो विनम्रता से सिर नीचे झुकाया और फिर तनिक मस्ताने ढंग से चेहरा ऊपर उठाया! बेचारी एक मुद्दत से छोटी सरदारिनी के घर में आ जाने के कारण दुख भोग रही थी। कभी कभी उसकी पीड़ा उसकी आँखों में आ बैठती थी।

बाज को कोई बात सूझ नहीं रही थी अतएव उसने पगड़ी के अन्दर दो उंगलियाँ डाल कर सिर खुजाना शुरू कर दिया।

सरदारिनी ने स्नेह पूर्वक कहा—"रोटी खा कर आ रहे हो ?"

"जहर मार करके आ रहे हैं।"

बाज को दुखी देख बड़ी सरदारिनी बड़े अतिशयोक्ति पूर्ण ढंग से परेशान हुई—"आखिर माजरा क्या है ?"

बाज ने माजरा सुनाया और तान इस पर तोड़ी, "रोटी ! हाय, रोटी तो, बड़ी सरदारिनी, तुम्हारी होती है। मक्खन ससुरा रोटी की नस नस में रच जाता है। कौर साला मुँह में रुकता ही नहीं, घुलकर तुरन्त अन्दर।"

बड़ी सरदारिनी को अपनी प्रशंसा में कहे गये ये वाक्य हज़म करने के लिये काफ़ी प्राणायाम करना पड़ा। जब दम में दम आया तो खास सुर ताल में बोली—"कभी हमारे यहाँ खाते भी हो ?"

"खिलाती भी हो ?" बाज ने उसी सुर और ताल में जवाब दिया।

इस पर ताव में आकर जो बड़ी सरदारिनी उठी तो बाज को ऐसा लगा जैसे जमीन से आसमान तक काली घटा छा गई हो।

रोटी खाते-खाते बाज ने पूछा—"क्यों जी, आज सरदारजी दफ्तर में किससे बातें कर रहे हैं ?"

सरदारिनी ने झालरदार पंखा झलते हुए जवाब दिया—"मालूम नहीं।"

घर में बिजली का एक ही टेबुल फैन था। जिधर सरदार जी जाते पंखा उनका पीछा करता।

बाज ने नमक हलाल कर डालने के ख्याल से कहा—"क्यों मजाक करती हो बड़ी सरदारिनी। भला यह कभी हो सकता है कि उधर बात-चीत हो रही हो और तुम्हें पता तक न हो।"

सरदारिनी ने बड़े बटुये की भाँति मुँह खोला लेकिन फिर सहसा मुँह छोटा करके भेद पूर्ण स्वर में बोली—"जासूस छोड़ रक्खे हैं। अभी मालूम हो जायगा सब कुछ।"

इसी बीच छोटी सरदारिनी बगल वाले कमरे में से उनके कमरे में आई। बत्तीसी निकली हुई थीं। सुनहरी कीलें चमक रही थीं। उस समय भी लड़कियाँ उनके साथ थीं—जब लड़कियाँ साथ थीं तो स्वाभाविक ही था कि लड़के भी साथ होते।

बड़ी सरदारिनी छोटी सरदारिनी के लच्छन पसन्द नहीं करती थी अतएव उसने चुपके से नाक भौं चढ़ाकर हाथ को तनिक मंदगति से घुमा और झटका कर नापसन्दी का प्रदर्शन किया लेकिन इस सफ़ाई से कि बाज ही देख सके उसे।

बाज पेट भरकर रोटी खा चुका था। अब बड़ी सरदारिनी का उसकी दृष्टि में विशेष महत्व न रह गया था अतएव उसने अत्यधिक निर्भीकता से काम लेते हुए अपने बेडौल दाँतों का प्रदर्शन किया और तर माल देख कर उसने मन ही मन नारा लगाया—'जो बोले सो निहाल......'

छोटी सरदारिनी कमसिन परियों और जिन्नातों सहित धूम-धड़क्के से आगे बढ़ी। बगल में उनका हाथ झुलाती घुक्की चहकती-फुदकती चली आ रही थी। घुक्की केवल बाँकी ही नहीं थी, बल्कि उसे अपने बाँकेपन का अनुभव भी था। प्रत्येक दृष्टि, जो उसके चेहरे या शरीर पर पड़ती थी, उसकी प्रतिक्रिया उसकी भौंहों के कम्पन, होंठों की फड़कन या शरीर की किसी न किसी हरकत से प्रकट हो जाती थी।

इसके बाद निक्की...घुक्की नोक-पलक और नख-शिख की दृष्टि से ग़ज़ब थी तो निक्की शरीर के अंगों की सुडौल बनावट, तनाव और तड़प की दृष्टि से कयामत थी। उसकी नजरें बड़ी बहन की भाँति दूर तक नहीं पहुँचती थीं। बस उस व्यक्ति की भाँति दीख पड़ती थी जो वीराने में भटकता-भटकता अकस्मात मेले में आ निकले......

निक्की की चुँदरी का आँचल अन्धी साँवली के हाथ में था। उसका चेहरा ऊपर को उठा रहता। वह दोनों बड़ी बहनों से कम गोरी थी। नख-शिख साधारण किन्तु चेहरा सब मिला-जुलाकर आकर्षक था। उसे

इस बात का बिलकुल अनुभव नहीं था कि मुरलीवाला उसके शरीर में आयु के साथ क्या-क्या परिवर्तन कर रहा था क्योंकि इस परिवर्तन का अनुभव तो लड़की को आँखें चार होने पर ही हो सकता है। वहाँ एक भी देखने वाली आँख नहीं थी, इस लिए आँखें चार होने का प्रश्न ही नहीं उठता था।

"बल्ले-बल्ले !" बाज को अपने कान में आवाज़ सुनाई दी। देखा कि बौंगा भी उसे कारखाने में न पाकर वहाँ आ पहुँचा था। वह राल टपकाते हुए बोला—"यार, धुक्की की कमर तो देखो, कैसी पतली, कैसी लचकदार है ! आँख नहीं टिकती इस पर......

"ओए, मैं जुट्टी पंजाब दी।

मेरा रेशम वरगा लक......"

सहसा बाज ने बौंगे को कुहनी का टहोका देते हुए कहा—"देख ओए जलकुकड़ !"

जलकुकड़ प्रेस में लेबिल छापा करता था। उसकी आयु चौंतीस वर्ष के लगभग होगी। दो बच्चे भी थे। वह भी सींग कटाकर बछड़ों में आ मिला था। यह भेद बाज की समझ में अब तक न आया था किन्तु आज उसने देखा कि कैसे जलकुकड़ ने जानबूझकर निक्की को धक्का दिया और कैसे निक्की ने माशूकाना अदा के साथ उसकी हरकत को बर्दाश्त किया। लेकिन आखिर जलकुकड़ में रखा ही क्या था ? उसकी हास्यास्पद सूरत के कारण ही तो यारों ने उसका नाम जलकुकड़ रख छोड़ा था...लेकिन औरत के दिल को कौन रोक सकता है।

लोगों ने कहा—"जार जे तो दूर मार तोप निकला, कैसा मिस्कीन बनता था ?"

आजकल जलकुकड़ अधिकतर रंगीन बुशशर्ट पहने रहता था, जिसके कपड़े पर चीनी ढंग के अजगर नाचते दिखाई देते थे।

सर्दारजी के लड़के भी, "चल कबड्डी तारा सुलतान बेग मारा" कहते

हुए साथ-साथ चले आ रहे थे। और उनके पीछे वह नवयुवक था जो वहाँ कोई परीक्षा देने के लिए नया नया आया था। उसे देखते ही बाज ने पूछा—"ओए इह कौन है ?"

"ओए जे भी अपना मुण्डा है। नवाँ दाखिल हो याये इश्क दे मदरसे दे विच।"

"इच्छा, इच्छा...इह तों परसों ही आया है।"

"आहो जी लौंडां की बात छोड़ो अब नारियां की बात करो।"

परियां के इस काफिले ने जमीन पर डेरे डाल दिये और उनकी चहक-फुदक में सरदारिनी अपने आपको अकेला महसूस करने लगी!

"ओए परजी चमन कहाँ है ?"

एक छोटा लड़का जो सम्भवतः बड़ी सर्दारिनी का जासूस था, बैठक से उसी समय वहाँ आया था, बोला—"चमन उधर बैठक में बैठा है।"

बाज को आश्चर्य हो रहा था, यह क्या ! गुल इधर और बुलबुल उधर ! फिर इसी भावना के अन्तर्गत उसने धुक्की की ओर देखा। वह नजरों ही नजरों में सब कुछ समझ गई। उसकी भवें काँपी, पलकें झपकीं कमर लचकी और फिर वह निश्चल हो गई। बाज ने दिलफेंक तेवर बनाकर आँखों ही आँखों में समझाया कि लो हम जाँच करते हैं और हुस्न के चोर को हुस्न के हुजूर में हाजिर करते हैं। अतएव उसने उच्च-स्वर में पूछा—"लेकिन भई वहाँ क्या कर रहा है ?"

"उधर एक जरनैल साहब बैठे हैं।"

बाज ने सोचा, कोई फौजी अफसर होगा। ये लौंडे हर एक अफसर को एकदम जरनैल बना देते हैं। फिर बोला—"पर बाई, चमन का वहाँ क्या काम ?"

"चमन के बाबू जी भी बैठे हैं।"

इससे मतलब यह था कि चमन को पिता के कारण विवश हो वहाँ

बैठना पड़ रहा है, "अच्छा तो बच्चू चमन को उन्होंने वहाँ किस लिए फाँस रखा है !" बाज ने जिरह की।

"वह फौज में भरती हो रहा है।" लड़के ने टें-से जवाब दिया।

अब बाज ने एक नज़र बड़ी सरदारिनी पर डालना जरूरी समझा और फिर मुँह टेढ़ा करके उसके एक कोने में से साँप की फुफकार की सी आवाज निकालते हुए वह बोला—"ए जी आपका जासूस तो बड़ा होशियार निकला।"

अपनी प्रशंसा सुन बड़ी सरदारिनी हाथी की भाँति झूमने लगीं और देर तक झूमती रहीं।

जब जासूस लौंडे को अनुभव हुआ कि वह ऐसी बातें कह रहा है जिनसे सबको बड़ी दिलचस्पी महसूस हो रही है तो उसने अधिक जानकारी पहुँचाने के लिए कहा—"चमन माहाव जा रहा है।"

"ओए, माहाव कौन जगह का नाम है ? वहाँ तेरी माँव (माँ) रहती है क्या ?" बौंगे ने बहुत धीरे-से कहा जिसमें कि केवल बाज सुन सके।

सर्दार ने कहा—"ओए, माहाव नहीं महू कहो महू।"

"क्या चमन महू जा रहा है ?" सर्दार जी के छोटे लड़के ने सवाल किया और साथ ही पहले तो बनावटी आश्चर्य के मारे दोनों टाँगे खूब फैलाकर और पाँव फर्श पर जमाकर बिल्कुल निश्चल खड़ा रहा और फिर सिमट कर जो कूदा तो कमरे से बाहर और बैठक के अन्दर।

"ओए चमन, हमको छोड़कर महू जा रहा है और हमको ख़बर तक नहीं दी ?"

'हम' शब्द से उसका संकेत घुक्की की ओर था। यह शब्द उसने खड़े होकर कहे। उस समय उसकी मैली कच्छा का और भी अधिक मैला इजारबन्द उसके दोनों घुटनों के बीच झूल रहा था। और फिर उसने भेदपूर्ण ढंग से कनखियों से घुक्की की ओर देखा। भला घुक्की को उसकी बातका मतलब पा लेने में क्या कठिनाई हो सकती थी। उसके

मन में ऐसी गुदगुदी उत्पन्न हुई कि वह उठकर नाचती, गाती छोटी सरदारिनी को एक बग़ल से उठकर उसकी दूसरी बग़ल में जा बैठी और अत्यधिक सुरीली आवाज़ में बोली—"हमें पहले ही से मालूम था।"

घुक्की ने यह बात अधिक जोर से नहीं कही लेकिन उसका स्वर इतना ऊँचा अवश्य था कि बाज उसे आसानी से सुन सके।

इस पर बाज ठण्डा होकर ठण्डे फ़र्श पर इस प्रकार बैठ गया जैसे गुब्बारे में से यकायक सारी हवा निकल जाय। और फिर उसने भवें हिलाकर और मूँछें फड़काकर बौंगे के कान में कहा—"जार! सचमुच यह लौंड़िया बड़ी चलती-पुर्जा है।"

× × ×

इतवार

आज सर्दार जी के दोनों लड़के दस बजे का अँगरेजी शो देखने जा रहे थे। बड़े जोर-शोर के साथ तैयारियाँ हो रही थीं। न जाने कब की पुरानी नेकटाइयाँ खोज निकाली गईं। एक मच्छरदानी लगाने के बाँस के सिरे पर बँधी थी और दूसरी बड़े ट्रंक के पीछे से गेंदे की भाँति गोल-मोल की हुई निकली।

क्योंकि उस समय छोटी सरदारिन स्नान कर रही थीं, इसलिए उनकी चेलियाँ बेजान-सी होकर इधर-उधर भटक रही थीं। निक्को बड़ी सर्दारिनी के साथ रसोईघर के अन्दर बैठी थी। साँवली परे नल के पास एड़ियों को रगड़-रगड़कर धो रही थी। हत्थी हिलाने वाला नया नवयुवक था। घुक्की हवेली के बड़े दरवाजे के आगे बनी हुई कुछ पक्की सीढ़ियों के बीच-वाले भाग पर बैठी थी। उसकी दोनों कुहनियाँ उसके घुटनों पर टिकी थीं और दोनों हथेलियों के बीच उसका चेहरा फँसा हुआ था।

उसकी आँखें उदास थीं। चमन को गये पचीस दिन हो चुके थे किन्तु घुक्की को उसकी एक चिट्ठी तक नहीं मिली थी, यद्यपि दूसरों के नाम उसकी चिट्ठियाँ आ चुकी थीं...

इतवार के कारण छुट्टी थी। इसलिए कारीगरों की चहल-पहल नहीं थी। हाँ, बाज और बौंगा मौजूद थे क्योंकि वे स्थायी रूप से वहीं पर रहते थे।

दीवारों की सफेदी करने के काम में आने वाली पांच फीट ऊपर स्टूल पर पाँव के बल बैठा बाज दातून चबा रहा था। स्टूल के साथ सट कर ज़मीन पर बैठा हुआ बौंगा आइने में देख-देखकर चिमटी से नाक के बाल नोच-नोच कर फेंक रहा था।

दूर बैठक की ओर से एक बड़े शंख के से स्वर में सर्दार जी का पाठ सुनाई पड़ रहा था। सर्दार जी का पाठ और बाज की दातून दोनों मशहूर चीजें थीं। उधर सर्दार जी लगातार कई-कई घन्टे पाठ करने में जुटे रहते इधर इतवार को फुर्सत पाकर बाज सुबह से ही मुँह में यह लम्बी दातून उड़स कर बैठ जाता। पहले उसे चबाता फिर दाँतों पर घिसता, फिर चबाता और दाँतों पर घिसता। यहाँ तक कि दातून खतम हो जाती।

बौंगे ने अपने काम से फुर्सत पाकर इतमीनान से टाँगे जमीन पर फैला दीं।

ऊँचाई पर बैठे बाज ने अपने तेजी से हिलते हुए मुँह को क्षण भर के लिए रोका और बौंगे को सम्बोधित कर दबे स्वर में फुफकार कर बोला—"बौंगिया! आज घुक्की उदास है। शायद छोटी सरदारिनी का इन्तजार हो रहा है।"

इस तरह बोलने से बाज की मूँछों से फँसी हुई थूक की बूँदें उड़कर बौंगे के चेचक के मारे चेहरे पर पड़ी और उसने भड़ककर स्टूल को ज़रा सा हिला दिया और छोटी-छोटी आँखे लाल चिनगारी बना कर कहा—

"ओए, अभी हिला दूँ तो राजसिहांसन से सिर के बल नीचे गिर पड़े। हम पर थूकता है।"

स्टूल के तनिक हिल जाने पर बाज ने गिद्ध की भाँति बाजू फड़-फड़ाये और उसकी बात की ओर ध्यान दिये बिना बोला—"क्यों, यही बात है न! मलकाँ (छोटी सरदारिनी) का इंतजार हो रहा है?"

"ओए नईं! बौंगे ने नथुने फुलाकर विद्वानों के-से अन्दाज में जवाब दिया—"हीर को राँझे का, ससी को पुन्नू का, गोपी को कन्हैया का इन्तजार है। समझे?"

"समझा!" बाज से भला क्या बात छिपी थी। उसने बौंगे को केवल शरमाने और फिर उससे आनंदित होने के लिये अनजानपन प्रकट किया।

अब बौंगे ने इधर-उधर देखा, किसी को निकट न पाकर हल्का-सा नारा लगाया—"हाय!"

उसका संकेत घुक्की की ओर था।

"क्या है?" बाज ने पूछा और समझ गया कि बौंगे को मस्ती सूझ रही है।

"दर्द!" बौंगे ने जवाब दिया।

"कहाँ।"

"जे तो मैं मर जाऊँ ताँ भी न दस्साँ!" बौंगे ने खास जनानी आवाज में जवाब दिया और फिर तनिक मौन के बाद गाने लगा—

"छोड़ गये बालम...।
अकेली मुझकूँ छोड़ गये।"

वातावरण बौंगे की टरटराती आवाज़ से गूँज उठा।

अब दोनों छोटे सर्दार तैयार होकर अन्दर से निकले तो इस शान से कि पहले बड़े भाई ने अन्दर से छलाँग लगाई तो घुक्की के ऊपर से कूदकर आँगन में। बा कुछ समझने भी न पाई थी कि दूसरा भाई

साफ़ कूद गया ऊपर से। घुक्की हड़बड़ा कर उठ खड़ी हुई। उसका चेहरा लाल भभूका हो गया। चमककर बोली—"हमें नईं अच्छा लगता ऐसा मज़ाक। अगर हमारी गर्दन टूट जाती तो?"

इस पर छोटे भाई ने पंजाब के प्रसिद्ध लोकनाच भंगड़ा के अन्दाज में कुछ चकफेरियाँ लीं और गले की गहराइयों में से अत्याधिक घिघियाई हुई आवाज़ निकालकर गीत का बोल दोहराया :—

"छोड़ गये बालम......!"

इधर बौंगा भी बस तैयार ही बैठा था। तुरन्त छाती पर हाथ मार कर रोने के-से स्वर में गा उठा—"अकेली मुझको छोड़ गये!"

इस पर बाज ने जो ठहाके लगाये तो वह सीधे आकाश के उस पार पहुँचे। बड़ी सरदारिनी निक्की सहित रसोईघर के दरवाजेमें आ खड़ी हुई। छोटी सरदारिनी भी स्नान से निवृत्त हो निकल आई। साँवली समझी अवश्य कोई मजेदार बात हो रही है। अतएव वह नल के पास बैठी ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगी।

चलते-चलते छोटा सर्दार वही बोल दोहराता गया और बौंगा भी गर्मी खाकर छाती पर हाथ मार-मारकर जवाब देता गया।

आँगन में अधिक शोर सुनकर बड़े सर्दार जी भीतर ही से कड़के तो छोटे सर्दार बगटुट भागे। बाज स्टूल-से कूदा और बौंगे सहित कारखाने में जा घुसा बड़ी सरदारिनी और निक्की ने भीतर से रसोईघर का दर-वाज़ा भेड़ दिया। घुक्की उछली और छोटी सरदारनी ने उसे बग़ल में दाबा और एक बार फिर स्नानगृह के अन्दर।

× × ×

देवीदास के मकान और दूकान के आगे काग़ज की रंग बिरंगी झण्डियाँ लहरा रही थीं। बाजे बज रहे थे। घर के अन्दर किसी अँधेरे

कोने में कुछ स्त्रियाँ बत्तखों की 'कैं-कैं' की-सी आवाज़ में टूटे फूटे गीत गा रही थीं।

घुकी की शादी हो रही थी !

चमन के साथ ?

नहीं !

बारात आने वाली थी। मुहल्ले के लौंडे दौड़ दौड़ कर दूल्हा को देखने जाते किन्तु बड़े-बूढ़ों की ज़बानी यह सुनकर कि अभी बारात नहीं आई, निराश हो जाते और चुपचाप चूड़े रेवड़ियाँ चबाने लगते।

बैठक में बड़े सर्दार जी और उनके कुछ प्रतिष्ठित तथा बुज़ुर्ग साथी काठ के उल्लुओं की भाँति निश्चेष्ट बैठे थे। कभी एकाध बात हो जाती तो सब स्वीकारात्मक ढंग से सिर हिलाकर संतोष प्रकट करते।

प्रेस के कारीगर सड़क की ओर बरामदे में खड़े तमाशा देख रहे थे उधर कारखाने के कारीगर बग़लें बजाते छत पर चढ़ गये। वहाँ से देवी-दास की नीची छत साफ़ दिखाई देती थी। उसकी छत पर दस-पन्द्रह चारपाइयाँ बिछी थीं, क्योंकि अधिक बारातियों के आने की आशा नहीं थी· कुछ बच्चे और स्त्रियाँ निर्जीव रंगों के कपड़े पहने सुस्त-सुस्त कदम उठाती इधर-उधर के काम करती फिरती थीं। पास वाले पीपल के पेड़ की काली छाया छत पर फैल रही थी...और बाजे अलग कराह रहे थे।

छत वाले कारीगरों में से एक सिर हिलाकर बोला—"च्-च् ! औरत की बेवफ़ाई के बारे में सुना था लेकिन आज अपनी आँखों से देख ली।"

बौंगे ने नथुने फुलाकर उसकी ओर देखा और फिर कुछ कहने के लिए मुँह फुलाया...और फिर नथुने और मुँह दोनों सिकोड़कर दूसरी ओर सिर घुमा लिया।

कारीगर को आश्चर्य हुआ। उसने बाज को कन्धा मार-कर कहा—"कहो उस्ताद ! आज बौंगे को क्या हो गया है ?"

बाज ने पहले फूली वाली आँख दिखाकर बेरुखी बरती किन्तु फिर अच्छी वाली आँख से अंगारे बरसाकर कहा—"औरत की बेवफ़ाई नहीं, मर्द की बेवफ़ाई कहो।"

"यानो ?"

"जानी जे कि चमन को यहाँ से गये तीन महीने हो चुके, उसने एक लाइन तक नहीं लिखी घुक्की को...।"

"और घुक्की ?"

उसने अपने हाथ से टूटी-फूटी हिन्दी में उसे कई चिढ़ियाँ लिखीं पर एक का भी जवाब नहीं आया।"

अब बौंगे ने बोलना शुरू कर दिया—"चमन ने अपने जार-दोस्तों को लिखा कि किसी न किसी तरह घुक्की को चिट्ठी लिखने से रोका जाय। हर चिट्ठी में उसकी इस बात से कि यदि मेरे पर होते तो मैं उड़ कर आपके पास आ जाती, तंग आ गया हूँ।"

"उधर कहीं चमन के पिता जी वहाँ जा निकले।" बाज ने बात आगे बढ़ाई, "उनके सामने कहीं कोई खत आया तो उन्होंने पढ़ लिया। पहले बेटे के कान मरोड़े और फिर यहाँ आकर बड़े सर्दार जी को बताया। सर्दार जी ने देवीदास को बुलाया और कहा—'ओए, लौंडिया की शादी कर दे झटपट, पन्द्रह दिन के अन्दर; नहीं तो दूकान खाली कर दे और उठा अपना बोरिया-बिस्तरा मकान से भी।' ऐसे मुश्किल समय में भला देवीदास कहाँ जाता ! हाथ जोड़कर कहने लगा—'पर जी, गरीब की लड़की की शादी भला इत्ती जल्दी कहाँ हो सकती है !' चमन के बाप ने कहा—'आखिर तुम्हारी लौंडिया को ऐसे खत लिखने की हिम्मत कैसे हुई ! जमीन की धूल सिर को चढ़े !' बड़े सर्दार जी ने डाँट पिलाई—'अब मैंने कह दिया, ज्यादा रियायत नहीं हो सकती। पन्द्रह दिन के अन्दर-अन्दर शादी कर डाल कहीं, नईं तो मकान और दूकान दोनों से खारिज।'

बातचीत यहाँ तक पहुँची थी कि बड़ी सरदारिनी जी भी ऊपर आ निकलीं और अपनी आदत के अनुसार बाज के पास खड़ी हो गईं। अपने आगमन पर सबको चुप देखकर बोलीं—"बारात न जाने कब आयगी ?"

उनकी बात खतम भी नहीं होने पाई थी कि लोग-बाग चिल्ला उठे—"बारात आ गई, बारात आ गई।"

शहनाइयाँ और जोर से पें-पें करने लगीं।

थोड़ी देर बाद सर्दार जी का छोटा लड़का दौड़ा-दौड़ा आया, "ओए, लुटिया डूब गई, धत्तेरी की।"

"क्यों ? कुशल तो है ? दूल्हा देखा ? कैसा है ?" सब ने एक स्वर में पूछा।

लड़के ने बड़े वाहियात ढंग से बाजू इधर-उधर फेंक कर जवाब दिया—"धत्तेरे की...चिड़ीमार...बिलकुल चिड़ीमार जैसा ही दिखाई देता है।"

× × ×

अगस्त १९४७ के दंगे भीषण रूप से आरंभ हुए तो हवेली के निवासियों और कारीगरों के समय का कुछ भाग मार-काट, हिन्दुओं तथा सिक्खों पर ढाये गये अत्याचार और उनकी स्त्रियों की इज्जत लूटने वैसे विषयों पर खर्च होने लगा। लेकिन वहाँ के दैनिक जीवन और चहल-पहल में कोई विशेष अन्तर नहीं आया था, सिवा इसके कि घुक्की के विवाह को तीन-साढ़े तीन महीने बीत चुके थे। इन तीन महीनों के बीच में चमन दो चार दिन के लिए जालन्धर घर आया। उन्होंने अलग मकान प्रबन्ध कर लिया था, फिर भी चमन सरदार जी के घर चोरी-छिपे आता रहा। वह घुक्की से बचकर रहता था। स्वयं घुक्की ने भी विशेष रूप से इस बात का ध्यान रखा कि उसकी चमन से मुठभेड़ न हो।

चमन ने सरदार जी के लड़कों को बताया कि महू में उसका जीवन

बड़े आनन्द और चैन में व्यतीत हो रहा था। आसपास माशूकों की भी कुछ कमी नहीं थी। उसने एक नई कला सीखी थी, जिसका प्रदर्शन उसने धुएँ के छल्ले बना-बनाकर किया। यदि घुक्की की कोई बात चलती तो कहता—"हिन्दुस्तानी लड़कियाँ भी बस अजीब होती हैं। जरा हँसकर बात कर लो, तो गले का हार हो जाती हैं। फुलिश...! चाइलडिश !!"

आखिर वह घुक्की से एक भी बात किये बिना ही चुपचाप लौट गया।

देखने में घुक्की पर इसकी कोई विशेष प्रतिक्रिया न दीख पड़ती थी। वह अब भी छोटी सरदारिनी के साथ उठती-बैठती, हँसती-बोलती। लेकिन उसके दिल को घुन लग चुका था। उसका शरीर नर्म और दुर्बल तो पहले ही था, किन्तु अब तो बिलकुल ही हड्डियों का ढाँचा सा होता जा रहा था। वह अत्यन्त कोमल और खिले हुए फूल के समान थी। यदि परिस्थितियाँ उसके अनुकुल होतीं, तो अवश्य ही उसकी महक दूर-दूर तक फैलती। किन्तु अब वह दर्द दबाकर खामोश हो गई थी। उसके चेहरे पर ऐसी गम्भीरता और ओज आ गया था कि अब किसी को उससे चुहलबाजी करने का साहस तक न होता था। उसे खाँसी आने लगी थी। जब खाँसी शुरू होती तो वह अपने कमजोर सीने को छोटे-छोटे हाथों से थामकर खाँसते-खाँसते बेहाल हो जाती। उसका चेहरा लाल हो जाता। कुछ देखने वालों को तो उस पर तरस आने लगता किन्तु वह मुसकराती हुई अपने सिर को पीछे की ओर फेंककर उसे दायें-बायें दो-चार झटके देती और फिर बातचीत में व्यस्त हो जाती।

निक्की अवश्य उड़ निकली थी। उसे बात-बात पर इतनी हँसी छूटती थी कि बस लोट-पोट हो जाती। पहले घुक्की उन महफिलों की जान

थी तो अब निक्की ! धुक्की का व्यवहार पहले भी गम्भीर था। अब छाती पर घाव खाकर वह और गम्भीर हो गई थी। लेकिन निक्की आरंभ से से ही चंचल थी। और अब मैदान साफ पाकर वह तड़पती हुई बिजली बन गई थी। छेड़छाड़ की उसमें बहुत बर्दाश्त थी, इसलिए वह धुक्की की अपेक्षा सबको अधिक प्रिय थी। खफा होना तो उसे आता ही नहीं था। सिमटना, बनना, बचना, झूठमूठ माथे पर बल डालना पुट्ठे पर हाथ न रखने देना, यह सब सही, फिर भी वह खफा नहीं होती थी। चाहे कुछ भी हो जाय, उसकी चहक और महक में फर्क नहीं आता था।

अब ताड़ने वालों के लिये यह भी कोई भेद की बात न रहा थी कि निक्की का खास प्रेमी प्रेस का वह आदमी था, जिसे सब जलकुकड़ कहते थे। परन्तु समझ में न आनेवाली बात यह थी कि आखिर उसके पास कौन सी गीदड़सिंगी थी जिसके कारण निक्की सबको छोड़-छाड़कर उसी की बगल गरम करती थी।

एक दिन साँझ के समय एक बहुत बड़े तन्दूर पर लोहे की कढ़ाई जमाई गई, जिसे देख कर सब के मुँह में पानी भर आया। क्योंकि कुछ महीनों के अन्तर के बाद यह वह शाम होती थी जब बड़ी सरदारिनी कढ़ाई में रेत गर्म करके उसमें मक्की, चना और चावल भूनती। गुड़ मिलाकर उनके लड्डू तैयार करती और सबको जी भर कर खिलाती। अतएव जब कारखाने के अन्दर बसूला चलाते हुए बाजसिंह को बौंगे ने खबर सुनाई कि आज आँगन में कढ़ाई जमाई गई है और बड़ी सरदारिनी के क्या तेवर हैं तब उससे न रहा गया। वह बसूला, रुखानी फेंक बाहर निकला और देखा कि बौंगे ने, जो अधिकतर झूठ बोला करता था, अब की झूठ नहीं कहा था।

बड़ी सरदारिनी ने जब बाज को देखा तो इस ढंग से मुसकराई मानो उसे पहले ही से विश्वास था कि बाज सब काम छोड़ छाड़कर

तुरन्त बाहर आ जायगा। आज सरदारिनी ने जामुनी रंग का दुपट्टा ओढ़ रखा था। वैसे तो कोई भी रंग उनपर नहीं फबता था किन्तु जामुनी रंग तो बहुत ही भोंडा लग रहा था। उस रंग के नीचे उसके पुलपुले होठों पर मुस्कराहट फैलती जा रही थी। बाज से आँखें चार होते ही वह अर्थ-पूर्ण ढंग से ठुमक कर रसोई-घर में चली गई।

धीरे-धीरे हर प्रकार के दाने भुन चुके तब फिर निक्की की सहायता से बड़ी सरदारिनी ने सोंधी-सोंधी सुगन्ध वाले दाने को गुड़ में मिलाकर विभिन्न प्रकार के लड्डू तैयार किये।

चरन मिनट-मिनट की खबर प्रेस में पहुँचा रहा था। कारखाने के कारीगर रसोईघर के अधिक निकट थे इसलिए वे काम में मन लगा ही नहीं सके। वे इसकी प्रतीक्षा कर रहे थे कि कब सरदारिनी अपने लोच-दार स्वर में उन्हें खाने को आमंत्रित करे और कब वे पिल पड़ें चबैने के लड्डुओं पर।

सबसे पहले सरदारिनी ने घुक्की को आवाज दी। अब उसे घुक्की पर प्यार-सा आने लगा था। घुक्की दोनों कुहनियाँ घुटनों पर टिकाये और मुँह हाथों में छिपाये खाँस रही थी। जब खाँस चुकी तो अपनी आदत के अनुसार उसने सिर को पीछे की ओर फेंककर उसे दायें-बायें दो चार झटके दिये और फिर हँसने लगी......उसकी हँसी बड़ी उदार होती थी। इसके बावजूद उसके चेहरे पर अजीब से भाव छाये रहते थे। अब उस पर पहली वाली आकर्षक प्रतिक्रिया नहीं प्रकट होती थी। ऐसा लगता था मानो वह स्वयं अपने लिए हँस रही है।......इसी तरह खिलखिला कर हँसती हुई वह आगे बढ़ी और उसने दोनों हाथ ऐसे फैलाये मानो उसे मन्दिर या गुरुद्वारे से प्रसाद मिल रहा हो।

बड़ी सरदारिनी ने सबको नाम ले-लेकर बुलाया—"वे औंगिया, वे चरन, नी साँवलिये, नी प्रेमो......"

बाज अपने प्रिय स्टूल पर टंगा हुआ था।

उसे नहीं बुलाया गया ?

नहीं, उसे नाम लेकर नहीं बुलाया गया बल्कि सबकी नजरें बचाकर सरदारिनी जी उसे आँखों और सिर के इशारों से बुलाती रहीं। मानो उसके लिये विशेष निमंत्रण भेजे जा रहे थे। बाज भी एक काइयाँ था। वह हैरान होकर सोच रहा था कि कहीं ऐसा न हो किसी दिन सरदारिनी उससे लिपट न जाय। कुछ देर सरदारिनी के व्यवहार से आनंदित होने के बाद वह कुलाँच भर कर स्टूल से उतरा और दूसरी कुलाँच में सरदारिनी के निकट पहुँच गया। चनैने के लड्डू लेते समय उसने उनकी पसलियों में कोहनी का एक टहोका भी दिया। क्योंकि... अब इतना अधिकार तो अवश्य था उसका सरदारिनी पर।

बौंगा आज बहुत लाड़ में आया हुआ था। बाज के पास बैठने के बजाय वह छोटी सरदारिनी के पास जा बैठा और बन्दर की भाँति बड़ी अतिशयोक्ति के साथ मुँह आगे को बढ़ा कर और 'चप-चपा-चप' के शब्द निकालता लड्डू चबाने लगा। उसी समय निक्की को पास से खास अन्दाज में उठते और तनिक और अस्वाभाविक अन्दाज में चलते देख बौंगे ने छोटी सरदानी को सम्बोधित कर निर्भीकता से कहा—"ओ जी, निक्की का पाँव तो भारी सा दिखता है।"

बाज ने भी यह बात सुन ली। उसने ध्यान से देखा तो उसे भी विश्वास सा होने लगा। उसने सोचा कि आखिर बात क्या है जो आज बौंगा सच ही बोले जा रहा है।

× × ×

धीरे-धीरे निक्की का पाँव और अधिक भारी होता गया तो हवेली में कानाफूसी होने लगी। और फिर अकस्मात वह गायब हो गई तो पहले यह अफ़वाह उड़ी कि वह जलकुकड़ के साथ गायब है, लेकिन जलकुकड़ पूर्ववत काम पर आता रहा।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि जब निक्की गायब हुई तो उसके

घरवालों ने तनिक भी परेशानी नहीं प्रकट की। तीसरे दिन घुक्की ने दबे स्वर में स्वीकार किया कि मौसी गाँव से आई थी, वह उसके साथ चली गई। मौसी कब आई थी? बस, वह आई और चली गई। किन्तु निक्की ने कभी कहीं जाने की इच्छा प्रकट नहीं की थी।......इन सब प्रश्नों का टाल मटूल के अतिरिक्त कोई उत्तर नहीं था।......यदि कोई अधिक कुरेदकर पूछता तो घुक्की को खाँसी आ जाती। वह खाँसते-खाँसते बेहाल हो जाती, यहाँ तक कि बात आई गई हो जातीं।

अक्तूबर का महीना खतम होने को था किन्तु अगस्त से जो दंगे शुरू हुए थे वे खत्म होने ही में न आते थे।

हवेली के लम्बे-चौड़े आँगन के इर्द गिर्द अनेक कोठरियाँ बनी हुई थीं। बहुत से कारीगर नगर के खतरनाक भागों से निकल कर बाल बच्चों सहित अस्थाई रूप पर वहाँ ठहरे थे। अतएव रात को कारखाने में काफ़ी रौनक हो जाती। भोजन से निवृत्त हो कारीगर कई रात तक आपस में गप-शप हाँकते और पश्चिमी पंजाब में जो अत्याचार हिन्दुओं तथा सिक्खों पर ढाये जा रहे थे उनकी जी खोलकर निन्दा करते।

ऐसी ही एक रात थी।

भोजन करने के बाद कारीगरों का एक गिरोह कारखाने में घुसा गप-शप में लगा था। ठण्डी हवाएँ चलने लगी थीं इसलिए अन्दर से कुण्डी चढ़ा दी गई थी। बल्कि बौंगा तो सुलगते हुए उपलों की मिट्टी की अँगीठी रानों में दबाये बैठा था। किसी ने आवाजा कसा—"अबे बौंगे! अच्छी जवानी है साले, अँगीठी रानों में दाबे है।"

"जार! अब तो दिल उदास रहता है।"

"हाँ भई, डेढ़ महीना हो गया, निक्की को गये हुए।"

एक बोला—"जार अच्छी बात याद दिलाई मुझे। आज एक आदमी मिला था, जो निक्की की मासी के गाँव के पास वाले गाँव में रहता है।"

"क्या निकी की कोई ख़बर मिली ?" दो एक ने दिलचस्पी ली।

"हाँ !"

"क्या ?"

"उसने कुएँ में छलाँग लगा दी थी !"

"अरे राम !"

"उसने जे भी बताया कि उसके बच्चा होने वाला था।"

"हाँ...ओ...फिर !"

"उसने ज्यादा ख़बर नहीं बताया। सुना था कि लड़की बच जायगी।"

बाज ने राय दी—"मेरे ख्याल में तो देवीदास ने उसकी हालत देख कर गाँव भेज दिया होगा जिसमें कि कहीं बच्चे से जान छुड़ाकर लौट आयगी तो जल्दी से शादी कर दी जायगी उसकी।"

इस दुखद घटना का सबके दिलों पर असर हुआ और हँसती-बोलती महफिल पर सन्नाटा छा गया। इतने में किसी ने दरवाजा खटखटाया।

"कौन !" बाज ने पूछा, लेकिन उत्तर में फिर लगातार दरवाजा खटखटाने की आवाजें आती रहीं।

सबको यह बात विचित्र सी लगी ! बाज अपनी जगह से उठा किन्तु उसके मन में खुदबुद-खुदबुद हो रही थी कि कहीं बड़ी सरदारिनी न हो। मौका पाकर उसने चढ़ाई कर दी हो शायद।

बाज ने कुण्डी खोल दी।

बाहर से किवाड़ को बहुत धीरे-धीरे ढकेला गया।

दिये की थरथराती लौ के मन्द प्रकाश में एक लड़की भीतर प्रविष्ट हुई।

साँवली !

बाज दो कदम पीछे हट गया।

सभी की आँखें दरवाजे पर लगी हुई थीं। साँवली को देखकर उनके

मुँह से अनायास विभिन्न शब्द निकल पड़ते किन्तु बाज के संकेत पर वे उसी प्रकार चुपचाप बैठे रहे।

साँवली और आगे बढ़ी। उसका गोल-गोल चेहरा, यौवन की गर्मी से तमतमाए हुए चेहरे की त्वचा, तनिक मोटे और भर पूर होंठ, चिकने गाल...इन सब चीजों के सौन्दर्य को पहले कभी किसी ने ध्यान देने योग्य नहीं समझा था। इन सब मनोहर गुणों के साथ-साथ उसके चेहरे पर दुधमुंहे बच्चे का सा भोलापन था।

लेकिन इतनी गई रात को वह वहाँ क्या करने आई थी!

साँवली ने हाथ फैलाकर उस ऊँची और भारी भरकम मेज का सहारा लिए जिस पर बाज फर्नीचर बनाते समय विभिन्न भागों पर रन्दा किया करता था। लड़की ने मुँह खोला और बहुत धीरे से बोली—"बाज चाचा!"

"हाँ!" बाज ने दाढ़ी पर हाथ फेरा।

साँवली ने गर्दन इधर-उधर घुमाकर कोई और आवाज सुनने का असफल प्रयत्न किया। उस समय उसके अधखुले मुँह के अन्दर दन्तपंक्ति के पीछे उसकी जीभ छोटी-सी मछली के समान फड़क रही थी। फिर उसने भेद पूर्ण स्वर में पूछा—"क्या तुम अकेले हो?"

यह सुनकर सबने गर्दन आगे को बढ़ाई। उनकी आँखें फैल गईं। बाज ने तनिक भी बदले बिना जवाब दिया—"हाँ साँवली, मैं अकेला हूँ।"

"कहाँ हो?" यह कह वह बाजू फैलाकर हाथ हिलाती हुई आगे बढ़ी, फिर उसने उसे छू लिया।

"यह रहे तुम!" वह उसे छूकर बड़ी प्रसन्न हुई।

"साँवली, तुम इस वखत यहाँ क्यों आई हो?"

"क्यों, इस वखत क्या है?"

"इस वक़्त रात है। तुम...तुम जवान हो...क़रीब-क़रीब "

"मेरे लिए रात और दिन समान हैं।"

"लेकिन इस वक़्त रात के ग्यारह बज चुके हैं...और फिर तुम अकेली हो।"

यह सुनकर साँवली के साफ़-सुथरे चेहरे पर वेदना के चिन्ह उभर आए। वह चकित होकर बोली—"पर बाज चाचा! भला तुम्हारे पास आने से क्या बुराई हो सकती है! तुम तो देवता हो..."

बाज ठिठककर पीछे हटा।

"तुम नहीं जानते चचा," साँवली ने फिर कहना शुरू किया, "तुम्हारी दुनिया और है और अन्धों की दुनिया और। चाचा, तुम कितने अच्छे हो, कितने दयालु हो। जब मैं तुम्हारी आवाज सुनती हूँ तो घण्टों उसके मिठास और प्यार के बारे में सोचती रहती हूँ। जब कभी लाला मुझे गुस्से होता है तो मैं सोचती हूँ, कोई बात नहीं। मेरा बाज चाचा जो है। वह मुझे लाला से कम प्यार तो नहीं करता...ठीक है न?"

इस बीच में बाज मूँछ का एक सिरा धीरे-धीरे चबाता रहा। उसकी बात खतम हो जाने पर वह तनिक रुका और फिर उसके कुरूप चेहरे पर एक मनोहर मुस्कान उत्पन्न हुई और वह अपना खुरदुरा हाथ उसके सिर पर रखकर बोला—"हाँ साँवली, यह सच है...लेकिन...इस वक़्त तुम जाओ।"

"नहीं-नहीं चाचा, मैं बातें करने आई हूँ।"

"अच्छी लड़की बनो साँवली। इस टैम जाओ। कल करेंगे बातें।"

"ओ नहीं चाचा! कल तक सब्र हो सकता तो मैं बिस्तर से उठकर क्यों आती?"

सब चुपचाप थे।

कारखाने के कमरे में एक बार फिर साँवली की आवाज घण्टी की

तरह गूँज उठी—"बाज चाचा, तुम समझते नहीं। मैं तो तुमसे बात करने आई हूँ, इस वखत यहाँ कोई तो नहीं, तभी तो मैं तुमसे बातें करना चाहती हूँ।"

"क्या बातें करना चाहती हो?"

"बाज चाचा!" अब साँवली की आवाज बदल गई। वह तनिक रुकी और फिर बोली—"चाचा...! कुलदीप बाबू बहुत अच्छे हैं। वे कहते थे कि मेरी आँखें ठीक हो सकती हैं। मैं जन्म से अंधी हूँ न! इसलिए...और... वह...कहते थे कि तुमसे ब्याह...करूँगा।'

इस पर बाज ने अपनी दाढ़ी को मजबूती से मुट्ठी में पकड़ लिया—"कौन कुलदीप!"

"वह जो नये आये थे, वही।"

"क्या कहता था वह...?"

"वह कहते थे, साँवली! तुम मुझे बड़ी प्यारी लगती हो। मैं कहती, मैं अन्धी हूँ, भला अन्धी लड़कियाँ भी किसी को प्यारी लगती हैं...वह कहते, बावली! प्यार किया नहीं जाता, होजाता है। मैं तुम्हें प्यार करता हूँ। और फिर तुम जन्म की अन्धी नहीं, तुम्हारा इलाज हो सकता है। तुम देखने लगोगी।...पर चाचा! उनको गये पन्द्रह दिन हो चुके हैं। लौटकर नहीं आये। और...और..."

यह कहते-कहते साँवली ने अपनी निस्तेज आँखों को और फैलाया, मानो कुछ देखने की चेष्टा कर रही हो। और फिर झेंपकर बोली—"और...और मेरा पाँव भी भारी है।"

बाज ने हठात् खुल जाने वाले अपने मुँह पर हाथ रख लिया।

साँवली कुछ देर के लिये मौन हो गई और उत्साहहीन दुखी स्वर में उसने फिर बोलना शुरू किया—"आज बिस्तर पर लेटे मैं सोच रही थी कि अगर वह न आये तो...! लाला बहुत दुखी हैं। वह कहता है—

चुन्नी और निक्की दोनों खराब हैं। एक को ऐसा रोग लग गया है जिससे बचना असंभव है। दूसरी का पाँव...सच बात चाचा, लाला अत्यधिक दुखी है। वह रात रात भर रोता रहता है।...वह मुझसे प्यार करता है। मुझे गले से लगाकर कहता है, यह मेरी रानी बिटिया है। इसे पाप छू भी नहीं गया...लेकिन उसे नहीं मालूम कि मेरा पाँव भी...मैं सोचती हूँ कि यदि कुलदीप बाबू न आये तो...लाला को मालूम हो जायगा। वह मर जायगा, एकदम मर जायगा...यह सोचते-सोचते मुझे रोना आ गया। मुझे कुछ नहीं सूझा तो जी का बोझ हल्का करने के लिये तुम्हारे पास चली आई.. लेकिन वह जरूर आयेंगे.. है न चाचा? वह आयेंगे न?"

सब लोग दम साधे बैठे रहे।

बाज ने एक बार फिर अपना भारी भरकम हाथ उसके सिर पर रखा और उसे सान्तवना देते हुये कहा—"हाँ साँवली, कुलदीप आयगा। वह जरूर आयगा।"

थरथराती हुई मद्धिम रोशनी में बाज ने देखा कि साँवली के निर्ज्योति नेत्रों में आँसू दमक रहे हैं...

"और अब साँवली, तुम्हें वापस जाना चाहिए।"

यह कहकर बाज ने धीरे से दरवाजा खोला और साँवली की पीठ पर हाथ रखकर उसे आगे बढ़ाया। वह धीरे-धीरे कदम बढ़ाने लगी।

बाज दरवाजे पर ही रुक गया। वह साँवली को जाते हुए देखता रहा। चारो ओर निस्तब्धता छाई थी। तारों के मन्द प्रकाश में साँवली एक छाया के समान दिख रही थी। उसके लिए अँधेरा-उजाला एक सा था। वह बिना किसी हिचकिचाहट के बढ़ती चली जा रही थी।

रसोईघर के कोने से होकर हवेली की भव्य किन्तु काली दीवार की और भी काली छाया से होती हुई जब वह बड़े फाटक पर बनी हुई उस ऊँची महराब के नीचे पहुँची जिसके नीचे से तीन हाथी ऊपर-नीचे

आसानी से निकल सकते थे तो बाज को मैले कुचैले कपड़े पहने वह इकहरे बदन की हल्की-फुल्की अन्धी लड़की बहुत निर्बल, बहुत क्षीण और अस्तित्वहीन-सी दीख पड़ी। मानो वह कोई रेंगता हुआ निरीह कीड़ा हो। बाज वहीं खड़ा रहा। उसने आकाश के विस्तार, हवेली की ऊँची ऊँची दीवारों, बेजान इमारतों के सिलसिलों और फिर उस लम्बे-चौड़े दालान पर निगाह दौड़ाई जिसके वातावरण में कई कच्चे-कुँवारे ठहाके गूँजते-गूँजते सहसा दर्दनाक चीखों में बदल गये।

रात—कोई रात इतनी काली उसके देखने में पहले कभी नहीं आई थी...और तारे पीप के धब्बों के समान दीख पड़ रहे थे।

× × ×

जैसे-जैसे दिन बीतते जा रहे थे वैसे-वैसे साँवली का भेद जानने वाले कारीगरों, विशेषकर बाज की परेशानी बढ़ती जा रही थी। वे नहीं चाहते थे कि साँवली अपनी बहनों की तरह बरबाद हो। नल के पास या दरवाजे की सीढ़ियों पर या ऊँची महराब के नीचे बैठी अन्धी साँवली की दशा बड़ी दयनीय दीख पड़ती थी। आते-जाते जब भी उसकी उनसे मुठभेड़ हुई, साँवली ने उनसे या बाज से दोबारा उस विषय में कुछ नहीं कहा।

बीस दिन और बीत गये।

पंजाब बरबाद हो रहा था—वारिस शाह का पंजाब, गेहूँ के सुनहरे गुच्छों वाला पंजाब, मदभरे गीतों वाला पंजाब, हीर का पंजाब, कूँजों और रहटों वाला पंजाब!—और उसकी एक निस्तेज आँखों वाली निरीह बेटी भी बरबाद हो रही थी।

एक रात, जब कि सब कारीगर भोजन आदि से निवृत्त होकर नित्य की भाँति कारखाने में बैठे बातें कर रहे थे, यकायक साँवली की चर्चा छिड़ गई। उन सब की हार्दिक इच्छा यही थी कि काश, साँवली का

अपनी बहनों का-सा हाल न हो। किन्तु वे इस बात को भली भाँति समझते थे कि यह असम्भव है और ऐसा सोचना नितान्त मूर्खता है।

बाज खुले दरवाजे में खड़ा काले आकाश की ओर देख रहा था। बौंगे को सरदी लगी तो उसने चिल्लाकर कहा—"ओए मऊँ दे मुत्राए! दरवाजा बन्द कर दे। साले तू तो सौंड़ हो रहा है फूल कर। हम गरीबों का तो ख्याल किया कर।"

और कोई मौका होता तो बाज बौंगे की गाली के उत्तर में कोई नई और भारी-भरकम गाली गढ़ता। किन्तु उस समय उसने चुपके-से दरवाजा भेड़ दिया और स्वयं बड़ी मेज पर हाथ टेक कर खड़ा हो गया।

सब उसे हँसने-बोलने के लिए उकसाते रहे। किन्तु जब उसका मूड ठीक नहीं हुआ तो उन्होंने बड़े आग्रह से पूछा—"बई! बात क्या है?"

"मैं सोच रेया हूँ।"

बौंगे ने सरदी लगने के बावजूद झट से उठाकर कबड्डी खेलने वाले खिलाड़ी की-सी मुद्रा बनायी और पास आकर बोला—"सच्चे पातशाहो! क्या सोच रहे हो?"

बाज ने उसकी ओर दार्शनिक भाव से देखा तो उसे हँसी आगई। किन्तु बाज के तेवर वैसे के वैसे रहे।

बौंगे को हास्यास्पद ढंग से अपनी ओर देखते पाकर बाज ने मुँह के अन्दर जीभ घुमाई और फिर सिर को हिलाकर उसने बौंगे तथा अन्य साथियों पर छा जाने वाली निगाहों से देखा और कहा—"मैं एक बात सोच रहा हूँ।"

"क्या?"

सबको उसका दार्शनिक मूड देखकर हँसी आ रही थी जिसे वे बड़ी कठिनाई से रोके हुए थे।

बाज ने सिर को इस प्रकार झटका दिया मानो वह बहुत बड़ा और अनुभवी बुजुर्ग हो और फिर मेज को दोनों हाथ से मजबूती से पकड़ कर

बोला—"पंजाब में कित्ता जुलम हो रहा है। ऐसा खून-खराबा न देखा न सुना—ठीक ?"

"ठीक !"

"...और फिर हिन्दू और सिख औरतों की जो बेज्जती पच्छिमी पंजाब में मुसलमान कर रहे हैं, वह सब तुमको मालूम है, ठीक ?"

"ठीक !" सबने तनिक जोश में आकर जवाब दिया।

अब कुछ देर शान्त रहने के बाद वह धीरे-धीरे सिपाहियों के से अन्दाज़ में सीधा खड़ा हो गया और एक-एक शब्द पर ज़ोर देकर बोला—"पर...मैं सोचता हूँ कि मुसलमान गुस्से में आकर ब्याकूफी कर रहे हैं, वही ब्याकूफी हम भले चंगे अपनी बहनों और बहू-बेटियों के साथ कर रहे हैं। बताओ, मुसलमानों को दोष देने से पहले हमें खुद को नहीं सरम आनी चाहिए ?"

महफिल पर सन्नाटा छा गया।

नन्हें-से दीपक की पतली-सी थरथराती लौ के मन्द प्रकाश में बाज ने अपनी मोटी तथा लम्बी उँगली उठाते हुए अपनी बात जारी रखी—"ऐसे ही पाकिस्तान में धुकी, निकी और साँवली की हज़ारों-लाखों बहनें होंगी। तो फिर सावल यह उठता है कि हम या वे किस इज्जत के लिए लड़ रहे हैं ? क्यों एक-दूसरे को जंगली कहते है ?..."

इतने में दरवाज़ा बड़े धपाके के साथ खुला। सब ने उधर निगाह डाली तो देखा कि साँवली चौखट के बीचो बीच खड़ी है। उसके रूखे-सूखे बाल रुई की भाँति धुने हुए, उसके बाज़ू फैले हुए। अंगों में कम्पन था। इसके पहले कि कोई बोलता वह जोर से चिल्लाई—"बाज चाचा ! बाज चाचा !!"

साँवली की आवाज़ उस वायु मण्डल में दो बार गूंजी।

"हाँ-हाँ साँवाली, बोल घबराई हुई क्यों है तू ! बोल..."

"वह आ गये !"

"कौन ?"

"कुलदीप बाबू आ गये।"

"आ गया वह ?" सब खुशी के मारे चिल्ला उठे।

"और आते ही वह मुझे डाक्तर के पास ले गये। डाक्तर ने कहा, आँखें ठीक हो जायँगी लेकिन इलाज बहुत दिन करना पड़ेगा !"

बाज ने बढ़कर साँवली के दोनों निर्बल कन्धों को अपने हाथों में दबोच लिया और उसे हिलाकर बोला—"सच ! कब ?"

"हाँ, सच। उनकी माता भी साथ आई हैं।"

"अरी वह इत्ते दिन कहाँ गैब रहा ?"

"उन्होंने मुझे बताया कि पहले उनकी बात कोई नहीं मानता था। उन्होंने भूख हड़ताल कर दी। बड़ी कठिनाई से उन्होंने उनकी बात मान ली। वे कहते हैं कि ऐसा रगड़ा झगड़ा हुआ कि मैं खत भी न लिख सका। लिखता भी तो क्या लिखता "

"ओहो-हो-हो !" सब एकदम खुलकर हँसे।

साँवली ने झूमकर कहा—"वह मेरी मिन्नतें करने लगे। कहने लगे साँवली, मुझे माफ कर कर दो...अगर तुम्हें कोई दुख पहुँचा हो। हम पैसे वाले नहीं हैं लेकिन सब काम ठीक हो जायँगे...। हम तुम्हें दिल्ली ले जायँगे।"

अब सब लोग साँवली की ओर बढ़े और अपने अपने ढंग से प्रसन्नता का प्रदर्शन करने लगे। आखिर बाज ने दोनों हाथ उठा कर कहा—"भाइयों, ठहरो। मेरे ख्याल में अब साँवली को आराम करना चाहिए। इसे रात के समय घर से बाहर नहीं रहना चाहिये...साँवली हम बहुत खुश हैं। अब कल बातें होंगी। चलो, अब तुम जल्दी से घर जाओ।"

साँवली के साथ किसी का जाना उचित नहीं था। क्योंकि वह घर वालों की चोरी से आई थी।

सब उसे बड़े स्नेह से कारखाने के दरवाजे तक छोड़ने गये।

आठ-दस मिनट के बाद जब सारा टोला बाजार जाने का प्रोग्राम बना बाहर निकला तो ऊँची महराब के नीचे से निकलते समय उन्हें दीवार के साथ एक मटियाली सी मूर्ति दीख पड़ी।

वे सब रुक गये।

बाज ने आगे बढ़कर देखा तो मालूम हुआ कि साँवली है।

"साँवली तुम अभी घर नहीं गई ?"

साँवली ने शून्य में घूरते हुये कहा—"बाज चाचा! न जाने मेरे मन को क्या हो गया है। कुछ सूझता ही नहीं कि क्या करूँ। जरा दम लेने को रुक गई थी बाज चाचा, सोचती ऐसी खुशी की बात क्या हो सकती है। लेकिन चाचा तुम्हें मेरी बात पर अकीन है न ?"

बाज ने घूमकर अपने साथियों की ओर प्रश्न सूचक दृष्टि से देखा। सब चुप थे। वह भी चुप रह गया।

सबको चुप पाकर साँवली ने अपना सवाल दोहराया—"आप सब को अकीन नहीं आता ?"

"बाज की आँखों के कोने भीग गये। उसने हाथ बढ़ाकर साँवली के सिर पर रख दिया और फिर धीमी आवाज में बोला—हमें अकीन है और देखो तुम्हें बेवखत घर से बाहर नहीं रुकना चाहिये। और फिर सरदी पड़ने लगी है। कहीं तुम बीमार न हो जाओ।"

साँवली ने उसकी मजबूत कलाई को अपनी कमजोर उंगालियों से छूकर पूछा—"पर बाज चाचा, आप सब लोग बेवख़त कहाँ जा रहे हैं ?"

"हम ?" बाज ने पितृप्रेम से काँपते हुए हाथ से उसके गाल को छूते हुये जवाब दिया—साँवली बेटी! हम इस खुशी में बर्फी खाने जा रहे ।"